

मानस संगम

अन्तर्राष्ट्रीय
वार्षिक
प्रकाशन

महाराज प्रयाग नारायण मन्दिर (शिवाला) का... रुपये





(पंजीकृत)

अन्तर्राष्ट्रीय वार्षिक पत्रिका

वर्ष : ११ अंक : ११

बत्तीसवाँ समारोह

श्री प्रयाग नारायण मन्दिर (शिवाला)
कानपुर - २०८००१

रविवार २४ दिसम्बर, २०००

संस्कृत वर्ष (१९९९-२०००) के
अवसर पर
मानस संगम देववाणी सम्मान
पण्डित गुलाम दस्तगीर अ० बिराजदार
एवम्
डॉ० कृष्णनारायण पाण्डेय

सम्पादक
मदन मोहन शर्मा

उप सम्पादक
अरुण कुमार मिश्र
डॉ0 अनिल शुक्ल

प्रबन्ध सम्पादक
विजय नारायण तिवारी 'मुकुल'

संयोजक
बद्रीनारायण तिवारी

मूल्य : बीस रुपये
सजिल्द पुस्तकालय मूल्य : पचास रुपये



मानस संगम के विगत आयोजनों में साहित्य, ललितकला एवं विशिष्ट सम्मान से पुरस्कृत मनीषी - विदुषी

पं रामकिंकर उपाध्याय, पद्मभूषण अमृत लाल नागर, सुश्री नमिता चटर्जी (कलकत्ता), डॉ0 नरेन्द्र कोहली (दिल्ली), श्री गोपाल उपाध्याय (आकाशवाणी, लखनऊ), पद्मश्री डॉ0 लक्ष्मीनारायण दुबे (सागर), डॉ0 शैलेश जैदी (अलीगढ़ मुस्लिम वि.वि.), सरदार शमशेर सिंह (पंजाबी रामायण), श्री ब्रजेन्द्र शाह (पर्वतीय रामलीला), डॉ. गया प्रसाद शर्मा, महीयसी महादेवी वर्मा, डॉ0 कुबेरनाथ राय (असम), डॉ. गंगाधर जनार्दन रटाटे (वाराणसी), डॉ0 श्रीमती प्रेमा मिश्रा (कानपुर), प्रो0 एल.एन. भावसार (इन्दौर), डॉ0 लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' (लखनऊ), डॉ0 (श्रीमती) इन्दुजा अवस्थी (दिल्ली), डॉ0 कृष्णनारायण प्रसाद मागध (मणीपुर वि.वि. इम्फाल), श्री विजय भट्ट (प्रथम राम कथा फिल्म 'रामराज्य' के निर्माता), डॉ0 सय्यद महफूज हसन रिजवी 'पुण्डरीक' (कलकत्ता), श्री अनूप जलोटा (बम्बई), श्री राजकुमार बड़जात्या (बम्बई), श्री हरसुखराय भट्ट (तुलसीदास पर सर्वप्रथम फिल्म निर्माता), श्रीमती सरोज गौरिहार, श्री रामानन्द सागर (दूरदर्शन के चर्चित धारावाहिक 'रामायण' के निर्माता), पद्मश्री शान्तिलाल जैन, डॉ0 रामप्रसाद मिश्र, डॉ0 भानुशंकर मेहता, श्री रामसिंहासन सहाय 'मधुर', श्री राजेन्द्र अरुण (मारीशस), श्री रामसिंह ठाकुर (आदिवासी क्षेत्र, बस्तर) श्री प्रदीपनाथ (पुतुल कलाकार), श्री मुकुन्द लाल मुंशी (बड़ौदा गुजरात), डॉ0 कृपाशंकर शुक्ल, आचार्य डॉ0 मानस विश्वास (दतिया), डॉ0 श्रीमती रेनू निगम, श्रीमती चन्द्रा साहनी, डॉ0 जगदीश नारायण 'जगेश', सुश्री सरोज श्रीवास्तव 'नलिन', डॉ0 आशाराम त्रिपाठी (आकाशवाणी, लखनऊ), डॉ0 भगवती शरण मिश्र, आई.ए.एस. (पटना), श्री जयसिंह 'व्यथित' (गुजरात हिन्दी विद्यापीठ, अहमदाबाद), डॉ0 किरीट जोशी (दिल्ली), डॉ0 श्रवण कुमार गोस्वामी (रांची), आचार्य सिद्धेश्वर अवस्थी, श्रीमती पूजा श्री (मुम्बई), श्री संजय खान (धारावाहिक 'जय हनुमान' के निर्माता), श्री रामचन्द्र दुबे 'व्यास' आचार्य लक्ष्मी शंकर शुक्ल, डॉ0 रेखा निगम, कु0 ऋतु सुकुमार (आगरा), डॉ0 आई.एन. चन्द्रशेखर रेड्डी (श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति, आंध्र प्रदेश), श्री शेखर सेन ('गोस्वामी तुलसीदास' टी-सीरीज ऑडियो कैसेट) कल्याण (महाराष्ट्र), महाकवि श्रीकृष्ण सरल (सर्वाधिक क्रांति साहित्य के प्रणेता), साहित्य मनीषी श्री सोहन लाल रामरंग दिल्ली, डॉ0 दुर्गा शर्मा रतलाम (मध्य प्रदेश)।

मानस संगम साहित्य पुरस्कार

साहित्य मनीषी डॉ0 प्रेमशंकर त्रिपाठी (कलकत्ता)

('मानस अनुक्रमणिका' ग्रन्थ के लेखक)

मानस संगम देववाणी सम्मान

(संस्कृत वर्ष १९९९-२०००)



पंडित गुलाम दस्तगीर अ0 बिराजदार (मुम्बई)

सम्पादक अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृत पत्रिका 'विश्वभाषा'

(मुस्लिम संस्कृत सेवा, लोक व्यवहारे संस्कृतम् आदि अनेक ग्रन्थों के प्रणेता संस्कृत के प्रकांड विद्वान)



डॉ0 कृष्ण नारायण पाण्डेय (दिल्ली)

उपनिदेशक आकाशवाणी, दिल्ली

(विश्वकवि गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर आधारित संस्कृत उपन्यास 'गोस्वामी' के लेखक)





मानस संगम बत्तीसवाँ समारोह

लोकार्पण

बहुभाषाविद् महामहिम आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री

(राज्यपाल, उत्तर प्रदेश)

समर्पण

संत श्री प्रेमभूषण जी महाराज

परामर्श मण्डल

डॉ0 शिवमंगल सिंह 'सुमन', डॉ0 बृजलाल वर्मा, डॉ0 गोपाल दास 'नीरज', नरेन्द्र मोहन, डॉ0 एन. रमन नायर, अच्युतानन्द मिश्र, गिरिराज किशोर, डॉ0 लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक', डॉ शैलनाथ चतुर्वेदी, डॉ0 श्याम सुन्दर घोष, डॉ0 शैलेश जैदी, डॉ0 निजाम उद्दीन, सुन्दर लाल गोयल, डॉ0 सैय्यद महफूज हसन रिजवी 'पुण्डरीक', जितेन्द्र त्रिपाठी, डॉ0 पाण्डेय रामेन्द्र, डॉ0 श्रीमती विद्या चौहान, डॉ0 शिवबालक द्विवेदी, डॉ0 नरेन्द्र द्विवेदी, मइयादीन सर्राफ, डॉ0 सूर्य प्रसाद शुक्ल, डॉ0 विद्या भास्कर बाजपेयी।

सम्पादक मण्डल

डॉ0 (श्रीमती) सुमन राजे, डॉ0 सेवक वात्स्यायन, डॉ0 नजीर मोहम्मद, डॉ0 (श्रीमती) विद्या बिन्दु सिंह, डॉ0 उपेन्द्र, डॉ0 चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, डॉ0 शौनक ब्रह्मचारी, डॉ0 राष्ट्रबन्धु, डॉ0 रणधीर श्रीवास्तव, डॉ0 रामस्वरूप त्रिपाठी, डॉ0 शिवकुमार दीक्षित, डॉ0 रमेश विराम, डॉ0 अजय प्रकाश, डॉ0 माधवीलता शुक्ला, डॉ0 रमेश वर्मा, गीता सिंह, शम्भुनाथ टण्डन, भगवत प्रसाद शर्मा, सुरेन्द्र प्रताप सिंह, डॉ0. देवर्षि शर्मा, डॉ0 योगेन्द्र नाथ शुक्ल, डॉ0 रामलषन सचान, डॉ0 गणेश दत्त सारस्वत, रामशरण बाजपेयी, बालकृष्ण पाण्डेय।

सम्पादक
मदन मोहन शर्मा

उप सम्पादक
अरुण कुमार मिश्र
डॉ0 अनिल शुक्ल

प्रबन्ध सम्पादक
विजय नारायण तिवारी 'मुकुल'

प्रकाशक
बद्रीनारायण तिवारी
संयोजक
मानस संगम समारोह समिति
श्री प्रयाग नारायण मन्दिर (शिवाला)
कानपुर - 208 001
दूरभाष : 362678

छायांकन
कुमार, लल्ला
दिनेश शर्मा, मनोज
संजय लोचन, संजय सिंह
ओम चौहान, दीपचन्द्र

मुद्रक
कंचन प्रिन्टर्स
11/320, सूटरगंज
कानपुर - 208 001
दूरभाष : 550520, 291164

३२वाँ वार्षिक समारोह

प्रेरणास्रोत एवं संरक्षक

बहुभाषाविद् महामहिम आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री जी

राज्यपाल, उत्तर प्रदेश

अध्यक्षता

पद्मविभूषण डॉ० विद्यानिवास मिश्र जी

मुख्य अतिथि

श्रद्धेय श्री प्रेमभूषण जी महाराज

न्यायमूर्ति श्री प्रेम शंकर गुप्त जी

न्यायमूर्ति श्री आई.एम. कुद्दुसी जी

उच्चन्यायालय, उ०प्र०

न्यायमूर्ति श्री डी.पी.एस. चौहान जी

उच्चन्यायालय, म०प्र०

मा० डॉ० कृष्ण बिहारी पाण्डेय

अध्यक्ष – लोक सेवा आयोग, उ०प्र०

कथाकार

श्री गिरिराज किशोर जी

विशिष्ट अतिथि

श्री नरेन्द्र मोहन जी
(सदस्य राज्य सभा)

श्री राजीव शुक्ला जी
(सदस्य राज्य सभा)

वरेण्य अतिथि

मा० श्री राधेश्याम गुप्ता जी
न्यायमंत्री–उ.प्र.

मा० श्री राधेश्याम जी
मन्त्री उ.प्र.

मा० श्री देवेन्द्र सिंह भोले जी
(पूर्व मंत्री उ.प्र.)

स्वागताध्यक्ष

मा० श्री सतीश महाना जी
मंत्री – उ.प्र.

संयोजक

बद्री नारायण तिवारी
संस्थापक/अध्यक्ष – मानस संगम

संचालन – डॉ० मधुलेखा विद्यार्थी

देश-विदेश के आमंत्रित विद्वतजन, पत्रकार, राजनेता, कविगण एवं कलाकार

पद्मविभूषण डॉ0 विद्या निवास जी, श्रद्धेय पं0 प्रेम भूषण जी महाराज, न्यायमूर्ति श्री प्रेमशंकर जी गुप्त (इलाहाबाद), न्यायमूर्ति श्री आई. एम. कुद्दूसी (उच्च न्याया. उ0प्र0) कथाकार श्री गिरिराज किशोर, डॉ0 कृष्ण बिहारी पाण्डेय-अध्यक्ष लो0 सेवा आयोग उ0प्र0, श्री नरेन्द्र मोहन (सदस्य राज्य सभा), श्री राजीव शुक्ला (सदस्य राज्य सभा), डॉ0 सत्येन्द्र श्रीवास्तव (प्रवक्ता कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, लंदन), डॉ0 अशोक कुमार कालिया, (लखनऊ), डॉ0 पार्थ सारथी वेकंटाचार्य (मद्रास), डॉ0 पी. एम. थामस (केरल वि0 वि0), गीतकार कमलेश (मैनपुरी), डॉ0 देवेन्द्र शुक्ला (आगरा), श्री बाबा कानपुरी (नोएडा), श्री प्रेम शंकर त्रिपाठी (कलकत्ता), पं0 गुलाम दस्तगीर (मुंबई), डा0 कृष्ण नारायण पाण्डे (उप निदेशक – दिल्ली आकाशवाणी), डा0 गिरिजा शंकर त्रिवेदी (सम्पादक-'नवनीत' मुंबई), श्री विनय कुमार अवस्थी, श्री नरेश कात्यायन (लखनऊ), डा0 गणेश शंकर बन्धु, डा0 प्रदीप, डा0 सुधाकर मिश्रा (थाड़े मुबंई), मा0 राधेश्याम गुप्ता न्यायमंत्री (उ0प्र0), मा0 सतीश महाना-मंत्री (उ0प्र0), मा0 श्री राधेश्यामजी (मंत्री उ0प्र0), मा0 श्री देवेन्द्र सिंह 'भोले' (पूर्व मंत्री उ0 प्र0), डा0 गिरिजा शंकर त्रिवेदी (देहरादून) , न्यायाधीश श्री चन्द्रभाल सुकुमार, डा0 रफीक अहमद ''रससिन्धु'' (हरदोई), काका बैसवारी (उन्नाव), वाहिद अली वाहिद, डा0 सुमन राजे, डॉ0 यतीन्द्र तिवारी, डा0 अजय प्रकाश, डा0 सुमन दुबे, डा0 चम्पा श्रीवास्तव, डा0 हरि माधव शरण, श्री मनोज त्रिपाठी, श्री दीन मुहम्मद दीन, कविवर रघुवर दयाल श्रीवास्तव (झाँसी), डा0 इन्दिरा सिंह (आगरा), डा0 रामकृपाल (आगरा), गायत्री सचिन्तनी (श्रीलंका), शमिला कौमुदी (श्रीलंका), अनिला कोतलावल (श्रीलंका), योरोवा राजाबगूल (तजिकिस्तान), मुँखथोया ढागिरजब (मंगोलिया) छिरिनल्हम ओढोजिल (मंगोलिया), डॉ0 उमाशंकर उमेश (इलाहाबाद), श्री रामगोपाल ''भावुक'' (ग्वालियर), डॉ0 सुमन यादव (मैनपुरी), डॉ0 मिर्जाहसन नासिर (लखनऊ), कविवर माणिकलाल एवं श्री लक्ष्मी प्रसाद वर्मा राजापुर, (चित्रकूट), सुश्री डॉ कमल मुसद्दी, डॉ0 शशी शुक्ला, प्रो0 रमेश विराम, डॉ0 प्रीति दुबे, कविवर सतीश आर्य (गोन्डा), श्री अनन्त राम गुप्ता (ग्वालियर), डॉ0 सुधा मिश्रा, श्री शक्ति चरण निगम ।

कानपुर गौरव

कवियत्री श्रीमती विजयागोयल – कथा लेखिका
नेत्रहीन डॉ रामकिशन गुप्ता – रज्जब वाणी शोध पर
श्री अमर जीत सिंह जनसेवी– विकलांगों की सेवा हेतु
डॉ सय्यद मेंहदी जाफरी– उर्दू में रामकथा
कु0 राधिका भूषण – प्राचार्या, श्रीकान्त भूषण लिटिल फॉक्स स्कूल की प्रेरणा से
रामायण के प्रेरक प्रसंगों पर बाल कलाकारों द्वारा मंचन

संगीत अर्चना

श्री राजेन्द्र सिंह (फतेहपुर), डॉ0 रेनू निगम जी
डॉ0 लक्ष्मी शंकर शुक्ल (लोकगीतकार)
श्रीमती सपना बनर्जी, कविता/प्रवीण युगल गायक
कु0 नीलम सिंह (जयपुर, आकाशवाणी, दूरदर्शन) युवराज गुलाटी
श्री अवधेश मिश्र, श्री हरिओम मिश्रा (संगतकार)

मानस संगम समारोह-विगत अधिवेशनों के स्वागताध्यक्ष

श्री नरेन्द्रजीत सिंह बार-एट-ला, पं० देवदत्त मिश्र (सम्पादक दैनिक विश्वमित्र), पं० जागेश्वर प्रसाद त्रिवेदी (भूतपूर्व नगर प्रमुख), पं० बाबूलाल मिश्र एडवोकेट (भूतपूर्व अध्यक्ष उ० प्र० बार कौंसिल), श्री भागवत प्रसाद तिवारी (भू० पू० नगर प्रमुख), श्री रामबालक मिश्र एडवोकेट (पूर्व अध्यक्ष उ०प्र० बार कौंसिल), श्री नीनान अब्राहम (भू० पू० कुलपति कानपुर विश्वविद्यालय), श्री रामविलास गुप्त (भू० पू० अध्यक्ष उ० प्र० बार कौंसिल) श्री मंगल प्रसाद जायसवाल (भू० पू० सम्पादक 'दैनिक आज' कानपुर), श्री ज्वाला प्रसाद कुरील, श्री देवकीनन्दन दीक्षित (भू० पू० अध्यक्ष बी.आई.सी.), श्री अब्दुल रहमान खाँ नश्तर (मंत्री उ०प्र०), श्री हरिनारायण निगम (सम्पादक 'दैनिक हिन्दुस्तान', नई दिल्ली), श्री कैलाशनाथ त्रिपाठी (सम्पादक 'दैनिक गणेश' कानपुर), श्री नरेन्द्र सिंह (पूर्व कृषि मंत्री उ० प्र०), श्री नरेश चन्द्र चतुर्वेदी (पूर्व सांसद), श्रीप्रकाश जायसवाल (भू०पू० नगर प्रमुख), श्री हरिकिशन श्रीवास्तव (भू०पू० अध्यक्ष उ०प्र० विधानसभा), महेन्द्र सिंह (भू० पू० नगर प्रमुख), डॉ० ईश्वर चन्द्र गुप्त (सदस्य राज्यसभा), श्री महेन्द्र मोहन गुप्त, श्रीमती सरला सिंह (नगर प्रमुख), श्री रामनाथ महेन्द्र, कैप्टन जगतवीर सिंह द्रोण (संसद सदस्य), डॉ० सर्वज्ञ सिंह कटियार (कुलपति कानपुर विश्वविद्यालय)।
श्री प्रकाश जायसवाल (संसद सदस्य)।

स्वागत मंत्री

श्री प्रेमशंकर टण्डन (भू० पू० जिलाधिकारी), श्री सच्चिदानन्द पाण्डेय (भू० पू० परिवहन आयुक्त, उ०प्र०), श्री एम० पी० पाण्डेय (भू० पू० श्रम आयुक्त उ० प्र०), श्री एस०एल०एस० कुमैय्याँ (उप गृह सचिव, उ०प्र०), श्री एस०एन० आचार्य (सदस्य राजस्व परिषद उ०प्र०), श्री रामरतन राम (निदेशक ग्राम विकास विभाग उ०प्र०), श्री एस० सी० रस्तोगी (लोक सेवा आयोग, उ०प्र०), श्री सुरेश चन्द्र दीक्षित (भू०पू० उप गृह सचिव उ०प्र०), श्री रामशरण श्रीवास्तव (पूर्व जिलाधिकारी कानपुर), श्री चन्द्रशेखर द्विवेदी (भू० पू० संयुक्त सचिव आपूर्ति उ०प्र०),श्री वी०के० दीवान (भू०पू० आयुक्त मेरठ मण्डल उ०प्र०), श्री रामकृष्ण आई.ए.एस. (आयुक्त लखनऊ मण्डल), श्री रवि माथुर आई.ए.एस.) भू० पू० जिलाधिकारी, कानपुर), श्री हरिश्चन्द्र गुप्त, आई.ए. एस. (गृह सचिव उ.प्र), श्री बृजेन्द्र आई.ए.एस. (भू.पू. जिलाधिकारी, कानपुर), श्री रामकृष्ण आई.ए.एस. (भू० पू० जिलाधिकारी कानपुर), श्री अनुराग गोयल (भू० पू० जिलाधिकारी, कानपुर नगर), श्री बृहस्पति शर्मा (भू० पू० जिलाधिकारी कानपुर), श्री के०के० सिंह (भूतपूर्व जिलाधिकारी, कानपुर), श्री वी०वी० सिंह (पूर्व अपर जिलाधिकारी, कानपुर नगर), श्री रामशरण श्रीवास्तव (जिलाधिकारी), श्री कपिल देव आई.ए.एस. (आयुक्त कानपुर), श्री हरिभजन सिंह.(जिलाधिकारी, कानपुर), श्री रामशरण श्रीवास्तव (पूर्व जिलाधिकारी, कानपुर)।



अनुक्रम

दिखा लोक जीवन के भीतर जिसने दिया सहारा – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल १
ईश्वर के नामों में सर्वप्रसिद्ध नाम राम ही है – स्वामी करपात्री जी २
मानस अमृतमय ग्रन्थ है – स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती ३
तुलसी सारा श्रेय ईश्वर को ही देते हैं – युग तुलसी राम किंकर उपाध्याय ६
अहंकार पतन की ओर ले जाता है – आचार्य प्रेम भूषण ११
दलितोद्धारक राम – डॉ० नजीर मुहम्मद १२
विज्ञान और गोस्वामी तुलसीदास – सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' १३
प्रेम और मानवता के संदेश वाहक शेखर सेन – विमला पाटिल १५
समस्या – के. जी. बालकृष्ण पिल्लै १६
राम तो सभी के हृदय में बसते है – अब्बास खान 'संगदिल' १७
मानव मन मन्दिर बन जाये – चिरंजी लाल शर्मा 'विनोदी' १६
इन्डोनेशिया के राष्ट्रीय पर्व में शामिल है राम-लीला – नेहा भटनागर २०
धरती स्वर्ग बना लो – श्रीमती शिवा शर्मा २१
वह साहित्याकाश का खुला नेत्र है – डॉ वसुदेव शरण अग्रवाल २२
तुलसी तुलसी हो गये – डॉ० (श्रीमती) शशि शुक्ला २५
गोस्वामी तुलसीदास तथा शेक्सपियर –हृदय नारायण सिंह २६
युगद्रष्टा, युग सृष्टा तुलसी – डॉ० गिरिजा शंकर त्रिवेदी ३१
जीवन की इसी में सार्थकता है – डॉ० गणेश दत्त सारस्वत ३२
आद्या शक्ति है सीता – योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण' ३५
तिमिर भगेगा इस धरती से – डॉ० नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम' ३७
तुलसी की दृष्टि में मानव शरीर की सार्थकता – डॉ० रामा प्रसाद मिश्र ३८
तुलसी के स्त्री पात्र – डॉ० के. बनजा ४०
जहाँ रावण ने विवाह किया था – महेन्द्र ४५
राम ज्यों-ज्यों पास तुम आते रहे – पी.डी. निर्मल ४७
प्रार्थना में निहित है चमत्कारिक शक्ति – सुदर्शन कान्त ४८
जार्जिया में रामकथा – डॉ० परशुराम शुक्ल ५०
उनकी तो अतुलनीय शक्ति है – मोहन जायसवाल ५१
गोस्वामी तुलसीदास – स० बलविन्दर सिंह ५२
समझना आसान नहीं – रामेश्वर वैष्णव ५२
हे राम आपका इंतजार है – डॉ० जवाहर धीर ५२
गीतावली में विभीषण का अन्तर्द्वन्द्व – डॉ० उमाशंकर शुक्ल 'उमेश' ५३
वाली और रामचन्द्र – डॉ० के.के.ए. वेंकटाचारी ५६
कहते हैं हमने खूब रामायण पढ़ी है – माया वर्मा ५८
तभी अमृत प्राप्त होगा – डॉ० फीरोजा मुजफ्फर ५६
भवभूति और तुलसी – डॉ० कृष्ण देव प्रसाद ६१
रत्नावली की पाती – रामगोपाल भावुक ६४
उन्होंने समाज को नयी दिशा दी – सूर्यकान्त द्विवेदी ६६
हुलसी के तुलसी – दीन मोहम्मद 'दीन' ६७
पावन चित्रकूट – आचार्य राजीव मिश्र ६७
तुलसी के विदेशी चितेरे – डॉ० बद्री नारायण तिवारी ६८
राम अपार गुणों के सागर हैं – डॉ० शंकर राव कप्पीकेरी ७१
यह भगवद्-भक्ति का प्रमुख अंग है – डॉ० गजानन शर्मा ७३
वे ही जन सम्पूज्य विश्व में – श्याम बाबू ओमर शास्त्री ७६
तेरे जैसा तू ही है – श्रीमती मालती शर्मा ८०
Where Culture Meet — Kapil Dixit ८२
क्या सचमुच रावण के दस सिर थे – डॉ० न.बी. राजगोपालन् ८३
जीवन में जिसके प्यार नहीं – सुश्री निखत बेगम ८५
विवाह के समय राम-सीता की आयु – डॉ० रमानाथ त्रिपाठी ८६
समाज में समरसता प्रवाहित हो सकती है – डॉ० कमलाकांत पाण्डेय ८७
राम भारत की माटी के अलौकिक रत्न हैं – डॉ० सुधाकर मिश्र ८६
ओ! तुलसी बाबा – वाहिद अली 'वाहिद' ६१
फिर धनुष बाण ले राम उठो – डॉ० उर्मिलेश कुमार शंखधार ६१
त्याग पूर्वक भोग करो – स्वामी विद्यानन्द सरस्वती ६२
हम किधर जा रहे हैं – आचार्य दिवाकर शर्मा ६३
नारी वंदनीय और पूज्यनीय है – प्रो० अवधेश प्रसाद पाण्डेय ६५
सुनि अति सुख पाये – मुकुन्द लाल तिवारी ६७
जहाँ पर पत्थर बोलते हैं – दुर्गा नारायण तिवारी ६८

प्रेम न हृदय समाये – इफ्तिखार अहमद 'राना' १००
ज्योति ज्योति लिये जग आयी – ओमप्रकाश वरसैयाँ १००
राम-सीता का दामपत्य – दुर्गा चरण मिश्र १०१
नवनीत समान बनी है – डॉ० गणेश दत्त सारस्वत १०३
नहिं दरिद्र सम दुख जग माही – कालीचरण दीक्षित 'कवीश' १०४
बृज भाषा – आचार्य चैतन्य गोस्वामी १०६
तुलसी का शाश्वत नव लेखन – डॉ० गंगा प्रसाद वरसैयाँ १०७
नव मारीच-डॉ. ओंकार नाथ त्रिपाठी/कवि कामना - राम अवतार दीक्षित १०६
अन्तर जोति जरति हइ - तृषित अग्निहोत्री/यूँ कमाल करि देत हैं - गोवर्धन गुप्त 'सुमन' १०६
राज कि रहई नीति बिनु जाने – कै० कामता प्रसाद दुबे ११०
चेतन से भावुक जटायु – डॉ० नरेश कात्यायन ११३
प्रभु ने लिया अवतार – बेताब केवलारवी ११३
राम विजय यात्राा – राम नारायण उपाध्याय ११४
अग्नि परीक्षा – प्रमोद शंकर शुक्ल ११६
ट्रैवलर्स चेक – डॉ. के.जी. बालकृष्ण पिल्लै ११६
नमन करौ किनको – नरेश कौशल ११६
नैमिष में अश्वमेध – राजेश मिश्र/भगवती तिवारी ११७
धार लो मुद्रिका राम गुण ग्राम की – कृष्ण कुमार अवस्थी ११६
शिवमय राम नाम – राधाचरण गुप्त ११६
राम का मणि दीप – डॉ० क्षमा शंकर पाण्डेय १२०
कमल नयन श्री राम - तुलसीपत्र अशोक १२२
दशरथ जन्म – डॉ० गणेश शंकर शुक्ल 'बन्धु' १२३
मानस जन कल्याण हेतु – डॉ० रोहिताश अस्थाना १२४
राम रूप हो राम में – कन्हैयालाल बाजपेयी १२६
मधुर मनुहार तुलसी – कु० भारती सेंगर १२६
तुलसी की नारी भावना – डॉ० आशा सिन्हा १२७
श्रीतुलसीदासाय नमः – डॉ० मिर्जा हसन नासिर १२८
रत्नों का आकर मानस है – जगदीश शरण बिलगईयाँ १२८
तुलसी की विश्व दृष्टि – श्रीनिवास शर्मा १२६
मैं चार दिवस बंधन – नरेन्द्र उम्मीद १३२
कुम्भकरण हो गई चेतना – राज गोस्वामी १३२
तुलसी तुम्हारे बिना – भैरव प्रसाद द्विवेदी १३२
कैकेयी ने वनवास दिया – कमलेश शर्मा १३३
यह ही जीवन को गति प्रदान करता है – डॉ० विद्या भाष्कर वाजपेयी १३४
राम रमे ही प्राण में – ओम प्रकाश भाटिया १३५
आज फिर राम चाहिये – साविस्ता बृजेश १३६
राम तुम रमा करो – नवाबोद्दीन खाँ १३६
यह परिदृश्य बड़ी घुटन का है – पद्मविभूषण डॉ० विद्यानिवास मिश्र १३७
राष्ट्रीय-जागृतिः – पंडित गुलाम दस्तगीर अ० बिराजदार १४०
राजनीति की धारा में साहित्य के मुसाफिर आचार्य विष्णु कान्त शास्त्री – डॉ० प्रदीप १४२
आत्म साक्षात्कारः – डॉ० कृष्ण नारायण पाण्डेय १४५
एक अद्भुत संगम – डॉ० राजमल बोरा १४७
हिन्दी की पारिवारिक वेदना – कुश चतुर्वेदी १५०
भारत की माटी सुन्दरता की खान है – सतीश आर्य १५१
संस्कृत भाषा राष्ट्रीय एकता की प्रतीक है – डॉ० अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव १५३
मेरी दृष्टि में महाकवि रज्जब – डॉ० रमाकिशन गुप्त १५४
वे भारतीय संस्कृति के अद्भुत कोश थे – क्षेम चन्द्र सुमन १५६
हिन्दी – श्री कृष्ण अग्रवाल १५६
हिन्दी साहित्य का कुम्भ – नारायण प्रसाद तिवारी 'रसिक' १५६
मारीशस में तुलसी जयंती पर हिन्दी दिवस – डॉ० वीरेन्द्र शर्मा १६०
हिन्दी हैं हम – हिन्दी नहीं हमारी – डॉ० र. शौरि राजन १६३
एक आस एक विश्वास – डॉ० यतीन्द्र तिवारी १६६
अन्तर्राष्ट्रीय सूचना – क्रांति और हिन्दी – फ्रीडमैन श्लैंडर (जर्मनी) १६७
रहीम की संस्कृत सेवा – डॉ० आरिफ नजीर १६६
अब्रह्मण्यम् – जितेन्द्र कुमार त्रिपाठी १७५
हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सारस्वत समारोह १७२
राम सत्यम-शिवम्, सुन्दरम् के प्रतिनिधि चरित्रा १७७
राम के साथ जुड़ने की आकुलता से ही कल्याण संभव १७८
कर्तव्य की प्रेरणा देता है मानस १७६
आज अयोध्या की गलियों में झूमे जोगी मतवाला १८०
विप्लव दिवस पर शहीदों के स्मरण का संकल्प १८०
संविधान का उचित अनुपालन न होने के कारण ही हिन्दी की दुर्दशा १८१
स्वर्गीय साहित्य मनीषियों को स्मृति श्रद्धांजलि १८२

दिखा लोक जीवन के भीतर जिसने दिया सहारा

— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दी साहित्य जगत के देदीप्यमान नक्षत्र आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की विश्व कवि तुलसी के सम्बन्ध में एक कविता 'माधुरी' (अगस्त 1927 ई0) में प्रकाशित हुई थी जिसमें बताया गया है कि तुलसी ने अपनी चमत्कारी लेखनी से शक्ति और शीलमय मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के मनोहर स्वरूप को चित्रित कर लड़खड़ाते हिन्दू समाज में नवचेतना का संचार किया। प्रस्तुत है सुधी पाठकों के लिए कविता के कतिपय अंश।

— सम्पादक

इतने में सुन पड़ी अतुल सी तुलसी की बर बानी
जिसने भगवत्कला लोक के भीतर की पहचानी।
शोभा-शक्ति-शील मय प्रभु का रूप मनोहर प्यारा
दिखा लोकजीवन के भीतर जिसने दिया सहारा।
शक्तिबीज शुभ भव्य भक्ति वह पाकर मंगलकारी
मिटी खिन्नता, जीने की रुचि फिर कुछ जगी हमारी।
जिय 'दंडकवन में प्रभु की कोदंड चंड ध्वनि भारी
सुनकर कभी हुए थे कंपित निशिचर अत्याचारी
वही शक्ति वह झलक उठी झंकार सहित भयहारी,
दहल उठा अन्याय, उठी फिर मरती जाति हमारी।
प्रभु को लोकरंजिनी छवि पर जब तक भक्ति रहेगी।
तब तक गिर-गिर कर उठने की हम में शक्ति रहेगी।
रंजन करना साधुजनों का, दुष्टों को दहलाना,
दोनों रूप लोकरक्षा के हैं, यह भूल न जाना।
उभय रूप में देते हैं जिसमें भगवान् दिखाई
वह प्राचीन भक्ति तुलसी से फिर से हमने पाई।
यही भक्ति है जगत् बीच जीना बतलाने वाली,
किसी जाति के जीवन की जो करती है रखवाली।
खींच वीरता, विद्या बल पर से जो भक्ति हमारी,
अपनी ओर फेर करते हों लोकधर्म से न्यारी।
हमें चाहिए उनसे अपना पीछा आप छुड़ावें
तुलसी का कर ध्यान न उनकी बातों में हम आवें।''

ईश्वर के नामों में सर्वप्रसिद्ध नाम राम ही है

– ब्रह्मलीन अनन्त श्री विभूषित स्वामी करपात्री जी महाराज

राम की धर्म में तत्परता, मुख में मधुरता स्तुत्य थी । दान में उनका समुत्साह तथा मित्र के प्रति अवञ्चकता भी लोकोत्तर थी । गुरु के प्रति वे विनयी थे । उनके चित्त में गम्भीरता, आचार में पवित्रता, गुणों में अभिरुचि, शास्त्रों में अभिज्ञता, रुप मे सुन्दरता एवं हरि में भक्ति भी अत्यंत उत्कृष्ट थी, इसीलिए ऋषियों की दृष्टि में राम से भिन्न कोई भी काव्यों के यश का भाजन हो ही नहीं सकता । मृदुता, करुणा, श्रुत(परम्परा से वेदादि शास्त्र ज्ञान), शील, इन्द्रिय निग्रह , मनोनिग्रह ये छः गुण राघवेन्द्र राम को शोभित करते हैं । शोभा, कान्ति, छवि, वर्ण, लक्षण, लावण्य, अभिजात्य, सौभाग्य, राग आदि रुप के सभी भेद राम के सम्बन्ध से ही शोभित होते हैं । अगों की रेखाओं की स्पष्टता रूप है गौरत्वादि धर्म विशेषण वर्ण है । चाकचिक्यादिरूप कान्ति प्रभा है, चक्षुओं को बाँधने वाला स्मितमुखत्वादि ही राग है, कुसुम के समान कोमल स्पर्श विशेष आभिजात्य है, कटाक्षादि विलास हैं एवं तरलता लावण्य है । माता-पिता की आज्ञा के पालन के प्रसंग में श्रीराम ने अखण्ड भूमण्डल के राज्य को तृणवत् त्यागकर सहर्ष वनवास स्वीकार किया । अपने प्रिय-भ्राता लक्ष्मण ने जब कैकेयी को उचित निन्दा की तो राम ने स्पष्ट कह दिया – तात, मेरी मध्यमा अम्बा कैकेयी की निन्दा मत करो, भरत की ही चर्चा करो ।

राम धनुर्वेदविदों में सर्वश्रेष्ठ थे एवं अतिरथियों में भी उनकी धाक थी । वे शत्रु सेना पर आक्रमण और प्रहार करने में दक्ष और सैन्यसंचालन में विशेष निपुण थे । संग्राम में क्रुद्ध देवता एवं दानव भी उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे । इतने पर भी वे दूसरों की असूया नहीं करते थे और न ही क्रुंद्ध होते थे । घमण्ड एवं परोत्कर्ष की असहिष्णुता उनमें नहीं थी, फिर भी उनकी युद्ध कुशलता और दृढ़ प्रहार शत्रुओं पर अपना गहरा प्रभाव डालते थे कि वे सदा आतंकित रहते थे । तभी तो मारीच राम से इतना प्रभावित था कि रत्न, रथ आदि शब्दों के रकार सुनकर राम समझकर भयभीत हो जाता था । रावण के गुप्तचर भी यह अनुभव करते हैं कि राम के कुपित होने पर उन्हें कोई वश में नहीं कर सकता । वे सम्पूर्ण लोकों का संहार करके नये सिरे से प्रजासृष्टि करने में समर्थ हैं । सब देवगण एवं असुर मिलकर भी उनका वध नहीं कर सकते । राम के अनुसार शत्रु भी यदि शरण में आये, हाथ जोड़कर दया की याचना करे, तो आनृशंस्य की दृष्टि से कभी भी उस पर प्रहार नहीं करना चाहिए । आर्त हो यदि वह शत्रु के शरण में आया हो तो शत्रु को अपने प्राणों का त्याग कर भी उसकी रक्षा करनी चाहिए ।

राम ने श्रान्त, विरथ तथा निःशस्त्र रावण को अवसर दिया कि वह स्वस्थ, रथी,धन्वी होकर आये तब उससे युद्ध किया जाये । तभी मारीच जैसे राक्षस ने भी राम को निर्दोष विग्रहवान धर्म ही बतलाया था । राम धर्म के मूर्तिमान रुप हैं । साधु एवं सत्यपराक्रमी हैं । रावण वध के बाद विभीषण ने पहले शोक व्यक्त करते हुए रावण के गुणों का वर्णन किया, परन्तु अन्त में जब उसकी अन्त्येष्टि का प्रसंग आया तब उसके सीताहरण आदि दुष्कृत्यों का स्मरण करके अन्त्येष्टि करना उन्होंने अस्वीकार कर दिया । तब राम ने कहा मरने तक ही बैर रहता है । हमारा प्रयोजन सिद्ध हो चुका है । अब यह जैसा तुम्हारा भाई है वैसा ही मेरा भी है । तुम इसका दाहादि संस्कार करो । राम ने उसकी प्रशंसा भी की । रावण अधर्मी, असत्यवादी होने पर भी संग्राम में तेजस्वी, बलवान तथा शूरवीर रहा है । इन्द्रादि देवता भी इसे पराम्त नहीं कर सके थे । इसने अनकों दान, यज्ञ एवं श्रेष्ठ कर्म भी किये हैं । लंका जैसे वैभवशाली राष्ट्र को जीतकर भी राम ने उसके वैभव पर दृष्टि नहीं डाली । रावण के भाई विभीषण को ही लंका सौंप दी । इसीलिए रामायण की रामाभिरामी टीका में कहा गया है कि राम दो बार बाण नहीं चलाते और दो बार नहीं बोलते अर्थात एक ही बाण से सब अभीष्टों की सिद्धि हो जाती थी । श्री भागवत के अनुसार एक ही बाण से राम ने रावण का वध किया था ।

हिन्दू जाति के धार्मिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक जीवन पर मर्यादा पुरुषोत्तम राम का अमिट प्रभाव है । हिन्दू परिवार में जन्म एवं विवाह के अवसरों पर रामजन्म सम्बन्धी एवं रामविवाह सम्बन्धी गीत गाये जाते है । शरीर की अन्तिम यात्रा 'रामनाम सत्य है' की ध्वनि के साथ होती है ।भारत के कोने-कोने में राम के मन्दिर हैं । करोड़ों हिन्दुओं के ही नहीं श्याम, थाईलैण्ड आदिदेशों के निवासियों के नाम भी रामायण से सम्बन्धित होते हैं । राम प्रत्येक हिन्दू के जीवन में रम रहे हैं । ईश्वर के नामों में सर्व प्रसिद्ध नाम राम का ही है । भारत के बच्चे-बच्चे की जिह्वा पर रामनाम रहता है । संसार के इतिहास में भी ऐसी प्रसिद्धि किसी की भी नहीं है जैसी राम की है । भारत में ही नहीं सुदूरदेशों में भी राम के चरित्रों के आधार पर उनकी लीलाएँ तथा नाटक होते हैं चौबीस हजार श्लोकों की वाल्मीकि रामायण में उनके जीवनवृत्त का ही वर्णन है । **गीता में कृष्ण कहते हैं कि शस्त्रधारियों में मैं राम हूँ ।**

मानस अमृतमय ग्रन्थ है

– अनन्त श्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज के द्वारा रचित ग्रन्थ 'श्रीरामचरितमानस' बिल्कुल रसमय ग्रन्थ है। श्रीराम चरितमानस 'व' से प्रारम्भ होता है और अन्त में 'व' से ही समाप्त भी होता है। प्रारम्भ में 'वर्णानामर्थसंधानां' और अन्त में 'दह्यन्ति नो मानवाः' है। संस्कृत भाषा में 'व' अमृतबीज माना जाता है। अतएव श्रीरामचरितमानस सर्वथा अमृतमय-रसमय ग्रन्थ है।

श्रीरामचरितमानस के प्रारम्भ में गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज वाणी और विनायक की वन्दना करते हैं – 'वन्दे वाणीविनायकौ।' तुलसीदास जी के इष्टदेव तो श्री सीतारामचन्द्र भगवान् हैं; परन्तु, इन्होंने ग्रन्थ के प्रारम्भ से सरस्वती और गणेश की वन्दना की है। यह स्मार्त परम्परा के अन्तर्गत ऐसी परम्परा है कि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में दीक्षित – जैसे वैष्णव, सौर, शैव, शाक्त, गाणपत, इत्यादि – जो भक्त होते हैं, वे ग्रन्थ के प्रारम्भ में अपने इष्टदेव की वन्दना करते हैं। श्री अयोध्याधाम के जो भक्त हैं, उनकी परम्परा यह है कि वे वन्दना तो सबकी करते हैं; परन्तु, फलस्वरूप भगवान् श्री सीतारामचन्द्र की भक्ति माँगते हैं। अपनी 'विनयपत्रिका' के प्रारम्भ में तुलसीदास महाराज ने भी गणपति की वन्दना करते हुए अन्त में यही कहा कि – 'मेरे हृदय में श्री सीतारामचन्द्र भगवान् का निवास हो' –

गाईये गणपति जगवन्दन, शंकरसुवन भवानीनन्दन.......।
माँगत तुलसीदास कर जोरे, बसहु रामसिय मानस मोरे।।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में सरस्वती की वन्दना करना अथवा ग्रन्थरचना के सर्वथा निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण होने के लिए गणपति की वन्दना करना – यह स्मार्तों की परम्परा में है। तात्पर्य यह है कि अमृतमय श्रीरामचरितमानस ग्रन्थ स्मार्त परम्परागत है।

राऽऽऽऽम। राऽऽऽऽम। राऽऽऽऽम। राऽऽऽऽम।

वाणी–विनायक–वन्दन

ग्रंथ–रचना में वर्ण, अर्थ, रस, छन्द और मंगल–इन पाँच चीजों की जरूरत पड़ती है। ग्रन्थ रचना में सबसे पहली चीज तो यह है कि वर्णविन्यास सुन्दर होना चाहिए। अक्षर-पर-अक्षर बहुत बढ़िया होना चाहिए– देखो! यही 'वर्ण' शब्द अंग्रेजी भाषा में 'वर्ड' हो गया है। 'ण' का 'ड' होने से वर्ड हो गया है। 'ण' और 'ड' दोनों टवर्गी हैं। तो, ग्रन्थरचना में सर्वप्रथम जरूरी चीज यह है कि शब्द-विन्यास सार्थक होना चाहिए। यदि शब्द-विन्यास तो बहुत अच्छा हो; लेकिन उसमें कुछ अर्थ न हो, तो वह रचना निरर्थक हो जाती है। देखो ! गुंज-पुंज-लुंज शब्दविन्यास तो बड़ा बढ़िया है। पप्पू-टप्पू-गुट्टू-लट्टू शब्द रचना तो बहुत सुन्दर है। अब जरा इसका अर्थ बताओ। सीताराम कहो। तो, भाई मेरे! ग्रन्थ रचना में यह चीज जरूरी है कि शब्द रचना सार्थक हो। शब्द विन्यास में सुन्दरता के साथ-साथ अर्थ भी होना चाहिए। अच्छा! शब्द-विन्यास रसमय भी होना चाहिए। यदि शब्द-विन्यास सुन्दर भी हो और सार्थक भी हो; परन्तु, उसमें रसीलापन न हो, तो वह किस काम का? शब्द और अर्थ तो साधारण लोग भी बोलते हैं अतएव ग्रन्थ रचना में यह चीज जरूरी है कि वर्ण-विन्यास में अर्थ के साथ-साथ रस भी होना चाहिए। देखो! रसीली बात तो गद्य में कही जाती है। यदि पद्य में रस -निष्पत्ति हो, तो फिर क्या कहना है? रसमय पद्य कहो। नारायण! यह जरूरी चीज है कि वर्ण-विन्यास छन्दमय होना चाहिए! अब पाँचवी चीज यह है कि ग्रन्थ में जो कुछ कहा जा रहा है, उसमें मंगल होना चाहिए। 'मंगल' शब्द का अर्थ है – उन्नति, प्रगति। यह लाभ उठाने के दृष्टिकोण का सूचक है। 'मङ्गतौ' से मंगल शब्द बनता है। इसका मतलब है कि हम कहीं जम न जायें। हमारा हर कदम आगे पड़े। हम जहाँ–के तहाँ जमकर जड़ न हो जायें और पीछे भी न लौटें बल्कि कदम-कदम आगे बढ़ें। इसी का नाम है – 'मंगल।' शब्द रचना मंगलमय होनी चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है

कि ग्रन्थ रचना में चीज पर ध्यान देना बहुत जरूरी है कि ग्रन्थ का अध्ययन लाभदायक हो। ग्रन्थ का अध्ययन करने से हमारी उन्नति हो। हम प्रगतिशील बनें। हम अपने जीवन में उत्तरोत्तर आगे बढ़ें।

ग्रंथ-रचना में आवश्यक वर्ण, अर्थ, रस, छन्द और मंगल – इन पाँच चीजों के मालिक हैं – वाणी और विनायक। वाणी वाक्‌की देवी है और विनायक गणेश हैं। गणों के ईशका नाम गणेश है। नेत्र, श्रोत्र, नासिका, त्वचा, जिह्वा – ये सब इन्द्रियगण हैं। जो इनका स्वामी है, जो इनको अपने काबू में रखने वाला है, उसको गणेश बोलते हैं। वेदों में जो मन्त्र आते हैं – "गणानां त्वा गणपतिं ॐ हवामहे'; निसुषीद गणपते गणेषु'; इत्यादि, उनसे यह सिद्ध होता है कि गणेश प्रज्ञा के देवता हैं और भी जहाँ-जहाँ गणपति की चर्चा आती है, वहाँ-वहाँ यह सिद्ध होता है कि गणेश बुद्धि के देवता हैं। 'पंचासनमातृकालयाय स्वाहा। सप्तछन्दो निधये नमः। सरस्वत्याश्रयाय नमः। गद्यपद्यसुधार्णवाय नमः।' यह सब गणेश जी की वन्दना है। अपनी प्रज्ञा की शुद्धि के लिए प्रज्ञा के अधिपति गणेशजी की वन्दना करनी चाहिए। अपनी वाक्‌की शुद्धि के लिए वाक् की अधिष्ठात्री देवी वाणी की सरस्वती की वन्दना करनी चाहिए। ग्रन्थ लिखने के लिए यह आवश्यक है कि समस्त इन्द्रियगण पवित्र हों और इनका स्वामी भी प्रसन्न हो। वाणी और विनायक की प्रसन्नता से शास्त्र कृपा प्राप्त होती है। अतएव ग्रन्थ रचना की सफलता के लिए वाणीविनायक – दोनों की वन्दना अभीष्ट है। वन्दना करने से वाणी विनायक प्रसन्न होते हैं। वाणी विनायक की प्रसन्नता से शास्त्र कृपा प्राप्त होती है। शास्त्र कृपा प्राप्त होना ही ग्रन्थ रचना की सफलता है। शास्त्र कृपा प्राप्ति हेतु वाणी विनायक वन्दन की अनिवार्य आवश्यकता है।

अच्छा, देखो! गणेश जी शिरोभाग में निवास करते हैं। वाणी-देवी जिह्वापर निवास करती है। दोनों का साथ है। दिमाग भी ठीक हो और बोलना भी ठीक हो। जो मनुष्य बोलने में असावधान है, उसका दिमाग भी असन्तुलित है। कहाँ, कब, किससे, क्या बोलना चाहिए? इसका ज्ञान होना मनुष्य के लिए अनिवार्य है। बोलने के पहले गणेश जी को प्रसन्न होना ही चाहिए। यदि गणेश जी वक्ता पर प्रसन्न हों, तो फिर देखो कि वाणी की धारा कैसी बहती है। नारायण! यदि मनुष्य का मस्तिष्क सन्तुलित हो, तो उसकी वाणी भी सन्तुलित होगी।

यह वाणी क्रम–क्रम से नीचे जाती है। जब जोर-जोर से बोलते हैं, तब 'वैखरी' वाणी जीभ में होती है। 'मध्यमा' वाणी कण्ठ में होती है। 'पश्यन्ती' वाणी हृदय में होती है। 'परा' वाणी मूलाधार में होती है। जब उपासक ध्यान करते-करते परावाणी में पहुँच जाता है, तब उसकी समाधि लग जाती है। उस समय उपासक को गणेशजी के लिए यह करना पड़ता है कि मूलाधार से लेकर सहस्रार पर्यन्त ऊपर जाना पड़ता है। यह जो षट्चक्र है, वह नीचे से लेकर ऊपर तक विराजमान है। जैसे मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र। उसके बाद गुरुस्थान है। मूलाधार चक्र में परावाक् का निवास है। मूलाधार में गणेश और वाणी दोनों एक साथ रहते हैं। वहाँ से जब कुण्डलिनी का जागरण होता है, तब वाणी और विनायक जाकर के गुरुस्वरूप गणेश में मिल जाते हैं।

गणेश जी को यह बरदान प्राप्त है कि किसी भी कार्य के प्रारम्भ में उनकी वन्दना करने से यह कार्य निर्विघ्न रूप से सिद्ध हो जाता है। जब अमृत के लिए क्षीर सागर का मन्थन हो रहा था और उसमें विघ्न पड़ गया, तब पहले विघ्नेशविधि की गयी। गणेश जी का पूजन करने पर ही अमृत–मन्थन कार्य सिद्ध हुआ। नारायण! कोई भी काम प्रारम्भ करना हो, तो उसकी निर्विघ्नता से पूर्ति और अभिवृद्धि के लिए सबसे पहले गणेशजी की वन्दना करनी चाहिए। अतः ग्रन्थ रचना-कार्य की निर्विघ्नता से पूर्ति और सफलता के लिए सर्वप्रथम विघ्ननिकन्दन गणेश जी का वन्दन करना चाहिए। यदि गणेश जी प्रसन्न हों, तो सरस्वती देवी प्रसन्न होकर जिह्वा पर नृत्य करती है। वाणी देवी की कृपा धारा निर्बाध गति से प्रवाहित होती है। वाणी-विनायक की प्रसन्नता से शास्त्र कृपा प्राप्त होती है। ग्रन्थ-रचना सफल होती है। देखो ना! शास्त्र-कृपा प्राप्ति हेतु वाणी विनायक की प्रसन्नता अत्यन्त अनिवार्य आवश्यकता है। अतएवं उनकी वन्दना ही ग्रन्थ-रचना की सर्वप्रथम विधि है। 'गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज अपने अमृतमय रसमय ग्रन्थ 'श्रीरामचरितमानस' की रचना करते समय सबसे पहले वर्ण, अर्थ, रस, छन्द और मंगल के मालिक वाणी और विनायक का वन्दन करते हुए कहते हैं –

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।

मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ

राऽऽऽऽम ! रामऽऽऽऽम ! राऽऽऽऽम ! राऽऽऽऽम !

श्रद्धा विश्वास का नाम ही भवानी-शंकर है । श्रद्धा विश्वास साक्षात् भवानी शंकर के रूप हैं । भवानी साक्षात् श्रद्धा रूप हैं । शंकर साक्षात् विश्वास रूप हैं ।

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता ।

यह तो हम लोग दुर्गापाठ में पढ़ते ही हैं इससे यह सिद्ध होता है कि भगवती श्रद्धा रूप हैं । श्रद्धा साक्षात् भगवती ही हैं । श्रद्धा-विश्वास के रूप में भवानी-शंकर सबके हृदय में विराजमान हैं और 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ – वाक् और अर्थ के समान एक साथ मिले हुए रहते हैं । हम ईश्वर कृपा प्राप्ति हेतु सबके अन्दर श्रद्धा–विश्वास के रूप में स्थित भवानी शंकर की वन्दना करते हैं ।

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ । याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ।।

श्रद्धा = श्रत् + धा । श्रत् माने सत्य । धा माने धारण करना । महात्मा लोग सत्‌को ही श्रत् बोलते हैं उनकी दृष्टि में यह बात छिपाने की है । निरुक्त में आया है कि 'श्रदिति सत्य ।' सत्य का नाम है श्रत् । अमुक वस्तु सच्ची है, ऐसा धारण करने का नाम श्रद्धा है । विश्वास माने विगत श्वास हो जाना । उसके लिए मुर्दा सरीखे हो जाना पड़ता है । हटाने से भी नहीं हटता – ऐसी निष्ठा अन्तःकरण में हो जाना विश्वास है ।

श्रद्धा तत् पदार्थ की प्रधानता से होती है । विश्वास त्वं पदार्थ की प्रधानता से होता है । श्रद्धा परोक्ष में होती है । विश्वास अपरोक्ष में होता है । श्रद्धा श्रद्धेय–प्रधान होती है । विश्वास श्रद्धालु प्रधान होता है । यह हमारे ध्यान में रहता है कि हम जिस पर श्रद्धा करते हैं, उस श्रद्धेय में क्या-क्या गुण हैं ? सामने वाले के अन्दर सद्‌गुण देखकर ही हमारे हृदय में श्रद्धा का उदय होता है । जब वह श्रद्धा पक्की हो जाती है, तब विश्वास बन जाती है । विश्वास बनने का अभिप्राय यह है कि अब हमारे श्रद्धेय में गुण हों अथवा नहीं हों, हमारी तो निष्ठा उसमें जम गयी । श्रद्धा जमाने के लिए सामने वाले व्यक्ति में गुण होने की जरूरत पड़ती है । वह कितना सुन्दर है ? कितना सुशील है ? कितना शूर है ? कितना वीर है ? कितना विक्रान्त है ? कितना दयालु है ? कितना योगी है ? कितना ज्ञानी है ? उसमें क्या-क्या सद्‌गुण मौजूद हैं ? – यह सब कुछ हमारे ध्यान में रहता है । विश्वास होने पर वह अपने अन्तःकरण की – अपने जीवन की निष्ठा हो जाती है । विश्वास अपने अन्तःकरण का गुण है । उसमें दृढ़ता है – निष्ठा है । श्रद्धा के दृढ़ परिपाक को ही विश्वास कहते हैं । श्रद्धाविश्वास अपने हृदय में ही रहते हैं; लेकिन श्रद्धा में सहारा सामने वाले का ज्यादा होता है और विश्वास में सहारे की जरूरत नहीं होती है । उससे हम अपने बल पर खड़े हो जाते हैं ।

श्रद्धा से धर्म की उत्पत्ति होती है । श्रद्धा के बिना धर्म नहीं होता है । विश्वास के बिना कोई सिद्धि नहीं मिलती है ।

श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई, कवनेउ सिद्धि के बिनु विश्वासा ।

श्रद्धा-विश्वास से ईश्वर-कृपा प्राप्त होती है । श्रद्धा विश्वास के बिना ईश्वर की कृपा प्राप्त नहीं हो सकती है । ईश्वर कृपा प्राप्त करने के लिए हमारे हृदय में श्रद्धा विश्वास होना चाहिए ।

कृपा-जगत् में ऐसा बोलते हैं कि जिसके ऊपर भवानी शंकर कृपा करते हैं, उसको ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है । दूसरे शब्दों में ऐसा भी कहते हैं कि जिसके हृदय में श्रद्धा और विश्वास आ जाते हैं, उसको ईश्वर का दर्शन हो जाता है । व्यतिरेक मुखसे यही बात उल्टी करके बोली जाती है कि श्रद्धा विश्वास के बिना अपने हृदय में स्थित ईश्वर का दर्शन नहीं होता है । इसलिए श्रद्धा विश्वास को अपने हृदय में धारण करके अपने हृदय में ही विराजमान ईश्वर का दर्शन करना चाहिए । ईश्वर कहीं बाहर नहीं है – 'स्वान्तःस्थमीश्वरम् ।' जहाँ तुम्हारे मन में ईश्वर के दर्शन की इच्छा होती है । वहाँ ईश्वर बैठा हुआ है । ईश्वर के दर्शन की इच्छा होने पर उसको देखने के लिए बाहर जाने की जरूरत नहीं है । यदि कश्मीर देखने की इच्छा हो तो कश्मीर देखने जाना पड़ेगा । यदि ईश्वर के दर्शन की इच्छा हो तो कहीं जाना नहीं पड़ेगा । इच्छा का उदय जिसमें से हुआ है, वही तो ईश्वर है । इच्छा के मूल का अनुसंधान करना पड़ता है । यह बात गुरु कृपा के बिना नहीं हो सकती । ईश्वर-कृपा प्राप्त करने के लिए हृदय में श्रद्धा विश्वास होना आवश्यक है । ईश्वर दर्शन प्राप्ति के लिए शंकर रूप गुरु की कृपा का होना अनिवार्य है ।

❑❑❑



तुलसी सारा श्रेय ईश्वर को ही देते हैं

—युग तुलसी रामकिंकर उपाध्याय

रामचरित मानस का केन्द्र बिन्दु मन है और मन की समस्याओं का समाधान ही मानस की विलक्षणता है। मन हर युग में हर व्यक्ति से जुड़ा हुआ है। शरीर की समस्याएँ तो बदलती रहती हैं परन्तु मन की समस्या सर्वदा विद्यमान रहती है। प्रत्येक व्यक्ति के मन में एक लंका छिपी हुई है। रावण की लंका मय नामक एक दानव ने बनाई थी। जिस लंका पर पहले देवताओं, फिर यक्षों और बाद में राक्षसों ने राज्य किया उसी मय नामक दानव ने द्वापरयुग में युधिष्ठिर का महल और सभा का निर्माण भी किया था, जिसमें थल के जल और जल के थल होने का भ्रम पैदा होता था। मय नामक दानव कलयुग में भी है और यह और कोई नहीं बल्कि मन है। विभीषण का प्रसंग लें। गलत व्यक्ति के प्रति निष्ठावान बने रहना न्यायसंगत नहीं है। यही कारण है कि विभीषण ने बुद्धि का प्रयोग करते हुए रावण का साथ नहीं दिया और मेघनाद से कहा कि लंका में बुराइयों की आग लगी हुई है इसलिए मैं इससे बाहर आकर इसे बुझाने का प्रयास कर रहा हूँ। यदि मैं इसमें रहूँगा तो स्वयं भी जल जाऊँगा।

त्याग वही सार्थक है जिसमें अभिमान नहीं हो। रामभक्त हनुमान का उदाहरण लें। त्याग, सेवा, भक्ति, पराक्रम जैसे गुण होने के बाद भी हनुमान जी के चरित्र में कहीं पर भी अहम् की भावना नहीं है। अभिमान शून्य व्यक्ति ही बुराई रूपी लंका से सकुशल लौट सकता है। लंका जाते समय सुरसा द्वारा हनुमान की परीक्षा लिये जाने की प्रसंग से यह शिक्षा मिलती है कि ताकतवर होने पर भी विनम्र बनने वाला व्यक्ति हर मुश्किल में विजय प्राप्त कर लेता है। शरीर एक लक्ष्य प्राप्ति के लिये मिला है। इसीलिए इस लक्ष्य के पूरा होने तक शरीर की रक्षा करनी चाहिये। प्रतिकूलता के बाद यदि बुद्धि शुद्ध होती हो तो इसे पुण्य का फल मानना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास जी ने मन की समस्याओं को भोगा था और अनुभव किया था। रामचरित मानस रूपी परम विश्राम पाने का ग्रंथ देकर उन्होंने मानव जाति पर उपकार किया है। रामचरित मानस दिव्य और असीम सरोवर है, जिसमें स्नान करने पर संसार के सभी पीड़ित लोगों को परम शांति मिलती है। इसलिए तुलसीदास कृत रामचरितमानस एक सर्वकालिक ग्रंथ है।

जिस प्रकार समुद्र मंथन में विष और अमृत दोनों मिले थे उसी प्रकार समाज के मंथन में भी दुख और सुख दोनों प्राप्त होते रहते हैं। यदि दुख को प्रभु का प्रसाद समझकर ग्रहण किया जाये तो वह दुख भी कल्याणकारी होता हैं समुद्र मंथन के पश्चात निकले विष को लेकर जब देवता शिव के पास पहुँचे तो शिव ने प्रश्न किया कि आपको किसने भेजा है। देवताओं द्वारा भगवान विष्णु का नाम सुनते ही शिव ने विष को सहर्ष ग्रहण कर लिया और कहा कि वे जो भी भेजेंगे वह कल्याणकारी ही होगा। शिव ने विष रूपी अपमान पीकर भी दूसरों को सुख बाँटने की प्रेरणा दी है। यही गुण गोस्वामी तुलसीदास जी के प्रारम्भिक जीवनकाल में परिलक्षित होता है। गोस्वामी जी के जन्म के बाद ज्योतिषी पिता ने उन्हें अभागा जानकर उनका परित्याग कर दिया था और उन्हें पालने वाली दासी भी ज्यादा दिन जीवित नहीं रही थी। समाज के अपमान को सहकर भी गोस्वामी जी ने समाज को परम विश्राम पाने वाले ग्रंथ रामचरित मानस की अनुपम भेंट दी। क्योंकि भगवान शंकर का आदर्श तुलसीदास जी के सामने प्रकट हो गया था।

शिव ने जब सहर्ष विष ग्रहण किया तो उनकी यही धारणा थी कि विष तो भगवान विष्णु भी पी सकते थे परन्तु यह सौभाग्य मेरी महिमा को बढ़ाने के उद्देश्य से ही प्रभु ने मुझे दिया हें इससे यही शिक्षा लेनी चाहिए कि ईश्वर से मिला हुआ दुख, दुख नहीं होता, पीड़ा नहीं होती और कष्ट, कष्ट नहीं होता। प्रभु का प्रसाद समझकर ग्रहण करने पर प्रतिकूलताएं भी लाभ पहुँचाने वाली साबित होती है।

देवताओं के गुरु बृहस्पति और दानवों के गुरु शुक्राचार्य के बीच अंतर की गहराई से व्याख्या करें तो पाएंगे



कि देवताओं और दानवों का एक-एक रूप सद्गुण और दुर्गुण प्रत्येक मनुष्य में रहता है। ज्ञान, वैराग्य तथा आत्मतत्व को जानने की प्रेरणा देना गुण बृहस्पति का है जबकि संसार के सुख पाने की प्रेरणा देना, भोग विलास की ओर आकृष्ट करना गुण शुक्राचार्य का है। असमर्थता के समय ईश्वर की शरण में जाना देवताओं का गुण है। जबकि ऐसे समय अपने पराक्रम पर ही विश्वास करना दानवों का गुण है।

गरीब, निर्बल, असहाय एवं दरिद्रता से पीड़ित व्यक्ति जब प्रभु राम की भक्ति से जुड़ जाता है तो उसके सारे अवगुण नष्ट हो जाते हैं। कहा जाता है –"जा पर कृपा राम की होई, ता पर कृपा करें सब कोई।" परन्तु केवल कृपा भाव से काम नहीं चलता मनुष्य को अपने जीवन में पूर्णतः एवं सार्थकता के लिए दीनबन्धु अर्थात् प्रभु राम की असीम अनुकम्पा का अधिकारी होना भी आवश्यक है।

सुग्रीव के चरित्र को लें। सुग्रीव में कायरता, निर्धनता एवं डर आदि का प्राबल्य था। वह इतना डरपोक एवं कायर था कि उसकी पत्नी का अपहरण उसके भाई बालि ने कर लिया था, लेकिन वह अपनी पत्नी को बलि से मुक्त नहीं करा पाया था। इतने सारे अवगुणों के पश्चात् भी राम सुग्रीव पर ही कृपा करते हैं। भक्त हनुमान प्रभु राम एवं लक्ष्मण को अपने कन्धों पर बैठाकर ऋष्यमूक पर्वत पर ले जाते हैं और उनकी सुग्रीव से मित्रता कराते हैं। प्रभु श्रीराम की सुग्रीव पर असीम कृपा होती है, उसके सारे भ्रम एवं कायरता दूर हो जाती है। श्रीरामजी बालि का बध करते हैं और सुग्रीव को अनन्य भक्ति प्रदान करते हैं।

जिस प्रकार की दुर्बलताएं सुग्रीव में थीं उसी प्रकार की कमजोरियाँ अर्थात् दुख, दरिद्रता, भुखमरी एवं निर्धनता गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन में थी। उनके जन्म पर किसी प्रकार के समारोह का आयोजन नहीं हुआ। उनके पिता ने तो ज्योतिष के आधार पर उनके भविष्य के कारण घर से ही निकाल दिया लेकिन तुलसीदास के दैन्य, समर्पण एवं भक्ति की भावना के कारण श्रीराम की उन पर असीम कृपा हुई और उन्होंने रामचरितमानस की रचना की। गोस्वामी जी ने अपनी दीन हीन प्रवृत्ति का वर्णन विनय पत्रिका में किया है। तुलसी ने अपनी सारी विनय प्रभु राम से की है।

दैन्य का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण निषादराज केवट का प्रसंग है। केवट बहुत निर्धन एवं निरीह था। प्रभु श्रीराम केवट में दीनता-हीनता का आभास कर लेते हैं एवं उसकी भक्ति भावना से भी बहुत प्रभावित होते हैं। जब गंगा पार ले जाने का आग्रह करते हैं तथा गंगा पार जाने के बाद केवट से उतराई माँगने को कहते हैं तब केवट अश्रुपूरित नेत्रों से प्रभु को देखता है और कहता है कि आप तो सारी दुनिया वालों को इस संसार-सागर से पार उतार देते हैं और आप मुझसे उतराई लेने को कह रहे हैं। प्रभु आपके दर्शनों एवं पाँव पखराई से मेरे सारे अवगुण अर्थात् दैन्य, जो अवगुण था, अब सद्गुण में परिवर्तित हो गया है। श्रीराम राजा मनु से तो कहते हैं कि राजन् जो वरदान माँगना हो माँगो, मैं प्रसन्न हूँ। लेकिन प्रभु श्रीराम केवट से ऐसा कुछ नहीं कहते क्योंकि केवट में दीनता, प्रेम एवं भक्ति भाव का बाहुल्य था जबकि राजा मनु में ऐसा कुछ नहीं था। कहने का आशय है कि भगवान तो प्रेम के भूखे हैं।

तुलसीदास जी के रामचरित मानस के पूर्व रामकथा भगवान शंकर, काक भुशुंडि तथा वाल्मीकि जी ने कही है मगर संत तुलसीदास जी ने राम कथा को जन मानस की भाषा में प्रस्तुत किया है यह एक असाधरण बात है। एक बार तुलसीदास से पूछा गया कि क्या उन्होंने श्रीराम जी के दर्शन किए हैं। तुलसी दास जी का उत्तर था कि यदि श्रीराम जी के दर्शन और उनकी कृपा प्राप्त न हुई होती तो मैं राम कथा का वर्णन कैसे कर सकता था। तभी तो श्रीराम जी को दीनानाथ कहा गया है। राम के नाम में इतनी शक्ति है कि केवल राम नाम के उच्चारण मात्र से सारे दुख दूर हो जाते हैं। तभी तो कहा गया है 'दीनदयाल विरुद संभारी, हरहु नाथ मम संकट भारी...।'

तुलसी के राम मनुष्य नहीं ईश्वर हैं। वह कृष्ण को भी राम का रूप ही मानते हैं। प्रसंग है कि कृष्ण को प्रणाम करने के लिये उन्होंने धनुषबाण की शर्त रखी थी। वस्तुतः कृष्ण की वंशी प्रेम एवं भावरस का प्रतीक है परन्तु यह वंशी द्वापर युग में ही ब्रज तक सीमित रही मथुरा या द्वारका में नहीं। इसलिए काल के इतने अंतर के बाद कलियुग में तो तुलसी प्रभु के हाथों में दुष्टों को नष्ट करने वाला धनुष बाण ही देखना चाहते थे। लोग रामराज्य की बात

करते हैं, पर रामराज्य संभव नहीं है इसीलिए भाव राज्य में रहकर राम राज्य का आनंद लेना चाहिए। राम राज्य तो द्वापर में भी संभव नहीं था। क्योंकि उस समय भी लक्ष्मण, भरत, हनुमान, गिद्धराज जैसे चरित्र नहीं थे। उन्होंने कहा कि प्रभु राम का धनुष बाण काल के ही दो रूप हैं। ईश्वर और गुरु के प्रति थोड़ा संकोच व डर होना चाहिए। इससे व्यक्ति अनेक बुराइयों से बच जाता है।

पुरुष की प्रमुख समस्या उसका 'मैं' अर्थात् अहम् एवं स्त्री की प्रमुख समस्या उसकी 'ममता' है। इसी अभिमान के कारण रावण और बालि को मरना पड़ा कैकई की भरत के प्रति संकीर्ण ममता ने अयोध्या को तबाह कर दिया वहीं सीताजी की ममता ने जनक एवं दशरथ दोनों कुलों का मान बढ़ाया। कैकई की 'ममता' अर्थात अपना अपना होता है, पराया-पराया, आज बहुतायत में देखने को मिलती है। तुलसीदास जी जन्मजात महान नहीं थे, उन्होंने जीवन की दुखः पीड़ा को भोगा था। सिर्फ पत्नी के तिरस्कार के कारण उन्हें प्रभु मिल गये यह बात ठीक नहीं है, काम से राम की और जाने में प्रभु की कृपा थी। तुलसीदास जी ने काम को राम से जोड़ कर जीवन को धन्य बना लिया। क्योंकि उन्हें प्रेम की तलाश थी और पूरा प्रेम सिर्फ प्रभु ही दे सकते हैं।

यदि कोई व्यक्ति दुराचारी व्यक्ति के संग में रहता है तो उसमें बुरे व्यक्ति की बुराइयाँ अच्छाइयाँ दिखने लगती हैं और उसमें स्वामी-भक्ति आ जाती है। लंकनी नामक राक्षसी जो कि लंका में रक्षिका के रूप में रहती थी, रावण के राज्य में रहकर उसमें राक्षसी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो गई थीं। लेकिन जब हनुमान जी का मुक्का उसके सिर पर पड़ा तो उसे सद्गति प्राप्त हो गई। उसे ब्रह्माजी की उक्ति याद आ जाती है कि पहले लंका पर देवताओं, फिर यक्षों तथा अंत में राक्षसों का राज्य होगा। जब कोई बंदर तेरे सिर पर मुक्के का प्रहार करेगा समझना कि राक्षसों का अंतिम समय आ गया। हनुमान जी के प्रहार के बाद उसमें व्याकुलता उत्पन्न होती है और वह हनुमान जी को लंका जाने की अनुमति दे देती है। यदि किसी व्यक्ति में बदलाव आना है तो वह बदलाव व्याकुलता से आता है और व्याकुलता के लिये प्रहार होना आवश्यक है।

तुलसीदास जी के जीवन में जो बदलाव आया उसमें उनकी पत्नी रत्नावली की प्रताड़ना ही सब कुछ नही थी। तुलसीदास जी का बाल्यकाल भुखमरी, गरीबी एवं अपमान की स्थितियों से गुजरा था। लेकिन तुलसीजी को ज्ञान उनके गुरुजी द्वारा ही मिला। अतएव व्यक्ति के जीवन में गुरु की बहुत बड़ी महत्ता है। यदि तुलसी के जीवन में गुरु न होते तो उन पर न तो रामकृपा होती और न रामचरितमानस जैसे महान ग्रंथ की रचना हो पाती। तुलसीदास जी ने अपनी आत्मकथा विनयपत्रिका में अपने को बहुत दीन-हीन निरुपित किया है और सारा श्रेय अपने गुरु को ही दिया है। कहा गया है कि 'गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूँ पाँय बलिहारी गुरुदेव की, गोविंद दिया बताय।' यही स्थिति संत तुलसीदास जी की है।

जब रावण एवं हनुमान जी का युद्ध होता है तो रावण के मुक्के से एक क्षण के लिए हनुमान जी प्रभावित होते हैं लेकिन सहसा पुनः उठकर खड़ें हो जाते हैं। लेकिन हनुमान जी का मुक्का खाकर रावण मूर्छित हो जाता है। उसमें भी व्याकुलता आती है कि श्रीराम के दल में कितना शक्तिशाली बंदर है जिसके प्रहार से मैं मूर्छित हो गया लेकिन रावण की राक्षसी वृत्तियों के कारण बदलाव नहीं आता लेकिन हनुमान जी में भक्ति युक्त-व्याकुलता है कि मेरे मुक्के से रावण का अंत क्यों नहीं हुआ? वस्तुतः हनुमान जी भक्ति और वैराग्य के प्रतीक हैं। क्योंकि अशोक वाटिका में माँ सीताजी से चूड़ामणि लेने के बाद फल खाने के लिये माँ से अनुमति लेते हैं, वाटिका के फल खाते हैं और जब हनुमान जी लंका से 500 योजन समुद्र पार कर आते हैं तो वानर सेना में अपार हर्ष व्याप्त हो जाता है और वानर सेना सुग्रीव की वाटिका के फलों को बिना सुग्रीव की अनुमति के खा जाती है। हनुमानजी की यही विशेषता है कि उनका उद्देश्य राम-कागज है, रामकाज के बाद उनकी सारी क्रिया अनुशासन, भक्ति एवं वैराग्य से परिपूर्ण होती है। हनुमान जी में वीरता एवं भक्ति भावना का जो गुण था वह असाधारण है। इस प्रसंग को हम यों समझें कि यदि फल सुन्दर है और वह फल शत्रु के क्षेत्र में है, यदि फल खाने के पूर्व प्रभु को समर्पित कर दिया जाये तो फल के दुर्गुण सद्गुण में परिवर्तित हो जाते हैं। यही स्थिति मनुष्य के जीवन में भी है। यदि हम अपनी

सारी गलतियों, अपराधों एवं दुर्भावनाओं को भगवान को समर्पित कर दें तो हमारी सारी बुराइयाँ भलाई में बदल जाती हैं ।

रामकथा का श्रवण मन, बुद्धि एवं चित्त के द्वारा करना चाहिए तथा श्रवण के समय अहंकार या अभिमान का त्याग करना आवश्यक है क्योंकि श्रीराम जी तो केवल प्रेम एवं भक्ति के भूखे हैं । संत तुलसीदास जी को भगवान श्रीराम के दर्शन के संबंध में एक कथा प्रचलित है । जब तुलसीदास जी दीर्घ शंका के लिए जाते थे तब लोटे का बचा हुआ जल एक बबूल के वृक्ष की जड़ में डाल देते थे । उस वृक्ष पर एक भूत रहता था । एक दिन वह भूत तुलसीदास जी पर प्रसन्न हो गया । तब तुलसीदास जी ने उससे रामदर्शन की अभिलाषा प्रकट की । भूत कहता है कि तुम्हें प्रभु श्रीराम के दर्शन हनुमान जी के माध्यम से होंगे । पर्वत के शिखर पर राम कथा होती है, श्रोताओं में जो व्यक्ति अंतिम पंक्ति में बैठकर कुष्ठी के रूप में कथा श्रवण करता है वही राम भक्त हनुमानजी हैं । तुलसीदास हनुमान जी के चरण पकड़ लेते है । तब हनुमान जी कहते हैं कि तुम्हें प्रेम एवं भक्ति के माध्यम से राम जी के दर्शन चित्रकूट में होंगे । तात्पर्य यह है कि यदि प्रभु के सान्निध्य में जाना है तो मनुष्य को प्रेम एवं भक्ति के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए ।

राजा दशरथ पूर्व जन्म में मनु थे, मनु मन की भावना से भगवान राम को प्राप्त कर लेते हैं । भगवान राम को राज्याभिषेक की तिथि का निर्धारण होता है लेकिन राजा दशरथ, जो कि त्याग एवं वैराग्य की प्रतिमूर्ति थे, महारानी कैकई के काम रूपी वाणों से घायल हो जाते हैं । और भगवान श्रीराम को 14 वर्ष का वनवास तथा भरत को राज्याभिषेक का वरदान दे देते हैं । जो राजा दशरथ रामचन्द्र के चकोर थे, वे कामचन्द्र के चकोर बन जाते हैं । संसार में जब व्यक्ति राम को छोड़कर काम के वशीभूत हो जाता है तो भारी विनाश हो जाता है । एक और प्रसंग लें । दुर्योधन और अर्जुन श्रीकृष्ण के पास जाते हैं तथा अपने-अपने पक्ष प्रस्तुत करते हैं । श्रीकृष्ण अर्जुन से माँगने को कहते हैं तो अर्जुन श्री कृष्ण को तथा दुर्योधन श्रीकृष्ण की सेना माँग लेता है । आज की भी यही स्थिति है । मनुष्य प्रभु को छोड़कर सांसारिक वस्तुएं माँग लेता है । जहाँ एक ओर सांसारिक वस्तुएं नश्वर हैं वहीं दूसरी ओर प्रभु कृपा असीम, अनन्य एवं कल्याणकारी हैं । जो व्यक्ति हीनता एवं समर्पण की भक्ति भावना से ईश्वर के सम्मुख प्रस्तुत होता है वही ईश्वर भक्ति प्राप्त कर लेता है, यही सब कुछ संत तुलसीदास जी के साथ हुआ है । तुलसीदास के जन्म स्थल के संबंध में विवाद है कोई उनका जन्म स्थान राजापुर (बांदा जिला) कोई एटा जिले का सूकर क्षेत्र, कोई व्यक्ति अयोध्या के निकट बताता है लेकिन विद्वान मनीषी कहते हैं कि तुलसी का जन्म स्थान चित्रकूट है क्योंकि तुलसीदास जी को भगवान श्रीराम के प्रथम दर्शन चित्रकूट में ही हुए हैं । जिस स्थान पर प्रभु दर्शन हुए वहीं स्थान उनके जीवन का प्रथम उज्जवल सोपान हो गया । यही उनका असली जीवन है ।

श्री राम जी की कथा अनन्य एवं अनंत है यह कालचक्र से परे हैं । सर्वप्रथम रामकथा भगवान शंकर ने माँ पार्वती को सुनाई । पार्वती जी पूछती है कि क्या यह आपकी रचना है तो भगवान शंकर कहते हैं जो रामकथा काकभुशुंडि जी ने गरुड़ को सुनाई थी वहीं मैंने कही है । जब काकभुशुंडि जी से गरुड़ जी पूछते हैं क्या यह आपकी कृति है तो वे कहते हैं कि मैं तो मूर्ख तथा समाज-शोषित हूँ जो कथा मैंने अपने गुरु से सुनी थी उसी कथा का वर्णन मैंने किया है । जब व्यक्ति अभिमान एवं अह्म से परे होता है और रचना का श्रेय दूसरे को या ईश्वर को देता है तो उसी में उसकी महानता निहित होती है । रामचरित मानस की रचना के बाद एक बार तुलसीदास जी से पूछा गया कि आपने जो मानस की रचना की है क्या वह आपकी है या तोता रटंत है तुलसीदास जी ने कहा कि मैं तो मात्र तोता हूँ महानता तो उन प्रभु श्रीराम की है जिन्होंने तोते को रटना सिखाया। इस दृष्टांत में भी तुलसीदास जी सारा श्रेय ईश्वर को ही देते हैं ।

इस बात को राम जानकी विवाह के संदर्भ से समझें । अन्य देवताओं के साथ ब्रह्मा जी, जिन्होंने पूरी सृष्टि की रचना की है, विवाहोत्सव में उपस्थित थे । जनकपुरी में उन्हें अपनी लीला नहीं दिखाई दी तो ब्रह्मा जी से अहंकार जाग्रत हो गया । तब भगवान शंकर, जो कि विश्वास के देवता हैं, ब्रह्मा जी के अहम् को शांत कराते एवं

दलितोद्धारक राम

–डॉ0 नजीर मुहम्मद

दलितोद्धारक राम प्रभु, कीजै कृपा महान। वंचित जन सा जगत में पावहि सुख सम्मान।।
वंचित जन को जगत में, दियो मान-सम्मान। वंचित जन के हैं हितू, श्री राम भगवान।।
साधु-जनन परित्रान करि, दुष्ट–जनन संहार। दलितोद्धारन हेतु ही, लियो राम अवतार।।
नाम बड्यो श्रीराम तें, हरन-हेतु भव-त्रास। विस्व श्रेष्ठ श्रीराम तें, श्रेष्ठ राम के दास।।
जामवंत, हनुमान औ, सबरी गीध जटाय। राजा-महाराजानु तें, अधिक कीर्ति गए पाय।।
पवन-तनय-संकट-हरन, हनूमान कौ नाम। सुमिरत ही संसार के, होंय सिद्ध सब काम।।
वंचित वनवासी दलित, राम-कथा आधार दलितोद्धारन हेतु ही, लियो राम अवतार।।
विस्व-तिरस्कृत, व्यथित-जन, बंचित जाति-विहीन। राम-कृपा के पात्र हैं, दुर्बल, दलित व दीन।।
केवल एक महान है, राम-कथा को मर्म। दुर्बल, दलितोत्थान हित, राम समर्पित जन्म।।
दुख हरि दीन-दुखीन के, बन गए राम महान। दलितोद्धारन ते बनी, श्री राम पहचान।
मंगल-मय श्री राम कौ, अति आदर्स चरित्र। सुमिरन करिवे तें ह्रदय, सीतल होय पवित्र।।
पुत्र, मित्र अरु बन्धुजन, सासक के अभिराम। सुन्दरतम आदर्स है, परम-पूज्य श्री राम।।
है समस्त लीलानु को, दलितोद्धार अधार। कर्म-भूमि श्री राम की, वंचित व्यथित सुधार।।
वंचित व्यथितनु के बिना, नहिं पूरन पहचान। श्रीराम की श्रेष्ठता, वंचित जन तें जान।।
गिरि-वन-वासिनु के बिना, नहिं समग्रता आय। राष्ट्र चेतना राम में, दलितनु संग दिखाय।।
राम हमारे राष्ट्र की, राष्ट्र चेतना जान। सामूहिक प्रतिरोध के, संगठनकर्त्ता मान।।
उत्तर तें दक्षिन तलक, विस्तृत भारतवर्ष। रामकथा को गानकर, सबै मनावें हर्ष।।
इतने विस्तृत देस की, घटनानु में आन। राम सर्व प्रिय बन गए, उन्नत औरु महान।।
वनहि वास को जब परयौ, राम सियहिं संयोग। वनवासी बंधून नें, दियो अमित सहयोग।।
करि सैन्यीकरण सबनु को, वंचित वर्ग मिलाय। भारत माता अस्मिता, लीनी राम बचाय।।
सब सैनिक अभियान में, करिवे राम सहाय। क्षत्रिय राजकुमार या, सैनिक इकन दिखाय।।
वनवासिनु की सक्ति के, बल पर ही श्री राम। क्षुद्र साधननु तें सबै, साधे राष्ट्रीय काम।।
आरंभ तें लै अंत तक, राम विजय अभियान। वनवासी नेतानुनें, साधे सक्रिय आन।
पिछड़े वनवासीनु औ, दलित जाति के साथ। जीवन भर रह राम नें, सबकूँ करो सनाथ।।
करिवे धर्म स्थापना, दलित जनन उद्धार। ग्यान-प्रसारन हेतु ही, लियो राम अवतार।।
प्रानि मात्र के कार्य में, चले न लघु-बड़ मान। राम सबहिं सहभाग को, दियो उचित स्थान।।
कार्य-विभाजन तें कोई, बने ऊँच नहिं नीच। समरसता की भावना, रहे समाजहिं बीच।।
राष्ट्रीय अभियान में, सहयोगहि के काज। वर्ग-भेद को त्याग प्रभु, जोर्यो सकल समाज।।
श्रीराम वनवास में, वानर भालु समेट। बना सबल सैनिक सबनु, कियो राष्ट्रति भेंट।।
भील, रीछ, वानरनु की, पा सहाय श्री राम। पिछड़े दलित समाज संग, साधि लए सब काम।।
गुह, निषाद, वानर, सबर, केवट औ गिद्धराय। इनतें सम्बन्धित प्रसंग, बने मार्मिक आय।।
अंगद और सुग्रीव पुनि, जामवंत हनुमान। सेनानायक राष्ट्रहित कीने राम प्रदान।
पर्वत वनवासी सबहि, युद्ध कला कूँ जान। गिरि गोरिल्ला युद्ध में सफल भए सब आन।।
दीन बन्धु प्रभु दीन प्रति, रहते सदा उदार। वंचति जन को प्रेम सो, सदा कियो उद्धार।।

-राहत कदा, डिग्गी रोड, अलीगढ़ 202 001

विज्ञान और गोस्वामी तुलसीदास

– सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

जब किसी लब्धकीर्ति महापुरुष के सम्बन्ध में कुछ लिखने या बोलने का विचार पैदा होता है, तब हृदय की वृत्ति, जो सदैव यथार्थ सत्ता की ढूँढ तलाश चाहती है, स्वभावतः उसको उस भाव की ओर झुका देती है जिसके आधार पर खड़े रहने के कारण ही उसकी आत्मा का विकास हुआ था। उसी तरह श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी के सम्बन्ध में जब कुछ जानने के लिए जिज्ञासा एकाएक उत्सुकतापूर्वक मन की शान्त परिस्थिति को चंचल कर देती है, उसके सच्चे चित्र को देखने के लिए विकल हो जाती है, तब वृत्ति उसे अपने साथ लेकर श्रीमद्गोस्वामी जी की जिन परिस्थितियों पर वर्तमान समय की विद्वन्मण्डली के द्वारा बहुत कुछ प्रकाश पड़ चुका है, उन्हें पार करके बेचारे जिज्ञासु को कुछ समय के लिए उस स्थान में ले जाती है जहाँ से ललित शब्दों और मनोहर भावों की रेखा बहुत पीछे रह जाती है – अगणित जीवों के सुख और दुःख, यौवन और जरा, जन्म और मरण, आशा और शून्यता, शब्द और ध्वनि, भावी और भाव, जीवन और संसार सब कुछ पीछे पड़ा रहता है। बस एक आनन्द बाधा रहित – ओत-प्रोत अनादि और निरवकाश। वहाँ पहुँचकर जिज्ञासु को वहाँ तक पहुँचाने वाली फिर न वह वृत्ति ही रह जाती है और न वह जिज्ञासा। आनन्द के उस अछोर पारावार में मन की प्रथम अवस्था के वे कितने ही बिम्ब घुलकर स्वयं भी आनन्द ही बन जाते हैं। वहाँ श्रीमद्गोस्वामीजी का न तो स्थूल शरीर कल्पना के नेत्रों से दिखायी पड़ता है, न उनकी यह रसमयी रचना रहती है, न कविता की उभयकूल पाविनी वह छटा, न वह मनोहर भाषा, न वे लोकोत्तरानन्ददायी भाव, न वे आकर्षक छन्द, कुछ नहीं रहता, एक उसी निर्वाद्य निस्सीम आनन्द महासागर में विलीन हो जाते हैं – वहाँ दर्शक, गोस्वामीजी की वृत्ति और महानुभाव गोस्वामी जी ये सब एकाकार हो जाते हैं, सीमा का घट फूट जाता है और आनन्द-ही-आनन्द निस्सीम को पूर्ण करता हुआ, देख पड़ता है। जब इस अनिर्वाच्य अवस्था से हम फिर नीचे उतरते हैं, उस अगाध सागर-से गम्भीर उदर से क्रमशः निकलने लगते हैं, तब फिर वही अगणित हिलोरें, अगणित आवर्त और अगणित बुदबुदों का कम्पन दिखलायी देने लगता है। फिर तो धीरे-धीरे कविता, भाव, भाषा और छन्द की वही वाटिका आँखों के सामने फिरने लगती है, जिसके लिए गोस्वामीजी ने लिखा है–

राम सीय यश सलिल सुधा सम। उपमा बीचि बिलास मनोरम।।
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मणि सीप सुहाई।।
छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमलकुल सोहा।।
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरन्द सुवासा।।
सुकृत पुंज मंजुल अलिमाला। ज्ञान विराग विचार मराला।।
धुनि अवरेव कवित गुण जाती। मीन मनोहर ते बहुभाँती।।
पुलक बाटिका बाग वन, सुख सुविहंग विहारु।
माली सुमन सनेह जल, सीचत लोचन चारू।।

गोस्वामी जी ने जिस युक्ति के अनुसारः रघुपति महिमा अगुण अगाधा। बरनइ सोइ वर वारि अगाधा।। इस चौपाई द्वारा बड़ी ही खूबी के साथ निर्गुण ब्रह्म से उतरते हुए बीचि, कमल, [म]करन्द और मिलिन्दों के रूपक में उस लोकोत्तरानन्दायिनी कविता का सुवर्ण संसार अंकित कर दिखाया है, उसी [के] अनुलोम और विलोम का दर्शन करते हुए, जब हम उस निर्बोध आनन्दमय स्वामीजी के महाकारण में विलीन [स्व]रूप में जरा देर ठहरकर, नीचे उतरे हैं, तभी उनकी मधुरभाषिणी कविता को– उनके द्वारा चित्रित उन्हीं के इस

मनोबिम्ब को समझ सकते हैं। अन्यथा, हमारा पहले का समझना जब तक हमने उनके यथार्थ स्वरूप को नहीं देखा - जिस मन की छाया रामायण है, उसे नहीं पहचाना, तब तक, हमारा वह दर्शन, वह परिचय उनके सम्बन्ध में बिल्कुल अधूरा है।

अस्तु, जब हम उनके उस स्वरूप का परिचय प्राप्त कर लेते हैं, तब हम उन्हें साहित्य – कला के ही पारंगत विद्वान कहकर नहीं रह जाते, बल्कि इतना ही कहकर हम उनका अपमान करते हैं, तब हम उन्हें विज्ञान की चरम सीमा में पहुँचा हुआ अखण्डवृत्ति महापुरुष कहते हैं।

यहाँ आप लोग प्रश्न कर सकते हैं, कि भाई, गोस्वामी जी से और विज्ञान से क्या सम्बन्ध है? आपका यह प्रश्न बहुत अंशों में निराधार नहीं कहा जा सकता, परन्तु प्रश्न करने से पहले इतना और सोच लेना चाहिए था कि गोस्वामीजी के जीवन की गति किस ओर थी? किसके लिए उन्होंने सर्वस्व तक का त्याग स्वीकार किया था? हममें से बहुतेरे मित्र कहेंगे श्रीरामचन्द्रजी के दर्शनों के लिए उन्होंने संसार छोड़ा और भगवान से उनकी यह अभिलाषा पूरी की। इसमें विज्ञान कहाँ से आकर घुस गया बाबा? मैं अपने इन मित्रों से इससे अधिक तब तक कोई प्रश्न न करुँगा, जब तक वे भगवान श्रीरामचन्द्र जी के विश्लेषणात्मक स्वरूप के देखने की इच्छा प्रकट न करेंगे। यदि वे भगवान श्रीरामचन्द्र जी को पूर्ण ब्रह्म मानते हैं तो उन्हें यह युक्ति माननी पड़ेगी कि पूर्णता कभी अवकाश विशिष्ट या घेरे के अन्दर रहने वाले शरीर से नहीं सूचित होती और न ब्रह्मत्व ही इसके द्वारा प्रकट होता है; वह तो तभी प्रमाणित होगा जब भगवान श्रीरामचन्द्रजी की लीला के दूसरी ओर, शरीर और मन के पार भी दृष्टि डाली जायेगी।

यदि आप लीला का दूसरा पार भी देखना चाहते हैं, यदि आप शरीर मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार के इस लीला-संसार का दूसरा छोर देखना चाहते हैं तो मैं कहूँगा, आइए मित्र अब आप यह समझने के अधिकारी हुए हैं कि गोस्वामी जी ने भगवान श्री रामचन्द्र जी के सिर्फ स्थूल का ही दर्शन नहीं किया था किन्तु उन्होंने उनके महाकारण स्वरूप को देखा था; और इस प्रकार दर्शन के उपाय को हम विज्ञान कहते हैं और दर्शक को विज्ञानी।

पश्चिमी युक्तियों के द्वारा कहा जाय तो बात आजकल बहुत शीघ्र समझ में आ जाती है क्योंकि विचारधारा भी बहुत कुछ वैसी ही हो चली है। अच्छा, आप मिट्टी, पानी, आग, हवा और आकाश तो मानते ही होंगे? पश्चिमी भी इन्हें मानते हैं और ये पाँच हमारे यहाँ भूत और पश्चिम में एलीमेण्ट्स (Elements) कहलाते हैं पश्चिम का कोई भी विज्ञानविद् इन एलीमेण्ट्स को छोड़कर कोई विश्लेषण नहीं कर सकता और न वहाँ के विज्ञानवेत्ताओं का विश्लेषण इन एलीमेण्टों का सहारा छोड़कर हो सकता है। पश्चिम के विज्ञान ने ताड़ित और वाष्पीय जितने आविष्कार किये हैं, वे उन्हीं के अन्तर्गत हैं। उनके श्रेष्ठ आविष्कार में यह प्रश्न है कि परमाणु की जो गति पायी जाती है उसको चलाने वाला कौन है? वह कहाँ से आती है? प्रश्न से साबित होता है कि पश्चिम का विज्ञान अभी अधूरा है और है ही, जबकि वह अभी मैटर को (जड़ को) छोड़कर शक्ति के सम्बन्ध में, उस जड़ को चलाने वाली गति के सम्बन्ध में प्रश्न कर रहा है। गोस्वामी तुलसीदास प्रश्न की इन सब अवस्थाओं को पार कर चुके थे। उन्हीं की चौपाई 'भवभव विभव पराभवकारिणी, विश्व विमोहिनि स्ववश विहारिणि' यहाँ शक्ति मानते हैं विश्व को चलाने वाली शक्ति को और उससे भी बढ़कर पूर्ण अवस्था में ब्रह्म में लीन होकर पूर्णत्व की प्राप्ति करते हैं, जहाँ न संसार है, न मैं, और न तुम, है बस सच्चिदानन्द ब्रह्म।

(समन्वय, वर्ष 6 अंक 8, भाद्रपद सं. 1984, पृ. 352–356)

□□□

अपने प्रेमभाव को सबकी तरफ बहने दो, फैलने दो। तुम में प्रेम तो है पर अभी तुम उसे स्वार्थवश और कंजूसी से देते हो। कम से कम इतना ही करो कि दूसरों से घृणा न करो, उनके विषय में बुरा ना बोलो या उनके दोषों की गणना न करो। किसी को खुश देख कर दुःखी मत हो, आहत मत हो बल्कि उनकी खुशी में शामिल हो कर दुआ करो। *(साई अवतार-242, प्रथम खण्ड)*

प्रस्तुति : संगीता त्रिवेदी, एम.ए.

प्रेम और मानवता के संदेशवाहक शेखर सेन

–विमला पाटिल

विश्वकवि तुलसी के अनूठे व्यक्तित्व एवं कृतित्व ने संसार के प्रायः सभी देशों के निवासियों को मंत्रमुग्ध किया है। उनकी शाश्वत कृति रामचरितमानस में वर्णित कथानक को प्रवचन, रामलीला, नाटक आदि के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने का कार्य निरन्तर किया जा रहा है। इसी दिशा में एक अभिनव प्रयोग किया है गीतकार और गायक शेखरसेन ने तुलसीदास पर आधारित एक कलाकार वाले नाटक का मंचन करके। मानस संगम ललित कला पुरस्कार से सम्मानित शेखर सेन ने महसूस किया कि "राम चरित मानस के दोहों में ऐसी चमत्कारिक शक्ति है जो दर्शक को बरबस अपनी ओर खींच लेती है। "विश्व के अनेक देशों का भ्रमण करने पर शेखर सेन को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जहाँ एक ओर विदेशों में राम चरित मानस इतनी लोकप्रिय है कि 65 से अधिक भाषाओं में उसका अनुवाद हो चुका है और बच्चे, जवान, बूढ़े सभी उसे पढ़ने को उत्सुक रहते हैं वहीं दूसरी ओर भारत की नयी पीढ़ी तुलसी, कबीर आदि के साथ-साथ सुभाष चन्द्र बोस, भगत सिंह सरीखें सपूतों के जीवन से भी अपरिचित है। और उसी समय शेखर सेन ने यह बात मन में ठान ली कि वे अकेले कलाकार के रूप में नाटक का मंचन करके तुलसी का संदेश भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचायेंगे। ईश्वर की कृपा से शेखर सेन को अपने मिशन में निरन्तर सफलता मिल रही है। महान कलाकार शेखर सेन के सम्बन्ध में जानकारी दे रही हैं सुविख्यात लेखिका विमला पाटिल अपनी सशक्त लेखनी से।

– सम्पादक

गीतकार व गायक शेखर सेन के लिए गोस्वामी तुलसीदास और कबीर पर आधारित नाटक के पचास शो होना कई मायनों में महत्वपूर्ण था। सर्वप्रथम तो इसीलिए कि बगैर किसी विज्ञापनबाजी के सिर्फ मुँह दर मुँह प्रचार पर लोग आते गए और तीन घंटे मुँह बंद किए पूरा पूरा शो न सिर्फ देखते गए, बल्कि सराहते भी गए। एक कलाकार वाले इन नाटकों को इस हद तक सफलता दिलाने में चुस्त स्क्रिप्ट के साथ साथ मधुर संगीत और उसमें पिरोए गए दोनों के मनमोहक दोहों, छंदों की भूमिका नकारी नहीं जा सकती है। शेखर के मुताबिक इन दोहों में छंदों की भूमिका नकारी नहीं जा सकती है। शेखर के मुताबिक इन दोहों में अपनी अलग शक्ति है, जिसका स्रोत इनमें व्यक्त ईश्वर के प्रति विश्वास है। ऐसा विश्वास जो आज भी कम नहीं हुआ है।

शेखर कहते हैं 'पाँच सौ वर्ष पूर्व लिखे गए इन अमर वाक्यों में आज भी प्रासंगिक विषमताओं के दर्शन हो जाते हैं। शब्द संयोजन और कल्पनाओं की सुन्दरता आज भी सुनने वालों का मन मोह लेती है।' उनके मुताबिक इन दोहों और छंदों में वर्णित विश्वास प्रत्येक भारतीय के हृदय में किसी कोने में आज भी विद्यमान है। मैंने तो सिर्फ इन पर नाटक तैयार कर उन्हें यह सब समझने के साथ साथ अपनी संस्कृति को जानने का एक आधार भर तैयार किया। शेखर के मुताबिक उन्हें खुशी है कि लोग कबीर और तुलसीदास को नाटकों के द्वारा एक बार देखने आने के बाद फिर बार बार आते हैं।

शेखर सेन की हालिया सफलता की यात्रा कुछ वर्ष पूर्व शुरु हुई, जब वे अपने माता पिता को अमेरिका लेकर गए। वहाँ उन्हें रामायण पर आयोजित एक सेमिनार में भाग लेने का मौका मिला। उसमें संत तुलसीदास के जीवन और कृतित्व पर विशेष प्रकाश डाला गया था। वहीं मुझे पता लगा कि रामायण का विश्व की 65 भाषाओं में

अनुवाद हो चुका है और प्रत्येक भाषा में वह चर्चा का विषय है। ये भाषाएं भारत की क्षेत्रीय भाषाओं से अलग हैं। शेखर सेन को चीन और जापान में तुलसीदास की रामचरितमानस की लोकप्रियता को देखकर भारी अचंभा सा हुआ था। वहाँ न सिर्फ तुलसीदास जाना पहचाना नाम है बल्कि उनके विचारों को ग्राहय भी किया जा रहा है। यह सब देख कर शेखर सेन ने भी इसी तरह की कुछ नई पहल करने की ठानी और भारत आने पर उन्होंने उन आधुनिक बच्चों को तुलसीदास और कबीर के बारे में बताने की मुहिम शुरू की। उन्होंने इस बात की आवश्यकता इसलिए भी महसूस की, क्योंकि बच्चे तुलसीदास व कबीर के साथ-साथ सुभाष चन्द्र बोस और भगत सिंह के नाम तक से अनजान थे। इसे समझते हुए शेखर सेन ने भारत आते ही 26 पृष्ठों का एक कथानक तैयार किया और उसे नाटक के रूप में पेश करने का बीड़ा उठाया। शेखर में लेखक वाली कोई खूबी नहीं थी। इसे समझते हुए उन्होंने पूरी स्क्रिप्ट धर्मवीर भारती और उनकी पत्नी पुष्पाजी को सुनाई। इनके अलावा शेखर ने अपनी स्क्रिप्ट हरेक को सुनाई, जिनमें धोबी से लेकर सब्जी बेचने वाले तक शामिल थे। इसका परिणाम यह निकला कि उन्हें स्क्रिप्ट में फेरबदल करने का भरपूर मौका मिला। शेखर ने जब भी किसी के चेहरे पर स्क्रिप्ट सुनने के बाद शिकन देखी उन्होंने तुरंत उसमें फेरबदल कर डाला।

यही नही स्क्रिप्ट में संपूर्णता लाने के लिए शेखर ने रामायण के बारे में जितना मिला सब कुछ पढ़ा यहाँ तक कि अमृत लाल नागर की मानस के हंस भी। इंटरनेट पर जितना भी रामायण के बारे में मिला उसे डाउनलोड कर लिया। अयोध्या और राम के बारे में छोटी से छोटी जानकारी लेने के बाद शेखर के पास स्क्रिप्ट के साथ-साथ उसके लिए संगीत भी तैयार था। चूँकि पूरा नाटक एक ही अभिनेता पर आधारित था अतः शेखर ने प्रकाश व्यवस्था को भी कम महत्व नहीं दिया और इसके लिए उन्होंने कलकत्ता के तापस दा सेन को यह जिम्मेदारी सौंपी। मंचसज्जा के लिए प्रतिकृति मुखर्जी को चुना गया। यह दीगर बात है कि इतना सब करने के बाद शेखर के पास बैंक में एक रुपया भी शेष नहीं रह गया था। प्रत्येक शो पर एक लाख रुपये का खर्च आ रहा था और उन्हें अपने हरेक दूसरे शो के लिए रुपये पैसे का जुगाड़ करना पड़ रहा था। ऐसे में परिवार और दोस्तों की मदद उन्हें प्रेरणा देती रही और इसी उतार-चढ़ाव भरे दिनों में उन्होंने शिल्पकार समूह की स्थापना की। यह समूह उनके नाटक को आर्थिक मदद देने लगा। तुलसीदास की सफलता के बाद शेखर ने कबीर लिखा। क्योंकि उन्हें लगता था कि कबीर की शिक्षा और विचार आज के माहौल में न सिर्फ शिक्षाप्रद है बल्कि जरूरत भी हैं।

हालांकि शेखर को कबीर के विवादास्पद होने का अंदेशा भी दिखाया गया। उन्हें कई पत्र मिले जिसमें कहा गया था कि कबीर से जुड़े कई साक्ष्य गलत हैं और यही नहीं कबीर वह हैं ही नहीं जैसा उन्हें नाटक के जरिए दिखाया गया। इन सबसे शेखर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उनके शो चलते रहे और दर्शक तुलसीदास के साथ साथ कबीर का आनन्द लेते रहे। यानी शेखर का उद्देश्य पूरा रहा, लोगों को अपनी प्राचीन संस्कृति के साथ अटल सत्य की जानकारी भी मिली। वे भौतिकवाद और स्वार्थी दुनिया में प्रेम और मानवता का संदेश देने में कामयाब रहे। आलम यह है कि अब सिर्फ इनके शो के नाम से थिएटर हाऊसफुल हो जाता है।

समस्या

— के.जी. बालकृष्ण पिल्लै

मोड़-मोड़ पर रावण बैठे, सत्ता-सीता को हरने
मन्दोदरियाँ विलख रही हैं, काम - बधिर क्यों सुन पाएँ?
सत्य-अहिंसा धनुषबाण धर, दशमुख राक्षस दल दलने
हम में से अब कौन बनेगा, राम, समस्या सुलझाएँ

गीता भवन, टी.सी 5/1797, पेरुकटा, पो. तिरुअनन्तपुरम, केरल

राम तो सभी के हृदय में बसते हैं

— अब्बास खान 'संगदिल'

साहित्य जगत में भारतेन्दु काल से अब तक अनेकों साहित्य मनीषियों ने अपनी कलम से समाज के अंदर पनपने वाली कुरीतियों को बदलने की सोच पैदा करने की कोशिश की है। साहित्य किसी एक वर्ग जाति धर्म व्यक्ति विशेष का नही होता भक्तिकाल के पदार्पण के साथ ही साहित्य वर्ग में एक नई चेतना का संचार हुआ भक्तिकाल की रचनाएँ निर्गुण निराकार रूप को स्वीकार कर भक्ति काव्य की रचनाओं को विशेष जोर दिया जाने लगा प्रेमाश्रयी शाखा के कवि प्रेम को ही ईश्वर प्राप्ती का मूलाधार मानकर सूफी विचारधारा के अनुसार इन कवियों ने आध्यात्मिक प्रेम का स्वरूप अपनी रचनाओं में किया, इसमें अधिकांश कवि मुसलमान थे जायसी, कुतवन प्रमुख हैं। कुछ कृतिकार ईश्वर के सगुण रूप की ओर आकर्षित हुए, उन कवियों ने मुख्यतः राम, कृष्ण को आधार मानकर भक्ति काव्य का सृजन किया। मिर्जा हसन नासिर लखनऊ की कलम से राम की महिमा का वर्णन मुक्तक के रूप में इस प्रकार वर्णित है–

धर्म की होने लगी फिर हार नासिर, पाप बढ़ने लगे हैं बार नासिर।
अवतरित होने को है फिर राम भू पर, दिख रहे हैं ऐसे ही कुछ आसार नासिर।।

राम सिर्फ एक ही समुदाय के नहीं हैं वे तो सभी के हृदय में बसते हैं सबसे प्रेम है उनकी महिमा अपार है।

वाल्मीक ने रामायण के माध्यम से उनकी बाल लीलाओं का वर्णन किया तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में पठनीय बुन्देली भाषा में समाज के सामने रखा जिसे आज घर-घर पढ़ा जाता है। राम कथा भारतीय साहित्य की विविध धाराओं को प्रोत्साहित करने में सफल रही है। ब्रजभाषा में मुस्लिम लेखकों की कोई कमी नहीं रही। जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी के अनुसार जब तुलसीदास जी ने रामचरितमानस लिखना शुरू किया तो काशी के पंडितों ने यह कहकर उनका तिरस्कार किया था कि भाषा में यह क्या लिखते हो। जहाँ तक राम कथा का संबंध है बंगाल के नवाबों ने रामायण का अनुवाद बंगला में कराया था जो 'वर्णी रामायण' के नाम से मशहूर है। रज्जब अली ऐसे मुस्लिम कवि हुए हैं जिन्होंने रामरस पिया और दूसरों को पिलाया वे एक सच्चे मुसलमान थे, उन्होंने कभी किसी मजहब को बुरा नहीं कहा उनकी कलम का जादू देखिये –

राम रसायन पीजिए पीए सब सुख होय

भारतीय संस्कृति मानव एकता की अनूठी मिशाल है, हमारी इस धरा पर ईश अंशों ने अवतरित होकर इस भूमि को धन्य किया है। यहाँ रहीम, रसखान जायसी के कलमों से गीतों के झरने फूटते थे। जिस तरह फकीरों, भक्तों की कोई जाति नहीं होती उस प्रकार साहित्यकार भी किसी जाति बंधन में बंधा नहीं होता रहीम खानखाना एक सेनापति भी थे और कवि भी आधुनिक रसखान के नाम से प्रसिद्ध अब्दुल रसीद खां के शब्दों में राम का वर्णन–

बड़े खुसामद प्रिय भये तुमहू हे अवधेश। गिरयो विभीषण चरण पे वाही कियो लंकेस।

आधुनिक कवियों ने भी राम रस का वर्णन करने में अपने आपको पीछे नहीं छोड़ा। आज के मुस्लिम साहित्यकार भी राम का वर्णन अपनी कलम से इस प्रकार करते हैं वेकल उत्साही के शब्दों में –

साकार हो तो भेद बता क्यूँ नहीं देते। हे राम हमें अपना बना क्यूँ नहीं लेते।।
हम कागजी रावण को जला देते हैं हर साल। तुम भीतरी रावन को मिटा क्यूँ नहीं देते।।

रामचन्द जी ने सेतुबंध के समय समुद्र तट पर शिवलिंग की स्थापना कर उसकी पूजा अर्चना की थी वे शिव निंदा सहन नहीं कर सकते शिवद्रोही को तुलसीदास के अनुसार अपना द्रोही समझते हैं।

हरिहर निंदा सुनई जो काना, होइ पाप गोघात समाना।

ऐसे अराध्य प्रेम की मूर्ति राम की बड़ाई करते-करते कलम थक जायेगी। शायरों, कवियों ने छन्द दोहा, सोरठा, चौपाई, मुक्तक आदि का प्रयाग कर राम कथा का वर्णन कर समाज में धर्म के प्रति एक नई चेतना का संचार किया। अम्बर बहराइची के शब्दों में –

चाँद के हुस्न का है कौन जो बीमार नहीं। चंद आँखों के लिए हुस्न चमनजार नहीं।।
सारे आलम में हर इक सिम्त है चर्चा उनका। सिर्फ हिन्दू के लिए राम का अवतार नहीं।।

राम विवाह का सुन्दर वर्णन करने से भी साहित्यकार नहीं चूकते। मुस्लिम धर्म के प्रति यदि उनका विशेष अनुराग है, राम विवाह की खुशी से अपनी कलम के माध्यम से इफ्तियार अहमद खाँ राना कुछ इस तरह बयान फरमाते हैं –

आज्ञा पाकर गुरु की उठे तुरत रघुनाथ। शिव धनु खंडित हो गया छुअत राम के हाथ।।
हुए चकित सब देखकर यही ही है रघुवीर। करे बड़ाई राम की सब एकत्रित वीर।।

भारत के लोक नायक राम पर आज विश्व को नाज है आखिर वे राम हैं जन-जन के राम फिर कवि उनके गुणगान को कर अपने को धन्य क्यों न समझे।

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है। कोई कवि बन जाए सहज सम्भाव्य है।

अपने धर्म के प्रति सुदृढ़ रहकर भी मुसलमान भारतीय होने का गर्व अनुभव करता है रहीम उसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

हिन्दु आन को वेदसम तुरुकहि प्रकट कुरान।

मिर्जा हसन नासिर, दीन मुहम्मद दीन, नजीर मुहम्मद, आरिफ नजीर, अब्बास अली वास, हबीब अहमद, जैसे कई मुस्लिम आधुनिक कवियों ने अपनी कलम से राम की महिमा का वर्णन किया है। डॉ0 जमीर अहमद ने रामचरितमानस का उर्दू अनुवाद ग्यारह सौ पृष्ठों में सम्पूर्ण कर रामानंद सागर से आधुनिक मानस पुत्र का अभिनंदन कराया। तुलसी के लिए उन्होंने एक शेर कहा जो इस प्रकार है –

रख दिया है राम को शब्दों में तुमने ढालकर। जिस तरह माता जवाँ करती है बेटा पालकर।।

इसी प्रकार रामभक्त उपासक हनुमान के लिए श्री रसूल खाँ रसूल ने कहा –

पवन तनय हो अंजनी कुमार के सुवीर। बल में अपार जिसकी न कोई थाह है।।

रसूल जी के काव्य में विविध विभूषित राम, हनुमान परसराम से संबंधित छंद मिलेंगे जिनके पढ़ने से मन को बड़ा सुख मिलता है। ऐसे रचनाकारों के लिए भारतेन्दु जी की उक्ति इन मुसलमान साहित्यकारों के लिए गर्व की बात है। जहाँ मुस्लिम साहित्यकारों ने राम कृष्ण की महिमा का वर्णन किया है वहीं राम की अयोध्या का मार्मिक वर्णन भी करने से नहीं चूकते। अहमद बक्स जो हरियाणा के रसखान के नाम से प्रसिद्ध हैं उनके शब्दों में अयोध्या का वर्णन इस प्रकार है –

नृप दशरथ त्रेता भये अवधपुरी है धाम। तीन रानियाँ नृपति की भारत खंड तमाम।।

अधिकांश साहित्यकारों से आप हम सभी परिचित हैं। इस दिशा में श्री बद्रीनारायण तिवारी जी ने मुस्लिम साहित्यकारों के नाम काव्य संग्रह तैयार कर वर्तमान समाज में फैली इस भ्रांति को दूर करने का अथक प्रयास किया है कि भारत जैसे महान देश में सभी धर्म वर्ग एक हैं ईश्वर एक है। जिसे कुछ लोग बाँटने, तोड़ने वर्ग विभेद करने का प्रयास यदा कदा करते रहते हैं। हर कौम में नवी आते हैं रामचन्द्रजी ने आकर इस पृथ्वी से जुल्मों सितम को जड़ से समाप्त कर शाही सुख प्रदान कर सबके मन को जीत लिया। राम को मानने वाला फिर हनुमान बनके आयेगा। जुल्म ही जुल्म जिसमें होते ही ऐसी लंका को वह जलायेगा। इस मुबारिक मौके पर डॉ0 इकबाल की शायरी के साथ अपनी कलम का विराम देते हुए निवेदन है कि यदि इसमें कोई त्रुटि हो तो क्षमा माँगते हुए आपके विचारों का मुझे इंतजार रहेगा।

है राम के वजूद पे हिन्दोस्ताँ को नाज। सब अहले हिन्दु कहते हैं इसको इमामे हिन्द।।

हर्रई जागीर, जिला छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

मानव मन मन्दिर बन जाये

— चिरंजी लाल शर्मा 'विनोदी'

जल मेरे दीपक ऐसा जल।
दीख पड़े तेरे प्रकाश में, कहाँ असल है कहाँ नकल?
जल मेरे दीपक ऐसा जल।
कर ऐसा उन्मुक्त सबेरा मिटे हृदय का घोर अँधेरा।
मानव मन मन्दिर बनजाये, सद्विवेक का बने बसेरा।
दीपक तेरी शुभ्र ज्योति, अज्ञान तिमिर को जाय निगल।
जल मेरे दीपक ऐसा जल।
देश प्रेम जागे जन मन में, निर्मलता आये शासन में।
ऋद्धि-सिद्धियाँ प्रकट्य करती, अधिक परिश्रम उत्पादन में।
अकर्मण्यता मिट जाये तो, झोपड़ियाँ बन जाय महल।
जल मेरे दीपक ऐसा जल।
ज्योतिपर्व की पुण्य घड़ी है, प्राण वर्तिका शुष्क पड़ी है।
सरस स्नेह देकर प्रज्चलित, अँधकार-आँधी उमड़ी है।
दिव्य ज्योति से, तम मिट जाता, यह शाश्वत सिद्धान्त अटल।
जल मेरे दीपक ऐसा जल।
यत्र तत्र बन जाय सुरंगा, बहे स्नेह की पावन गंगा।
ऐसा कर आलोक विश्व में, रहे न कोई भूखा नंगा।
उगे देश में कर्म परायण, मानवता की नई फसल।
जल मेरे दीपक ऐसा जल।

चिड़ावा 333026, झूँझनूँ (राजस्थान)

प्राच्य जगत् की दार्शनिक परम्परा के श्रेष्ठ व्याख्याता डॉ० सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने लंदन में एक व्यक्ति ने चुटकी लेते हुए कहा कि 'आपके देश में गोरे, काले, गेहुंआ, सांवले इत्यादि सभी तरह के लोग होते हैं, जबकि हमारे देश में सभी लोग एक ही रंग के होते हैं।'

उन्होंने प्रत्युत्पन्नबुद्धि का परिचय देते हुए कहा कि 'बन्धु, आपका कहना सर्वथा उचित है; संसार में घोड़े अनेक रंगों के पाए जाते हैं, जबकि गधे सर्वत्र एक ही रंग के मिलते हैं।'

उत्तर सुन कर वह व्यक्ति निरुत्तर हो गया।

प्रस्तुति : अरुण कुमार एडवोकेट

इन्डोनेशिया के राष्ट्रीय पर्व में शामिल है रामलीला

– नेहा भटनागर

इन्डोनेशिया के लोग रामकथा को अपनी सांस्कृतिक धरोहर मानते हैं। राम यहाँ के राष्ट्रीय महापुरुष हैं। इन्डोनेशिया में रामलीला अपने ढंग की अनोखी होती है। इतना बड़ा और व्यवस्थित रामलीला मंच विश्व में शायद दूसरा नहीं है।

यहाँ की रामायण है 'रामायण काकविन' जिसके प्रति यहाँ के लोगों के भाव रामचरित मानस जैसे पवित्र हैं। यहाँ की रामलीला 'रामायण काकविन' पर आधारित होती हैं लीला में इसी से संवाद बोले जाते हैं। इन्डोनेशिया [illegible] बहुल क्षेत्र बाली तथा मुस्लिम बहुल क्षेत्र जोगकार्ता की रामलीलाएं विशेष मनोहारी होती हैं। रामलीला पर [illegible]टक यहाँ के जीवन के अंग बन गए हैं, यदि ऐसा कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

[illegible] का 'वायांग गांग' नाट्य ग्रुप बहुत ही रोचक और भावपूर्ण रामलीला प्रस्तुत करता है। इसमें पुरुष राक्षसों [illegible]भिनय करते हैं तथा महिलाएं राम परिवार के पात्रों का अभिनय करती हैं। यहाँ कठपुतली नृत्य पर आधारित रामलीलाएं सारी रात चलती हैं। दर्शकों को बाँधे रखने के लिए नृत्य का प्रमुख संचालक बीच-बीच में मनोरंजक हास्य भी प्रस्तुत करता है जिससे अक्सर रामलीला पूरी होते-होते सुबह हो जाती है।

जावा में तो वायांग अब मात्र लोकानुरंजन का माध्यम है परन्तु बाली में अब भी यह धार्मिक संस्कारों का अनिवार्य अंग है। कोई भी ओडोलान (मन्दिर महोत्सव) वायांग के बिना सम्पन्न नहीं होते हैं।

चूँकि रामायण, महाभारत के वायांग अभिनय इन्डोनेशिया के राष्ट्रीय पर्व हैं। अतः शासकीय स्तर पर भी इनकी मंच प्रस्तुतियाँ पूरे वर्ष भर होती रहती हैं। जावा में रामलीला का स्थान है योग्यकर्ता एवं सुराकर्ता तथा बाली द्वीप में डेनवसार नगर। योग्यकर्ता की रामलीला प्रायः अप्रैल से अक्टूबर तक प्रावनान मन्दिर प्रांगण में खुले रंगमंच पर महीने में चार दिन होती हे।

बाली द्वीप की राजधानी डेनवसार 'क्षीराणर्व संस्कृति केन्द्र' के 'अर्धचन्द्र' नामक खुले रंगमंच पर रामलीला प्रतिवर्ष 'अस्ति इंस्टीट्यूट' के कालाकारों द्वारा प्रस्तुत की जाती है।

जावा और बाली की रामलीलाएं तकनीकी दृष्टि से वायांग-गांग कही जाती हैं। पुरुषों तथा महिलाओं द्वारा सम्पादित यह नाट्य प्रस्तुति पूरी तरह भारतीय रंगमंच के अनुकूल है। यह रामलीला 'म्यूयोगीश्वर' के रामायण काकविन के अनुसार होती है।

सुवर्णद्वीप की रामलीला के सभी पात्र मूक अभिनय करते हैं। उसके संवाद डलंग (सूत्रधार) बोलते हैं। बाली का अर्धचन्द्र नाट्यमंच पश्चिमाभिमुख है। मंच के दाहिने पार्श्व में सबसे आगे डलंग बैठता है। उसके आसपास रामायण काकविन के अंशों का गायन करने वाली तीन चार युवतियाँ होती हैं। तथा पीछे बैठते हैं पेलेगोगन (आर्केस्ट्रा वादक)।

सम्पूर्ण रामलीला की सफलता का दायित्व डलंग पर होता है। डलंग विद्यावैदुषी सम्पन्न, पवित्र संस्कारों से संस्कृत, तन्त्र-मन्त्र में पारंगत, दैवीय शक्ति सम्पन्न एक अद्भुत कलाकार है जो पालथी मारे सारी रात एक आसन में बैठा रहता है। सम्पूर्ण रामकथा का संवाद उसे कंठस्थ होता है।

अद्भुत कला है सुवर्णद्वीपीय डलंग की। क्षणभर में ही बादल जैसी गर्जना,क्षणभर में ही रो देना और फिर भावानुसार हुंकार करना, ललकारना, सिसकना, प्राणों की भीख मांगना सब डलंग के लिए सहज है।

इन्डोनेशिया में चाहे बाली का हिन्दू हो या जावा सुमात्रा का मुसलमान दोनों ही राम को अपना राष्ट्रीय महापुरुष और राम साहित्य तथा राम सम्बन्धी ऐतिहासिक अवशेषों को अपनी सांस्कृतिक धरोहर समझते हैं । जोगजाकर्ता का प्रामबनन मन्दिर इस बात का साक्षी है जिसकी प्रस्तर भित्तियों पर सम्पूर्ण रामकथा उत्कीर्ण है । मन्दिर सम्पूर्ण स्थापत्य कथा भारत की अपनी शैली जैसी लगती है ।

बाली में रामलीला या रामकथा से सम्बन्धित नृत्य नाटिकाओं की लोकप्रियता दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है । इस द्वीप का वातावरण पूर्णतः संस्कृतिमय है । राह चलते दिखाई पड़ता है कि बालीवासी रामलीला देखने में आनन्द विभोर हो उठते हैं ।

❑❑❑

धरती स्वर्ग बना लो

—श्रीमती शिवा शर्मा

ये जीवन! तुम मन्द मन्द मुस्कानों से भर डालो
आशाओं के दीप जलाकर पथ कोई अपना लो ।
महकाओ तुम आँगन—आँगन कुछ ऐसा कर डालो
जो होता है हो जाने दो धरती स्वर्ग बना लो ।
लाखों जन्म पुण्य जन्मे तब चरण प्रभू के पाए
मानव जीवन धन्य-धन्य फिर दुःख से क्यों घबराए ।
वाणी अपनी मृदु रख इतनी सबकी राह बदल दे
कण-कण, पुष्प, कली, वन तुझको सौ-सौ बार नमन दे ।
करुणा, दया, प्रेम अपनाकर ऐसा जीवन ढालो
सबकी आँखों का तारा बन जीवन सफल बना लो ।
ये जीवन! तुम मन्द मन्द मुस्कानों से भर डालो
आशाओं के दीप जलाकर पथ कोई अपना लो ।

38/49, 'ए', खास बाजार
कानपुर - 208 001

इन्डोनेशिया के राष्ट्रीय पर्व में शामिल है रामलीला

– नेहा भटनागर

इन्डोनेशिया के लोग रामकथा को अपनी सांस्कृतिक धरोहर मानते हैं। राम यहाँ के राष्ट्रीय महापुरुष हैं। इन्डोनेशिया में रामलीला अपने ढंग की अनोखी होती है। इतना बड़ा और व्यवस्थित रामलीला मंच विश्व में शायद दूसरा नहीं है।

यहाँ की रामायण है 'रामायण काकविन' जिसके प्रति यहाँ के लोगों के भाव रामचरित मानस जैसे पवित्र हैं। यहाँ की रामलीला 'रामायण काकविन' पर आधारित होती हैं लीला में इसी से संवाद बोले जाते हैं। इन्डोनेशिया में हिन्दू बहुल क्षेत्र बाली तथा मुस्लिम बहुल क्षेत्र जोगकार्ता की रामलीलाएं विशेष मनोहारी होती हैं। रामलीला पर आधारित नाटक यहाँ के जीवन के अंग बन गए हैं, यदि ऐसा कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

इन्डोनेशिया का 'वायांग गांग' नाट्य ग्रुप बहुत ही रोचक और भावपूर्ण रामलीला प्रस्तुत करता है। इसमें पुरुष राक्षसों का अभिनय करते हैं तथा महिलाएं राम परिवार के पात्रों का अभिनय करती हैं। यहाँ कठपुतली नृत्य पर आधारित रामलीलाएं सारी रात चलती हैं। दर्शकों को बाँधे रखने के लिए नृत्य का प्रमुख संचालक बीच-बीच में मनोरंजक हास्य भी प्रस्तुत करता है जिससे अक्सर रामलीला पूरी होते-होते सुबह हो जाती है।

जावा में तो वायांग अब मात्र लोकानुरंजन का माध्यम है परन्तु बाली में अब भी यह धार्मिक संस्कारों का अनिवार्य अंग है। कोई भी ओडोलान (मन्दिर महोत्सव) वायांग के बिना सम्पन्न नहीं होते हैं।

चूँकि रामायण, महाभारत के वायांग अभिनय इन्डोनेशिया के राष्ट्रीय पर्व हैं। अतः शासकीय स्तर पर भी इनकी मंच प्रस्तुतियाँ पूरे वर्ष भर होती रहती हैं। जावा में रामलीला का स्थान है योग्यकर्ता एवं सुराकर्ता तथा बाली द्वीप में डेनवसार नगर। योग्यकर्ता की रामलीला प्रायः अप्रैल से अक्टूबर तक प्रावनान मन्दिर प्रांगण में खुले रंगमंच पर महीने में चार दिन होती हे।

बाली द्वीप की राजधानी डेनवसार 'क्षीरार्णव संस्कृति केन्द्र' के 'अर्धचन्द्र' नामक खुले रंगमंच पर रामलीला प्रतिवर्ष 'अस्ति इंस्टीट्यूट' के कालाकारों द्वारा प्रस्तुत की जाती है।

जावा और बाली की रामलीलाएं तकनीकी दृष्टि से वायांग-गांग कही जाती हैं। पुरुषों तथा महिलाओं द्वारा सम्पादित यह नाट्य प्रस्तुति पूरी तरह भारतीय रंगमंच के अनुकूल है। यह रामलीला 'म्यूयोगीश्वर' के रामायण काकविन के अनुसार होती है।

सुवर्णद्वीप की रामलीला के सभी पात्र मूक अभिनय करते हैं। उसके संवाद डलंग (सूत्रधार) बोलते हैं। बाली का अर्धचन्द्र नाट्यमंच पश्चिमाभिमुख है। मंच के दाहिने पार्श्व में सबसे आगे डलंग बैठता है। उसके आसपास रामायण काकविन के अंशों का गायन करने वाली तीन चार युवतियाँ होती हैं। तथा पीछे बैठते हैं पेलेगोगन (आर्केस्ट्रा वादक)।

सम्पूर्ण रामलीला की सफलता का दायित्व डलंग पर होता है। डलंग विद्यावैदुषी सम्पन्न, पवित्र संस्कारों से संस्कृत, तन्त्र-मन्त्र में पारंगत, दैवीय शक्ति सम्पन्न एक अद्भुत कलाकार है जो पालथी मारे सारी रात एक आसन में बैठा रहता है। सम्पूर्ण रामकथा का संवाद उसे कंठस्थ होता है।

अद्भुत कला है सुवर्णद्वीपीय डलंग की। क्षणभर में ही बादल जैसी गर्जना,क्षणभर में ही रो देना और फिर भावानुसार हुंकार करना, ललकारना, सिसकना, प्राणों की भीख मांगना सब डलंग के लिए सहज है।

इन्डोनेशिया में चाहे बाली का हिन्दू हो या जावा सुमात्रा का मुसलमान दोनों ही राम को अपना राष्ट्रीय महापुरुष और राम साहित्य तथा राम सम्बन्धी ऐतिहासिक अवशेषों को अपनी सांस्कृतिक धरोहर समझते हैं । जोगजाकर्ता का प्रामबनन मन्दिर इस बात का साक्षी है जिसकी प्रस्तर भित्त्यिों पर सम्पूर्ण रामकथा उत्कीर्ण है । मन्दिर सम्पूर्ण स्थापत्य कथा भारत की अपनी शैली जैसी लगती है ।

बाली में रामलीला या रामकथा से सम्बन्धित नृत्य नाटिकाओं को लोकप्रियता दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है । इस द्वीप का वातावरण पूर्णतः संस्कृतिमय है । राह चलते दिखाई पड़ता है कि बालीवासी रामलीला देखने में आनन्द विभोर हो उठते हैं ।

❑❑❑

धरती स्वर्ग बना लो

—श्रीमती शिवा शर्मा

ये जीवन ! तुम मन्द मन्द मुस्कानों से भर डालो
आशाओं के दीप जलाकर पथ कोई अपना लो ।
महकाओ तुम आँगन—आँगन कुछ ऐसा कर डालो
जो होता है हो जाने दो धरती स्वर्ग बना लो ।
लाखों जन्म पुण्य जन्मे तब चरण प्रभू के पाए
मानव जीवन धन्य-धन्य फिर दुःख से क्यों घबराए ।
वाणी अपनी मृदु रख इतनी सबकी राह बदल दे
कण-कण, पुष्प, कली, वन तुझको सौ-सौ बार नमन दे ।
करुणा, दया, प्रेम अपनाकर ऐसा जीवन ढालो
सबकी आँखों का तारा बन जीवन सफल बना लो ।
ये जीवन ! तुम मन्द मन्द मुस्कानों से भर डालो
आशाओं के दीप जलाकर पथ कोई अपना लो ।

38/49, 'ए', खास बाजार

कानपुर - 208 001

वह साहित्याकाश का खुला नेत्र है

– डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल

गोस्वामी तुलसीदास जी का 'रामचरितमानस' जनता के हृदय की वस्तु है। एक 'रामचरितमानस' को पाकर ऐसा प्रतीत होता है मानों जनता ने अपने साहित्य, दर्शन, पुराण, धर्म और भाषा की प्राचीन परम्पराओं में से सब कुछ प्राप्त कर लिया हो। जिस प्रकार मध्यदेश में बहने वाली महानदी गंगा में अनेक छोटी बड़ी नदियाँ दुरुह पर्वत और गहन वनों के सरस वरदानों को लेकर मिलती है उसी प्रकार भारतीय प्रजाओं के विशाल वाङ्मय और बहुमुखी जीवन की अनेक धाराएँ रामचरितमानस में मिली हैं। अकेले 'रामचरितमानस' को पाकर हमें ऐसा जान पड़ता है हमने अपने मानस-जगत के रस ग्रहण करने वाले तन्तुओं में से कुछ भी नहीं खोया।

एक समय था जब वेद और ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषद् के ज्ञान को पवित्र जाहवी अनेकों के लिए सुलभ थी। किसी समय सूत्रकारों के सूक्ष्म तत्वज्ञान और महान् आचार्यो के दार्शनिक चिन्तन की मन्दाकिनी में बहुसंख्यक जनता अभिषेक करके तृप्त होती थी। विशाल बदरी के तपोवन में तीन वर्ष तक निरन्तर परिश्रम करके सदोत्थायी भगवान् व्यास ने भारत और पुराणों की जिस भागीरथी का लोक अवतरण कराया था उसके सान्निध्य से अपने-आपको पवित्र करने के साधन भारतीय जनता के लिए विक्रम की प्रथम सहस्राब्दि तक सुलभ थे। प्राचीन काल में जनता में प्रचलित धर्म की अखण्ड पद्धति अलकनन्दा की गम्भीर धारा के समान जनता के जीवन को सींच रही थी। परन्तु मध्यकालीन भारतीय इतिहास के युग में ये प्रवाह उसी प्रकार सुलभ न रह गये थे अतएव जिस प्रकार गिरिराज हिमालय में जाह्नवी, मन्दाकिनी में बहुसंख्यक जनता अभिषेक करके तृप्त होती थी। विशाल बदरी के तपोवन में तीन वर्ष तक निरन्तर परिश्रम करके सदोत्थायी भगवान व्यास ने भारत और पुराणों की जिस भागीरथी का लोक अवतरण कराया था उसके सान्निध्य से आपने-आपको पवित्र करने के साधन भारतीय जनता के लिए विक्रम की प्रथम सहस्राब्दि तक सुलभ थे। प्राचीन काल में जनता में प्रचलित धर्म की अखण्ड पद्धति अलकनन्दा की गम्भीर धारा के समान जनता के जीवन को सींच रही थी। परन्तु मध्यकालीन भारतीय इतिहास के युग में ये प्रवाह उसी प्रकार सुलभ न रह गये अतएवं जिस प्रकार गिरिराज हिमालय में जाह्नवी, मन्दाकिनी, भागीरथी और अलकनन्दा की धाराएँ क्रमशः मिलकर मंगलकारिणी गंगा को जन्म देती है जिससे चराचर कृतकृत्य होता है, उसी प्रकार कवि के मानस से वेद, दर्शन, पुराण एवं धर्म की चार बड़ी धाराओं के एकत्र समन्वय से 'रामचरित मानस' रूपी साहित्यिक गंगा जनता के कल्याण के लिए उत्पन्न हुई – 'सुरसरि सम सब कर हित होई।''

'रामचरितमानस' विक्रम की दूसरी सहस्राब्दी का सबसे अधिक प्रभावशाली ग्रन्थ है। भारतीय वाङ्मय के समुद्र से अनेक विचार-मेघ उठे और बरसे। उनके अमृत–तुल्य जल की जिस मात्रा में जनता को आवश्यकता थी, उसे समेटकर मानों गोंसाई जी ने 'रामचरितमानस' में भर दिया है। इसमें न कुछ अधिक है, न कुछ कम। जो अन्यत्र था वह साररूप से यहाँ आ गया और जो साररूप से यहाँ है वही विस्तार से अन्यत्र था।

विक्रम की प्रथम सहस्राब्दी में संस्कृत वाङ्मय के क्षेत्र में नया प्राण आया। वह अनेक प्रकार से नया हो उठा। जब महाकवि कालिदास ने आजन्म शुद्ध रघुवंशी राजाओं का चरित्र और यश जनता के सम्मुख रखा, उस समय कवि की सरस्वती का प्रसाद पाकर लोग प्रसन्न हुए। ऐसा अनभुव हुआ कि श्रुति और स्मृति, पुराण और दर्शन, धर्म और जीवन, कला और साहित्य के क्षेत्रों में जो कुछ भी उपादेय और रमणीय है, उस सबको महाकवि कालिदास ने अभूतपूर्व कौशल से अक्षय रस के साथ लोक के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया है विक्रम की प्रथम सहस्राब्दी के सबसे समृद्ध प्रतिनिधि कालिदास हैं। विक्रम की दूसरी सहस्राब्दी में वही पद तुलसीदास को प्राप्त है।

अनेक प्रकार के लोक-मंगलों से भरपूर होकर संस्कृत साहित्य ने विक्रम के एक सहस्र वर्षो तक चरम सीमा की

उन्नति प्राप्त की। उस काल के अन्तिम भाग में अपभ्रंश भाषाओं का उदय हुआ और साहित्य की प्राचीन परम्परा और जनता के जीवन के बीच व्यवधान होने लगा। यह दूरी क्रमशः बढ़ती गयी। अपने वाङ्मय से रस प्राप्त करने के जो अनेक स्रोत थे वे जनता के लिए रुद्ध होने लगे। अपभ्रंश भाषा का कड़खा कुछ समय तक तो अच्छा लगा, पर उसमें न तो पुराने साहित्य की धाराएँ उन्मुक्त रूप से आ पायीं और न रस की पूरी मात्र ही उस साहित्य में आ सकीं। भारतीय जीवन में रस के लिए जो गाढ़ा प्रेम है, धर्म और दर्शन को साथ मिलाकर जीवन की व्याख्या करने की जो प्रवृत्ति है और प्राचीन राजर्षियों और ऋषियों के उदात्त चरित्रों के प्रति जो पूजा का भाव है, इन तीनों को एक साथ एक जगह पाने के लिए जिस ग्रन्थ की आवश्यकता थी, अपभ्रंश काल के समाप्त होने पर लोकभाषाओं के नवीन अभ्युदय के युग में वह ग्रन्थ 'रामचरितमानस' में प्रकट हुआ।

चतुर्मुख ब्रह्मा की ज्ञान वेदी में जिस प्रकार वेदच्युष्टयी का संगम होता है उसी प्रकार धर्म, दर्शन, साहित्य और पुराण 'रामचरितमानस' में एक साथ मिले हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने जिस ज्ञान-यज्ञ का विधान किया उसके मण्डप में भारतीय वाङ्मय की समस्त परम्पराएँ अपने विशुद्ध और लोक-हितकारी रूप में मिली हैं। इस मण्डप के तोरण पर संगति और समन्वय का संदेश अंकित हैं गोस्वामी जी ने 'रामचरितमानस' की इस विशेषता को आरम्भ में ही पाठकों को बता दिया है –

"नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्–रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा – भाषानिबद्धमति मंजुलमातनोति।।

इस श्लोक में गोस्वामी जी की यह सत्य प्रतिज्ञा है कि अनेक पुराण, वेदशास्त्र तथा सन्तमत आदिक अन्य स्रोतों से जनता की कल्याणकारी वाणी को साररूप में उन्होंने अपनी अनुभूति के साथ रामायण में भर दिया है। इसलिए यह ग्रन्थ सर्वसम्मत हुआ। इस श्लोक में तुलसीदास जी की दूसरी बड़ी प्रतिज्ञा यह है कि 'नानापुराणनिगमागमसम्मंत' विशाल ज्ञान भण्डार को तत्कालीन लोक की 'भाषा' में बद्ध करके एक अतिसुन्दर निबन्ध के रूप में उसे जनता तक पहुँचाना है। कवि के शब्दों में यह रामायण अति-मंजुल भाषा निबन्ध है। उनका कथन माननीय है। मंगलाचरण की इस बात को महाकवि ने मानस के अन्तिम श्लोक में फिर दोहराया है–

स्वान्तस्तमः शान्तये। भाषानिबद्धमिदं चकार तुलसीदाससस्त था मानस।।

कवि की प्रतिज्ञा बड़ी सार्थक थी। 'भाषाबद्ध करब मैं सोई' – इस बात के भीतर गहरा संकेत भरा हुआ है। तुलसी के लिए संस्कृत का पाण्डित्य नितान्त सुलभ था। संस्कृत साहित्य पर उनका विलक्षण अधिकार ज्ञात होता है। 'रामचरितमानस' में यत्र-तत्र जो संस्कृत के नमूने हैं वे एकदम टकसाली हैं। तुलसी ने संस्कृत के जितने शब्दों का प्रयोग किया है उतने शायद ही किसी अन्य मध्यकालीन भाषा कवि की कविता में प्राप्त हों। उनकी शब्दावली के विस्तार का पूरा अध्ययन करने योग्य है। महाकवि की यही विशेषता होती है। शब्दों का जो धन गोस्वामी जी की कविता में है वह अन्यत्र सुलभ न होगा। भाषा, छन्द, रस और अर्थ पर अपने असाधारण अधिकार का उपयोग यदि वे संस्कृत काव्य के लिए करते तो सम्भव यही है कि गोस्वामी जी उसमें भी सफल होते। किन्तु उनकी उस सफलता से भी भारतीय साहित्य में एक बड़ा अभाव बना रह जाता। जिस भाषा का 'भदेस भनिति' कहकर विद्वान् उस युग में हँसते रहे होंगे उसमें यदि तुलसी ने अपने 'अति मंजुल भाषा निबन्ध' की रचना न की होती तो जनता और देश की प्राचीन संस्कृति के बीच में गहरी खाई बन गयी थी वह पड़ी रह जाती। तुलसीदास का 'रामचरितमानस' वह सेतुबन्ध है, जनता को और 'नाना पुराण-निगमागम' वाले साहित्य को आपस में मिलाता है।

अब गाँवों की कोटि-कोटि जनता के हृदय तक स्वधर्म, संस्कृति और साहित्य का रस कौन पहुँचाता है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि 'रामचरितमानस' की सुन्दर-सुलभ और सरस धारा के द्वारा ही वह रस जनता को मिलता है। 'रामचरितमानस' को पाकर लोक ने मानों सब कुछ पा लिया। ऐसा नहीं जान पड़ता कि जनता ने अपनी प्राचीन साहित्य निधि में से कुछ भी खोया हो। लोक के मन को रस से तृप्त और तुष्ट करने के लिए जिस सामग्री की आवश्यकता थी उसको विक्रम की दूसरी सहस्राब्दी में गोस्वामी जी ने 'रामचरितमानस' के द्वारा सुन्दर से सुन्दर काव्यमय रूप में प्रस्तुत किया।

'रामचरितमानस' हमारे लिए क्या है? इसे जानने के लिए कल्पना करनी चाहिए कि यदि वह ग्रन्थरत्न भाषा में विरचित न होता तो जनता की क्या दशा हुई होती तथा लोक में ज्ञान की जो धारा बिना क्रम टूटे हुए बहती आयी है उसकी क्या गति हुई होती? इस प्रकार की कल्पना से सम्भवतः हम रामायण की महिमा का कुछ अनुमान कर सकें। गत चार सौ वर्षों में लोक के हृदय में जो प्रकाश रहा है और जनता को प्राचीन ज्ञान के उत्तराधिकार में जो भाग मिला है उसका बहुत कुछ श्रेय गोस्वामी जी को है।

'मैं इस भाषा-निबन्ध को अपने सुख के लिए रचता हूँ।' 'मैंने अपने अन्तःकरण के अन्धकार को हटाने के लिए इस रामायण की भाषा में रचना की है' – इस भाँति कवि की प्रतिज्ञा में समस्त भारतीय प्रजा के हृदय की छाप है। गोसाई जी ने अपने मन में जिस अन्धकार की कल्पना की थी, वह प्रगाढ़ अन्धकार लोगों के मन में भी था। उसे दूर करने के लिए 'रामचरितमानस' के द्वारा उन्हें प्रकाश मिला। मध्यकालीन इतिहास पर विचार करने से हमें ज्ञात होता है कि अन्धकार कितना गहरा था। विक्रम की सोलहवीं शती में वीरगाथा काव्यों की परम्परा नीरस हो चुकी थी। उसकी धारा छोटे-छोटे रासो काव्यों में भटककर रह गयी थी। सिद्धों और नाथों के दोहों की गति भी दूर तक न जा सकी। कबीर के निर्गुणवाद में बुद्धि को झकझोरने का मसाला तो था, पर हृदय को स्पर्श करने की शक्ति न थी। जायसी के प्रेम काव्य में हृदय का एक छोटा-सा कुतूहल अवश्य था, परन्तु व्यक्ति और समाज के जीवन का निर्माण करने वाले शक्तिशीत आशावाद का उसमें पता न था। अन्य कवियों के फुटकर प्रयत्न निर्बल पंखवाले पक्षियों की तरह उड़-उड़कर रह जाते थे। ऐसे समय आशा का नया सन्देश लेकर गोस्वामी जी प्रकट हुए गंगा की धारा जिस प्रकार गंगाद्वार में शैलराज हिमवन्त से उतरती हुई जलराशि को समेट लाती है, उसी प्रकार गोसाई जी ने भारतीय ज्ञान और साहित्य की समस्त तत्वानुभूति को समेटकर रामायण में भरा और लोक के लिए उसे दिया। शब्दों और अर्थो के सशक्त पंखों की सहायता से गरुड़ की तरह गोस्वामी जी साहित्य के आकाश में ऊँचे उठे। जहाँ तक वे पहुँचे वहाँ तक और कोई नहीं जा सकता। जिस धीर और गम्भीर शैली से उनके काव्य की धारा बही है वह शैली अन्य किसी को सुलभ नहीं हुई।

युग-युगों मे रामचरित्र में जो सहज शक्ति भरती आयी थी उससे तुलसीदास की कविता को शक्ति मिली। जिस अर्थ को वे कहना चाहते थे वह रामचरित्र की स्वाभाविक व्यंजना के कारण बहुत विकसित हो गया। गोसाईजी ने स्वतः प्राप्त सुन्दरता और सरसता की इस सामग्री से भरपूर लाभ उठाया। चतुर चित्रकार की भाँति कम से कम रेखाओं के द्वारा वे अभिधेय अर्थ को मूर्तिमान करने में सफल हुए। जिस कथानक को गोसाई जी ने कहना चाहा वह जनता के हृदय में पहले से ही बसा हुआ था। लोक के आकर्षण के लिए इससे अधिक कवि को और क्या चाहिए? जो कवि को कहना इष्ट था वह रामचरित लोगों के हृदय में पहले से ही विद्यमान था। गोसाई जी ने चतुराई के साथ उसको अपनी काव्य-सामग्री में सम्मिलित करके अपनी शक्ति का उपयोग अन्तःकरण के उस चित्र को सुन्दरतम रूप में सजा कर प्रकट करने के लिए किया। तुलसी का प्रयत्न भीतर की वस्तु को बाहर लाने के लिए जान पड़ता है। बाहर से भीतर हठात् किसी वस्तु को ले जाकर रखने की प्रवृत्ति उनमें नहीं है। लोक के मस्तिष्क के साथ उनकी उलझन बहुत कम थी। हृदय की सरस वाणी से वे अपनी बात कहते थे।

'नानापुराण-निगमागम-सम्मतम्' के सूत्र में कहा हुआ 'सम्मत' पद तुलसी के हृदयगत समन्वय को प्रकट करता है। यह उनकी सफलता की कुंजी थी। 'रामचरितमानस' समन्वय प्रधान काव्य है। शैवों और वैष्णवों के पारस्परिक द्वन्द्व तुलसी की कृपा से गंगा-यमुना की अन्तर्वेदी को छोड़कर बाहर चले गये। प्रयाग के संगम की तरह 'रामचरितमानस' में दोनों का मेल हो गया। द्वैत और अद्वैत के अनन्त पचड़ों को भी तुलसी ने अपनी समन्वयात्मक प्रवृत्ति से सुधार कर इस प्रकार सजाया कि अविरोधी मन से उनका ग्रहण किया जा सके। लोक में फैले हुए विशाल जनपद जीवन और नगरों के जीवन में जो दूरी थी उसे हटाकर दोनों के लिए रमणीय चित्र 'रामचरितमानस' में तैयार किया गया। इसमें जायसी के ठेठपन और रीति-काव्य की सँवारी रस-निर्भरता को बड़े ही सुन्दर और संयत ढंग से मिलाया गया। ग्रामों और नगरों को एक ही साथ समभाव से देख सकने की क्षमता गोसाई जी की विशेषता

थी। इसीलिए ग्रामवासी और पुरवासी दोनों ही तुलसी को अपना कवि समझते हैं। वस्तुतः तुलसी सच्चे अर्थों में पूरे राष्ट्र के कवि है।

भाषा के क्षेत्र में भी तुलसीदास जी ने बड़ा भारी समन्वय उपस्थित किया। देहातों की ठेठ भाषा में जो माधुर्य था और विद्वान् पण्डितों की संस्कृत वाणी में जो रुचिरता थी उन दोनों का अत्यन्त विलक्षण संयोग तुलसीदास जी की भाषा की शक्ति तुलसीदास जी की सबसे बड़ी विशेषता है। उनसे पहले और बाद के किसी कवि को भाषा के ऊपर ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं हुआ। जायसी की भाषा किसी समय लोक-सुलभ होते हुए भी साहित्यिकों के लिए आज दूरूह हो गयी है। किन्तु तुलसी की भाषा आज भी सुबोध है। कोष और व्याकरण के प्रति तुलसीदास के मन में जो श्रद्धा का भाव था उससे उनकी कविता का बहुत उपकार हुआ।

प्राचीन साहित्य और ज्ञान के भण्डार में से जो कुछ भी इस युग की जनता प्राप्त कर सकती है वह हिन्दी-माध्यम के द्वारा ही सम्भव है। इस दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास जी के कार्य को देखते हुए मानना पड़ता है कि 'रामचरितमानस' की रचना करके उन्होंने लोक के कल्याण के लिए महान विक्रम किया। भारतीय साहित्य की उपमा यदि त्रिविक्रम विष्णु से दी जाये तो व्यास, कालिदास और तुलसीदास उसके तीन चरण कहे जा सकते हैं। तुलसी का 'रामचरितमानस' विक्रम की दूसरी सहस्राब्दी के साहित्याकाश का खुला हुआ नेत्र है। जो उसमें दिखाई देता है, उसे ही तत्कालीन लोक की दर्शन-क्षमता या आँख कह सकते हैं।

❐❐❐

तुलसी-तुलसी हो गये

– डॉ० (श्रीमती) शशि शुक्ला

तुलसी, तुलसी हो गये कथा लिख राम की।
जय हो - जय हो - जय हो सियावर राम की।
रामायण शुभ आचरण धर्म, संस्कृति का संवर्धन करती।
कलुषित मन को नवज्योति दिखा, हृदयों का परिवर्तन करती।
बिस्मित है सारा विश्व कथा पढ़ राम की।
नर को नारायण तक पहुँचा, तुलसी ने शुभ संदेश दिया।
श्री राम नाम है सुखदायी, नित जपो यही उपदेश दिया।
हर शब्द-शब्द गाये महिमा श्री राम की।
जो राम नाम का जप करे प्रभु उसके दुखः संताप हरे।
इस निखिल सृष्टि के कण-कण में, हर रूप रंग में वास करे।
तर गयी अहिल्या ठोकर से श्रीराम की।
जय हो - जय हो - जय हो सियावर राम की।



गोस्वामी तुलसीदास तथा शेक्सपियर

— हृदय नारायण सिंह

समालोचना कला की वेदिका पर दीपक के समान है। इसके द्वारा मैथ्यू आर्नोल्ड के शब्दों में जो सबसे उत्तम जाना या कल्पित किया गया है उसका प्रचार होता है।

तुलनात्मक समालोचना का उद्देश्य एक कलाकार को दूसरे से श्रेष्ठ अथवा हीन सिद्ध करना नहीं है, वरन तुलना द्वारा, सादृश्य और असादृश्य प्रदर्शन करके कलाकारों की व्यक्तिगत विशेषताओं का प्रकाशन करना है।

हिन्दी और अंग्रेजी के अनेक कवियों में हमें आश्चर्यजनक साम्य मिलता है। स्पेन्सर और जायसी, ड्राइडेर और भारतेन्दु, टेनीसन और मैथिलीशरण गुप्त, मैथयु आर्नोल्ड और रामचन्द्र शुक्ल इत्यादि में व्यक्तित्व तथा कृतित्व शैली तथा विचार का उद्भुत सादृश्य है।

जैसे स्पेन्सर मानवतावादी थे, वैसे ही जायसी सूफी। यदि स्पेन्सर ने फेअरी क्वीन की रचना की तो जायसी ने पद्मावत की जायसी ने प्रेमाख्यान काव्य लिखा तो स्पेन्सर ने रोमांटिक महाकाव्य। भाषा, वर्णन, आदर्श, विचार सरणि सभी में दोनों कवियों की रचनाओं में एकात्मकता है।

इसी प्रकार जैसे ड्राइडेन अंग्रेजी साहित्य में आधुनिक गद्यशैली, समालोचना व्यंग्य काव्य, नाटक, निबन्ध कविता के प्रवर्तक हैं वैसे ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे भारतेन्दु अपने युग के साहित्यकारों के अग्रणी और प्रेरक थे वैसे ही ड्राइडन।

मैथ्यू आर्नोल्ड के सामान आचार्य शुक्ल भी अपने समय के सर्वश्रेष्ठ समालोचक और साहित्य सिद्धान्तकार थे। दोनों कला को 'बहुजन हिताय' मानते थे। समालोचक होने के अतिरिक्त दोनों उत्तम कवि तथा निबन्धकार थे। शैली तथा विचार दोनों में शुक्लजी तथा मैथ्यू आर्नोल्ड में व्यापक समानता मिलती है।

जैसे टेनीसन अपने युग के प्रतिनिधि कवि थे उसी प्रकार श्री मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक काल के हिन्दी के प्रतिनिधि कवि थे। जैसे टेनीसन उत्तम गीतकार तथा प्रबन्धकार थे वैसे ही गुप्त जी भी। यदि टेनीसन ब्रिटिश संस्कृति के पोषक थे तो मैथिलीशरण जी भारतीय संस्कृति के। सुबोधता दोनों के काव्य का विशेष गुण है।

इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास तथा शेक्सपियर में भी हमें दूरगामी समानता मिलती है।

तुलसी तथा शेक्सपियर दोनों अपनी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। दोनों एक ही युग में उत्पन्न हुए थे और संवत 1621 से 1673 तक समकालीन रहे। शेक्सपियर के लिए कहा गया है कि 16 अप्रैल सन् 1564 को उनका जन्म हुआ और 16 अप्रैल 1616 को देहावसान। गोस्वामी तुलसीदास के जन्म के विषय में अनेक मत हैं। मूल-गोसाईचरितकार श्री वेणीमाधव दास के अनुसार तथा घटरामायणकार श्री तुलसी साहब के अनुसार —

पन्द्रह सौ चौवन बिषै, कालिन्दी के तीर। सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी धरेउ शरीर।।

श्री शिवसिंह सेंगर ने तुलसीदास जी का जन्म सं. 1583 निर्धारित किया है।

श्री ग्रियर्सन, सुधाकर द्विवेदी, श्यामसुन्दर दास, पं. रामनरेश त्रिपाठी इत्यादि ने जन्म सं. 1589 में माना है। अधिकतर लोगों का मत सं. 1589 के ही पक्ष में है।

किवदन्ती के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास ने श्रावण शुक्ला सप्तमी को जन्म लिया और शरीर छोड़ा। यदि यह सत्य है तो शेक्सपियर के सम्बन्ध में जो बात चरितार्थ होती है वही तुलसीदास जी के विषय में भी। पर उनके कुछ प्रमाणों के आधार पर यह मान्यता बढ़ चली है —

संवत् सोरह सौ असी, असी गंग के तीर। श्रावण श्यामा तीज शनि, तुलसी तजेउ शरीर।।

जन्म तथा मृत्यृ तिथियों के विषय में चाहे जो बात सत्य हो किन्तु यह तो निर्विवाद है कि दोनों कवि प्रायः 52 वर्षो तक एक साथ दो भिन्न देशों में जीवन यापन करते रहे। गोस्वामी तुलसीदास शेक्सपियर से करीब 32 साल पहले अवतीर्ण हुए और शेक्सपियर की मृत्यु के 7 वर्ष बाद तक जीवित रहे।

दोनों कवि ऐसे युग में उत्पन्न हुए जो दोनों देशों में अत्यन्त समृद्धि तथा वैभव का युग माना जाता है। एलिजाबेथ तथा अकबर संसार के दो महान सम्राज्ञी और सम्राट माने जाते हैं। दोनों के शासनकाल में देश धनध ान्य से पूर्ण था, उत्तम राज्य व्यवस्था तथा शान्ति थी और कला की बहुमुखी उन्नति हुई। ब्रिटेन में यदि उस समय बेकन, स्पेन्सर, फिलिप सिडनी, शेक्सपियर, ड्रेक, हाकिन्स इत्यादि के सदृश अपने क्षेत्र में अपूर्व प्रतिभा रखने वाले व्यक्ति थे तो भारतवर्ष में केशवदास, सूरदास, तुलसीदास, अबुलफजल, फैजी, भगवानदास, राजा टोडरमल, राणा प्रताप के समान नररत्न थे।

शेक्सपियर तथा गोस्वामी तुलसीदास दोनों सामान्य वर्ग में उत्पन्न हुए। दोनों ने शिक्षा सन्त समागम से प्राप्त की। शेक्सपियर के बारे में कहा गया है कि वह लैटिन कुछ नहीं के बराबर और यूनानी उससे भी कम जानते थे। तुलसीदास जी ने कहा है –

कवि न होउँ नहिं चतुर प्रबीनू। सकल कला सब विद्याहीनू।।

रूढ़िगत उच्च शिक्षा न प्राप्त किये रहने के कारण दोनों की काव्य प्रतिभा तथा लोकप्रियता उस समय के पण्डितों को असह्य हो गयी। टामस ग्रीन ने कहा कि भेड़ के बच्चे की खाल में बाघ का दिल छिपा रखने वाला यह व्यक्ति (शेक्सपियर) है और विरोधियों से ऊबकर तुलसीदास को कहना पड़ा धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ' इत्यादि। दोनों सरल स्वभाव के निरभिमान व्यक्ति थे। शेक्सपियर के लिए मिल्टन ने 'स्वीट शेक्सपियर नेचर्स चाइल्ड' वाक्य का प्रयोग किया है। तुलसीदास जी की सरलता तथा निरहंकारिता तो उनके बंदौ संत असज्जन चरना'' से ही विदित हो जाती है।

इसका प्रचुर संकेत मिलता है कि शेक्सपियर तथा तुलसीदास दोनों प्रारम्भ में पत्नी में आसक्त थे, पर बाद में अपना पत्नी प्रेम उन्होंने दूसरी दिशा में लगाया। रहीम खानखाना की तुलसी विषयक उक्ति दोनों के लिए उपयुक्त है – **सुरतिय नरतिय नागतिय, सब चाहैं अस होय। गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।।**

शेक्सपियर तथा तुलसीदास दोनों स्वतंत्रचेता तथा स्वतंत्र रूप से साहित्य सृजन करने वाले कवि थे। वे स्पेन्सर अथवा केशवदास के समान दरबारी कवि नहीं थे। अपनी आत्म के प्रतिकूल उन्होंने किसी भी आश्रयदाता की प्रशंसा नहीं की।

शेक्सपियर तथा तुलसीदास दोनों की काव्य प्रतिभा समन्वयवादिनी थी। उन दोनों महाकवियों की प्रवृत्ति सारग्राहिणी थी। गोस्वामीजी ने रामचरितमानस के प्रारम्भ में ही पूर्ववर्ती ग्रंथकारों के प्रति 'नाना पुराण निगमागम' इत्यादि कह कर अपना आभार प्रगट किया है। उन्होंने योगवाशिष्ठ, अध्यात्म रामायण, महारामायण, भुशुंडि रामायण, याज्ञवल्क्य रामायण, गीता, भागवत, अनर्घराधव, प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक, रघुवंश, भारद्वाज रामायण, इत्यादि से मधु संचय करके अपने मानस का श्रृंगार किया है। शेक्सपियर ने यूनानी रोमीय, फ्रांसीसी, ऐंग्लोसैक्सन स्रोतों तथा लोक साहित्यों से कथावस्तु प्राप्त की। प्लूटार्क, अरिओस्टो, मारलो इत्यादि पूर्ववर्ती लेखकों से भाव, सूक्तियाँ एवं कहानियों और अनेक कालों में प्रचलित विचार-प्रणालियों से सुझाव प्राप्त किये और अपने नाटकों में सबको सम्मानित किया। दोनों कवियों की रचनाओं पर पूर्ववर्ती कवियों का बड़ा प्रभाव है। पं. रामचन्द्र शुक्ल ने दिखलाया है कि किस प्रकार तुलसीदास जी ने अपने से पूर्व की और समकालीन सभी प्रणालियों और पद्धतियों में रचना की। शेक्सपियर के लिए भी यह कथन सर्वथा सत्य है कि नवजागर्ति काल की सारी प्रवृत्तियों की परणति हमें उनमें मिलती है।

धार्मिक विश्वास का जहाँ तक सम्बन्ध है, दोनों महाकवियों में हम एक ही बात पाते हैं। शेक्सपियर न प्रोटेस्टेण्ट थे, और न कैथोलिक। वह धर्मानुसारी थे। मिल्टन के समान धार्मिक कट्टरता उनमें नहीं थी। सभी मतों के प्रति उदारता और जीवन के प्रति अत्यन्त उदार दृष्टिकोण शेक्सपियर की विशेषता है। गोस्वामी तुलसीदास जी से भी हम यही बात पाते हैं। यद्यपि लोगों ने गोस्वामी जी को अपनी प्रवृत्ति के अनुसार विशिष्टाद्वैतवादी, द्वैतवादी अद्वैतवादी, स्मार्त वैष्णव इत्यादि सिद्ध करने की चेष्टा की है किन्तु वे सबके प्रति उदार दृष्टिकोण रखते थे। सभी



मतों के विषय में सम्मानसूचक संकेत उनके ग्रन्थों से प्राप्त होते हैं। डाक्टर बलदेव प्रसाद मिश्र ने तुलसीदास जी के विषय में ठीक लिखा है – गीता का अनासक्तियोग, बौद्धों और जैनों का अहिंसावाद, वैष्णवों - शैवों का अनुराग वैराग्य शाक्तों का जप, शंकराचार्य का अद्वैतवाद, रामानुज की भक्ति भावना, निम्बार्क का द्वैताद्वैत भाव, मध्य की रामोपासना, बल्लभ का आरध्य बालरूप, चैतन्य का प्रेम, गोरख का संयम, कबीर आदि सन्तों का नाम महात्म्य, रामकृष्ण का समन्वयवाद ब्रह्मसमाज की ब्रह्मकृपा, आर्य समाज का आर्य संगठन और गांधीवाद की सत्य अहिंसा मूलक अरितक्यपूर्ण लोकसेवा आदि आदि सभी कुछ तो उसमें है ही साथ ही मुसलमानों का मानव बन्धुत्व और ईसाइयों का श्रद्धा कारुण्य से पूर्ण सदाचार भी उसमें क्रीड़ा कर रहे हैं।

शेक्सपीयर तथा तुलसी के काव्यों में जो समान गुण प्राप्त होता है वह है महती सरलता। आर्नोल्ड ने महान सरलता को सर्वोत्तम काव्य की कसौटी माना है। यह गम्भीर सरलता दुर्लभ है। पन्त जी के शब्दों में है, चिरगूढ़ सरलपन। दोनों कवियों की लोप्रियता ही उनके गम्भीर सरलपन का सर्वोत्तम प्रमाण हैं इस गम्भीर सरलता की दृष्टि से शेक्सपियर, तुलसीदास तथा कालिदास सवर्गीय है। शेक्सपियर गम्भीर से गम्भीर भाव को सरल शब्दों में व्यक्त करते हैं। (लाइफ इज बट ए वार्किंग शैडो)।

गोस्वामी तुलसीदास ने सीता जी की वियोग गाथा को कितने सरल तथा मार्मिक ढंग से कहलाया है। 'सीता कर अति विपति बिसाला। बिनहिं कहे भल दीनदयाला।'' यदि दूसरे कवि होते तो या तो बिरहाग्नि से सारे विश्व को जला डालते, या मुद्रिका को कंगन का पद प्रदान कर देते या विरहाश्रु से सागर उमड़ा देते, पर किस सादगी और विदग्धता से तुलसीदास ने दुःख का वर्णन किया है। इससे अधिक सरल तथा मार्मिक ढंग से विरहजनित शोक का वर्णन नहीं किया जा सकता।

दोनों कवियों ने जो रचनाएँ की हैं विशाल पैमाने पर। तुलसीदास जी का रामचरितमानस तो महाकाव्य है ही महाकाव्यों की दृष्टि से भी उसमें विशालता है। उसकी भूमिका ही कितनी वैभवपूर्ण है और उससे कम महान उसका उपसंहार नहीं है। उनकी विनय पत्रिका, गीतावली इत्यादि में न केवल विचार की विशालता वरन् वर्णन शैली तथा ग्रंथ के आयोजन की विशालता प्राप्त होती है।

शेक्सपियर के नाटक भी विशाल पैमाने (एपिक स्केल) पर लिखे गये हैं। वे तीन अंकों में समाप्त होने वाले आज कल के छोटे-छोटे नाटकों के समान नहीं हैं, वरन् 5 दीर्घ अंकों तथा 50-60 दृश्यों में समाप्त होने वाले नाटक हैं। चरित्र चित्रण कथावस्तु रसपरिपाक किसी में भी मितव्ययिता नहीं दिखलाई गयी है, वरन् मुक्तहस्त होकर रत्न लुटाये गये हैं।

गोस्वामी तुलसीदास तथा शेक्सपियर दोनों में प्रबन्ध पटुता तथा वस्तु रचना का कौशल उच्च कोटि का वर्तमान था। गोस्वामी तुलसीदास की प्रबन्ध पटुता का परिचय तो इसी से मिलता है कि मानस की कथा तीन वक्ता तीन श्रोताओं से कहते हैं और चौथे तुलसी सन्तों से। कागभुशिण्ड गरुड़ से, शिव पार्वती से और याज्ञवल्क्य भारद्वाज से। प्रबन्ध रचना की खूबी यह है कि उक्त तीन वक्ताओं तथा श्रोताओं को कवि ने कही विस्मृत नहीं किया है। कथा प्रारम्भ से अन्त तक एक सूत्र में बँधी निर्बाध गति से बहती चलती है। जहाँ विषयान्तर है वे भी कथाप्रवाह में निमज्जित हो जाते हैं शेक्सपियर के नाटकों में चार-चार, पाँच-पाँच, अप्रधान कथावस्तुएँ मिली होती हैं किन्तु सब एक दूसरे को सहायता देती, एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक ही दिशा में चलती है। शेक्सपियर के नाटकों की स्वगत वार्ताएं उनका बहुमूल्य भाग है। रामचरितमानस के भी संवाद, व्याख्याएँ, वर्णन उन स्वागत वार्ताओं के समान अनर्ध्य सामग्रियों से भरे पड़े हैं।

तुलसीदास तथा शेक्सपियर दोनों की प्रतिभा में कल्पना, राग, विचार तथा कलातत्वों का अपूर्व सामंजस्य घटित हुआ था। जिस कवि में ये चारों तत्व सन्तुलित अनुपात में पाये जाते हैं वही कवि महान् होता है। उक्त दोनों कवियों में कल्पना की उड़ान है तो भाव की गहनता और विचार प्रौढ़ता भी और इनके साथ ही कला का अपूर्व कौशल।

दोनों कवियों की रचनाओं का प्रभाव ऊँचा उठानेवाला होता है। शेक्सपियर का काव्य उपदेशात्मक बिल्कुल नहीं है। वहाँ हमें कोई स्पष्ट उपदेश नहीं दिया गया है। किन्तु शेक्सपियर के दुखांत नाटक भी निराशाजनक प्रभाव नहीं डालते। नाटकों के अन्त में एक आशा की किरण दिखलाई पड़ती है। शेक्सपियर के नाटकों के अध्ययन अनुशीलन से उदार मनोवृत्ति बनती है। व्यक्ति में (सेंस ऑफ ह्यूमर) आत्मपरिहास के भाव उत्पन्न होते हैं। यह क्षमाशील, उन्नतमना, अनासक्त, दूसरे पक्ष पर दृष्टि रखने वाला बनता है। बिना उपदेश दिये हुए भी शेक्सपियर की रचनाएँ हमें नैतिक उत्थान में सहायता देती हैं।

तुलसी के काव्य के विषय में तो कहना ही अनावश्यक है। उनकी रचनाएँ हमें मानसिक आह्लाद ही नहीं प्रदान करती, वरन् हमारे चित्त को शुद्ध, हमारे चरित्र को उन्नत और हमारे आध्यात्मिक विकास को सम्भव बनाती है।

शेक्सपियर नाटककार होने के अतिरिक्त उत्तम गीतकार भी थे। अपनी चतुर्दशपदियों द्वारा अंग्रेजी गीत साहित्य में उन्होंने उच्च स्थान प्राप्त किया है। तुलसीदास जी महाकाव्य रचयिता होने के अतिरिक्त प्रथम कोटि के गीतकार भी थे। गीतावली तथा विनयपत्रिका गीत काव्य के उत्तम उदाहरण हैं। दोनों कवियों ने अपने गीतपदों में अपने हृदय के आन्तरिक भावों को प्रगट किया है। दोनों के मुक्तकों में हमें पूर्ण तन्मयता, निष्कपटता, भाव-गम्भीरता, कल्पना की उड़ान आदि गुण प्राप्त होते हैं भाषा का तथा शैली का भावों के अनुरूप चलने का गुण दोनों कवियों की रचनाओं में हमें प्राप्त होता है। दोनों महाकवि अपने देश तथा साहित्य के लिए सर्वाधिक महत्व के हैं यदि कार्लाइल (Carlyle) शेक्सपियर के विषय में यह कह सकते थे कि भारतीय साम्राज्य रहे या नहीं, हम शेक्सपियर को त्याग नहीं सकते तो डॉ0 पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के शब्दों में "प्रताप से भी महान जातीय रक्षा का कार्य तुलसीदास ने किया है।' हिन्दू समाज को उन्होंने जैसा बनाया वैसा ही वह वर्तमान काल में है। गौतम बुद्ध के पश्चात् यदि भारत में कोई लोकनायक हुआ तो तुलसीदास जी। यह तो दोनों महाकवियों के सादृश्य की बात हुई पर उनमें वैषम्य भी बहुत है। संक्षेप में दोनों के पारस्परिक अन्तर का भी उल्लेख करके इस लेख को समाप्त किया जायेगा।

तुलसीदास तथा शेक्सपियर की प्रतिभओं में जो घोर अन्तर उत्पन्न होता है वह इस बात से कि एक ने तो नरकाव्य न लिखने का प्रण कर लिया था और दूसरे ने केवल नरकाव्य की ही रचना की। तुलसीदास जी ने केवल काशी निवासी अपने मित्र टोडरमल के सम्बन्ध में दो-चार दोहों के अतिरिक्त अन्य किसी पार्थिव राजा महाराजा के विषय में नहीं लिखा। उनका मत था –

कीन्हें प्राकृतजन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगति पछिताना।।

दूसरी ओर शेक्सपियर ने मानव-प्रकृति चित्रण को ही अपनी प्रतिभा का साध्य बनाया। सर वाल्टर रेले ने शेक्सपियर के विषय में ठीक कहा है कि उन्होंने किसी भी अन्य साहित्यिकार की अपेक्षा मानव के विषय में अधिक कहा है और श्रेष्ठतर कहा है। शेक्सपियर ने मानव-चरित्र तथा मानव-स्वभाव का सहस्रों अवस्थाओं तथा परिस्थितियों में जैसा वास्तविक चित्रण किया है वैसा कोई भी नहीं कर सका। किसी भी पात्र में, दो-एक पंक्तियों में, प्राण फूँक देना शेक्सपियर का कौशल था।

किन्तु तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में देवत्व और नरत्व का जैसा मंजुल संयोग गठित किया है वैसा कोई क्या कर सकेगा। तुलसीदास का काव्य देवत्व तथा नरत्व की पवित्र मिलन भूमि, क्रीड़ा स्थल है। श्री रामचन्द्र के विद्यारम्भ का वर्णन पढ़ते-पढ़ते जब हम इस पंक्ति पर आते हैं –

जाकी सहज स्वास स्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी।।

तो नरत्व तथा ईश्वरत्व सम्बन्धी दो प्रकार के भावों के संघर्ष से अपूर्व आनन्द प्राप्त होता हे। तुलसीदास जी की उपर्युक्त प्रकार की पंक्तियों में उत्कृष्ठ काव्य का अक्षय कोष तथा रहस्य छिपा है।

अपने स्वभाव के अनुसार शेक्सपियर ने किसी का पक्ष नहीं लिया। शेक्सपियर की प्रतिभा तथा रचना दोनों ब्राह्याभिव्यंजन प्रधान थी। शेक्सपियर का अपना मत क्या है यह जानना कठिन है एक स्थान पर वह सादगी की

प्रशंसा करेगा और दूसरे स्थान पर निन्दा। एक स्थान पर भाग्यवादी विचार प्रकट करेगा तथा दूसरे स्थान पर पौरुषवादी। शेक्सपियर ने जीवन के प्रति सैकड़ों दृष्टिकोण तथा जीवन के सैकड़ों तथा समस्याओं के हल से यत्किचित् आभासित होता है, निश्चित रूप से विदित नहीं।

इसके विपरीत तुलसीदास जी हैं तो ललकार कर अपने चरितनायक का पक्ष लेते हैं –

जाके प्रिय न राम बैदेही। तजिए ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।।

विभीषण ऐसे भ्रातृद्रोही तथा देशद्रोही को भी उन्होंने राम के नाते ही क्षम्य दिखलाया।

इन्हीं प्रवृत्तियों से सम्बद्ध दोनों महाकवियों को दो विभिन्न क्षमताएँ अथवा अक्षमताएँ भी है। तुलसीदास जी सफल नाटककार नहीं हो सकते थे और न शेक्सपियर महाकाव्य प्रणेता। नाटक रचना के लिए यह आवश्यक है कि लेखक अपने व्यक्तित्व को छिपाकर केवल पात्रों के चारित्रिक संघर्ष द्वारा कथा का विकास करे स्वतः अपना मत लेकर उसमें कूद न पड़े पर तुलसीदास जी के लिए यह सम्भव नहीं था।

शेक्सपियर में अपने व्यक्तिगत मत को छिपाकर चरित्र-चित्रण करने की क्षमता थी पर इस कारण कि नाटक कला की चारदीवारियाँ इतनी कठोर थीं कि उनके भीतर रहना लेखक के लिए आवश्यक था। यदि महाकाव्य का स्वतंत्र तथा विशाल क्षेत्र शेक्सपियर को मिला होता तो वे विचारों तथा कल्पनाओं के बाहुल्य से इतने अंक्रांत हो गए होते कि उनके लिए उसको पूर्ण करना कठिन हो जाता।

शेक्सपियर तथा तुलसीदास जी की प्रतिभाओं की एक प्रधान विभाजक रेखा यह है कि शेक्सपियर में (सेंस ऑफ ह्यूमर) था और तुलसी जी में (अरनेस्टनेस)। अंग्रेजी का (ह्यूमर) ऐसा शब्द है जिसका हिन्दी पर्याय ढूँढना कठिन है। यह वह प्रवृत्ति अथवा सामर्थ्य है जिसके द्वारा मनुष्य दूसरों पर और अपने पर भी हँस सकता है। इतना ही नहीं वह संसार और उसके कार्यों को तटस्थ दृष्टि से देख सकता है और उन पर हँस सकता है। वह मनुष्य की गम्भीरता, बड़प्पन, अनवरत प्रयत्नशीलता, बाह्यशक्ति इत्यादि को ईषद हास्य के साथ देख सकता है। वह किसी भी मत या वस्तु के दोनों पक्षों को देखकर किसी को भी अत्यधिक महत्व नहीं देता, ऐसा व्यक्ति उदार होता है और मन की प्रफुल्लता से युक्त होता है। वह किसी से घृणा या द्वेष नहीं करता। शेक्सपियर में 'सेंस ऑफ ह्ययूमर' अति मात्रा में था। कहा गया है कि शेक्सपियर का हास्य बसन्त की विद्युत् क्रीड़ा के समान है जो वस्तु को हानि नहीं पहुँचाती प्रत्युत आश्चर्यचकित, आलोकित तथा मुग्ध बनाती है।

गोस्वामी तुलसीदास में इसके विरुद्ध हमें गाम्भीर्य प्राप्त होता है। जीवन को तथा जीवन के कार्यों को गम्भीर दृष्टि से देखने वाले तुलसीदास जी थे। वे मर्यादावादी थे और उनके हास्य में भी संयत शालीनता है। तुलसीदास जी का काव्य धार्मिक अथवा आध्यात्मिक है और शेक्सपियर का सांसारिक। यह भेद दोनों की भिन्न, रुचि, भिन्न प्रतिभा तथा विभिन्न देशों में उत्पन्न होने के कारण है। दोनों संसार के वन्दनीय महाकवि हैं।

–1010 हुसेनाबाद, भारती नगर, जौनपुर

संसार में वे मनुष्य 'सत्पुरुष' हैं, जो अपने स्वार्थ को छोड़कर दूसरों की भलाई के लिए तन-मन-धन को लगा देते हैं। दूसरे प्रकार के मनुष्य 'सामान्य' कहलाते हैं जो अपने काम न बिगाड़ते हुए दूसरों की भी भलाई करते हैं। तीसरे प्रकार के मनुष्य 'राक्षस' कहलाते हैं जो अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए दूसरों के बने बनाये काम को बिगाड़ देते हैं। परन्तु जो लोग बिना किसी स्वार्थ के (अपने लाभ के) व्यर्थ ही दूसरों की हानि करते हैं, ऐसे चौथे प्रकार के मनुष्यों को किस नाम से पुकारा जाय हम नहीं जानते, आप स्वयं ही सोचें।

प्रस्तुति : डॉ० अनिल शुक्ल

युग द्रष्टा, युग सृष्टा तुलसी

– डा० गिरिजा शंकर त्रिवेदी

तुलसी!
सचमुच, भारत में तुमने नव नूतन प्राण भर दिए,
मरी जाति को पुनर्जन्म तुमने दे डाला
पाप-पंक में धँसे-फँसे ज्योतिर्मय रथ को
सबल बाहुओं द्वारा तुमने कवे! निकाला,
तुमने की स्वान्तः सुखाय ही काव्य-सर्जना
किन्तु तुम्हारें स्वान्तः का मतलब सब जग था
क्योंकि कहा तुमने ही –
'कीरति भनिति भूति भलि सोई
सुरसरि सम सब कहँ हित होई'
वही तुम्हारी वाणी की सुरसरि बहती है
अब तक जन-जीवन में,
युग के अन्तर्मन में,
और तुम्हारा 'मानस
क्या झोपड़ी, क्या भवन ,
हरवाहा , चरवाहा,
क्या पंडित , विद्धज्जन
'जाकी रही भावना जैसी'
उसको वैसा ही पाते हैं,
कये! तुम्हारी काव्य-वाटिका में सब कुछ है
लता-कुञ्ज, नवपल्लव , मधु परिमल,
अलि-गुंजन
'कंकन किंकिन नूपुर की धुनि,
'खंजन मंजु तिरछी नैननि'
सैननि की बतकहि
किंतु संयम का आँचल का सौदर्य निष्कलुष.
है सारा सौदर्य निष्कलुष
ज्यों गंगाजल
मर्यादा की खाई चहुँदिशि अनुल्लंध्य है,
क्योंकि तुम्हारा काव्य
तुम्हीं- सा रामार्पित हैं,
गान-मान हैं नहीं किसी भी प्राकृत जन का
है भी तो जन-जन का,
कण-कण का, त्रिभुवन का
और स्वयं तुम–
नयनों में दर्शन,
अधरों में कविता का रस,
भक्ति ह्दय में,
'कर्म प्रधान विश्व रचि राखा'
युगल करों में,
स्वाभिमान, संस्कृति ललाट में,
क्रान्ति स्वरों मैं
लिए समन्वय अवयव अवयव में
समुपस्थित
हे रससिद्ध कवीश्वर!
अपने यशःकाय से
निबिड़ तमस में
भारत को सत्पथ दिखलाते
और दिखाते जाओगे निरवधि भविष्य तक,
तुमने हरयुग के रावण को राम दिया है
संयम का लक्ष्मण,
पौरुष का पवनपुत्र,
धैर्य का विभीषण.
शींल-शक्ति का भरत,
नीति का अंगद,
सीता महाक्रान्ति की
'रामचरित-मानस' के आधार-अक्षर में भर
किया समर्पन
तुमको वंदन
तुमको प्रणमन
युग द्रष्टा, युग सृष्टा तुलसी
'आत्मा' के सुत
'रत्ना' के धन
तुमको बारंबार पद नमन

अध्यक्ष संस्कृत विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज देहरादून

जीवन की इसी में सार्थकता है

– डॉ गणेशदत्त सारस्वत
सम्पादक 'मानस चन्दन'

हजरत इब्राहीम जब बलख के बादशाह थे तो उन्होंने एक गुलाम खरीदा। अपनी स्वाभाविक उदारता के कारण उन्होंने उस गुलाम से पूछा- 'तेरा नाम क्या है?'

गुलाम ने उत्तर दिया – 'जिस नाम से आप मुझे पुकारें।'

बादशाह – 'तू खायेगा क्या?'

गुलाम – 'जो आप खिलाएँ।'

बादशाह – 'तुझे कपड़े कैसे पसन्द हैं?'

गुलाम – 'जो आप पहनने को दें।'

बादशाह – 'तू काम क्या करेगा?'

गुलाम – 'जो आप काम कराएँ।'

'आखिर तू चाहता क्या है?' बादशाह ने हैरान होकर पूछा।

'हजूर गुलाम की अपनी चाह क्या?' गुलाम शान्तिपूर्वक खड़ा था।

बादशाह गद्दी से उठे और बोले – 'तुम मेरे उस्ताद हो। तुमने मुझे सिखाया कि परमात्मा के सेवक को कैसा होना चाहिए' (परमार्थ, बोधकथांक, जनवरी 1981)। वास्तव में प्रभु का श्रेष्ठ सेवक वही है, जिसने अपनी सम्पूर्ण इच्छाओं को प्रभु की इच्छाओं में लीन कर दिया है। श्रीमद्भागवत (11/14/14) में भगवान श्रीकृष्ण उद्धव से कहते है। – न पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्। न योग सिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्।

अर्थात् जिन भक्तों ने मेरे प्रति अपना आत्मसमर्पण कर दिया है, वे मुझे छोड़कर ब्रह्मपद, इन्द्रपद, चक्रवर्तीराज्य, पाताल का साम्राज्य, योग की सिद्धियाँ, यहाँ तक कि अपुनरावर्ती (सायुज्य मोक्ष) भी नहीं चाहते। वे तो भगवान की लीला में सम्मिलित होना चाहते हैं। ऐसे भक्त इस लोक की लीला के बाद परमधाम में भी भगवान की सेवा में संलग्न देखे जाते हैं। अर्जुन इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। महाराज युधिष्ठिर दिव्य देह धारण कर जब परमधाम में भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन करते हैं तो देखते हैं कि अर्जुन उनकी सेवा कर रहे थे – 'उपास्यमानं वीरेण फाल्गुनेन 'सुवर्चसा, तथा स्वरूपं कौन्तेयो ददर्श मधुसूदनम्' (महा. स्वर्गा. 4/2-4)

वास्तव में, भगवान के कृपा-पात्र वे ही हैं, जो अपनी सारी शक्ति समर्पण कर केवल उनकी कृपा पर ही पूर्ण भरोसा करते हैं ऐसे कृपा पात्र पर कृपा करने के लिए कृपालु विवश हो जाते हैं। इसीलिए इस ऋचा में कहा गया है – 'भद्रं हि शर्म त्रिवरुथमस्ति ते' - तीनों शरणों प्रकृति जीवात्मा और परमात्मा – में प्रभु की शरण ही सचमुच सर्वश्रेष्ठ है। शरणागत विभीषण को जब भगवान राम लंकापति के रूप में अत्यन्त संकोच के साथ राज्याभिषेक करते हैं जो संपति सिव रावनहिं दीन्हि दिये दस माथ, सोइ संपदा विभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ (सुन्दरकाण्ड, दोहा 49 ख) तब 'धीगिरिधररामायण के सुग्रीव उनसे पूछते हैं – 'हे प्रभो, यदि इस समय रावण सीता को लेकर आपकी शरण में आ जाए तो आप उसे क्या प्रदान करेंगे? उत्तर में वे कहते हैं कि मैं अपनी अयोध्या समस्त वैभव और राज्य के साथ प्रदान कर दूँगा। वह राज्य करेगा और मैं वन में जाकर तपस्या करुँगा। किन्तु, विभीषण को लंका देने की बात कभी मिथ्या नहीं होगी –

जो रावण आवशे
शरणागत करी हेत,

त्यारे मारी अयोध्या आपीश एने,
वैभव राज समेत।
हुँ करीश तप वनमाँ जाइ,
राज करशे,
रावण राइ,
पण विभीषणनो जे लंका आपी
ते मिथ्या नव थाय। (सुन्दरकाण्ड, अध्याय 20)

यह शरणागति जिस श्रेष्ठ भक्ति का साधन है, वह तीनों सत्यों में श्रेष्ठ है। भक्तराज नारद का यह कथन इसी सन्दर्भ को आत्मसात् किए हुए है – 'त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी।' तुलसी के राम कहते हैं कि जो अनन्य भाव से मेरी शरण में आ जाता है, उसकी मैं उसी प्रकार से रक्षा करता हूँ 'जिमि बालक राखै महतारी' (अरण्यकाण्ड, 43/5) उनकी वत्सलता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा कि वे दर्पण में अपना मुख देखकर अपनी वक्र भ्रू को, जो सौभाग्यशाली होने का लोकसिद्ध गुण है, इसलिए दोष देते हैं कि इससे तुलसी सरीखे शठ सेवकों को कहीं वक्र भ्रू में क्रोध न दिखाई पड़ने लगे। 'मुकुर निरखि मुख राम भ्रू, गनत गुनहिं दै दोष, तुलसी से सठ सेवकन्हि लखि जनि परहिं सरोष (दोहावली, 187)।'

गीता में भगवान कृष्ण का भी यही उद्घोष है कि जो अनन्य भक्त मेरा चिन्तन करते हुए उपासना करते हैं, उनका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ –

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपास्ते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। (9/22)

इसीलिए तुलसी कहते हैं कि राम नाम की ही कृपा से पैर पसार कर (निश्चिन्त होकर) सोता हूँ –

सब अँग दीन, सब साधन -बिहीन, मन-- बचन मलीन, हीन कुल -करतूति हौं।
बुधि-बल-हीन, भाव-भगति-बिहीन, हीन गुन ग्यानहीन, हीन भाग हूँ बिभूति हौं।
तुलसी गरीब की गई बहोर राम नामु जाहि जपि जीह रामहू को बैठो धूति हौं।
प्रीति राम-नाम सों, प्रतीति राम नाम की प्रसाद राम नाम के पसारि पायँ सूतिहौं। – कवितावली, छन्द 68

भगवान के निरन्तर चिन्तन में दो बातें सहायक हैं – भगवान के नाम का जप तथा सत्संग। गुरुनानक कहते हैं – 'जिस घटि सिमरनु राम को सो नर मुकता जानु, तिहि नर हरि अंतरु नहीं, नानक साची मानु' (सिलोक 43) उपास्य और उपासक दोनों वहाँ एक रूप हो जाते हैं। अन्यत्र वे लिखते हैं कि जिस प्रकार कुत्ता अपने स्वामी का घर कभी नहीं छोड़ता उसी प्रकार हरि का भजन एक मन तथा एक चित्त होकर करना चाहिए – 'सुआमी को गृहु जिउ सदा, सुआन तजत नहीं नित, नानक इति बिधि हरि भजउ, इक मन हुइ इकि चित (श्लोक 45)

तुलसी तो राम-नाम को एक ऐसा मणिदीपक मानते है। जिसको 'जीह-देहरी-द्वार पर रखने पर अन्तर बाहर दोनों आलोकित हो उठते हैं – **'रामनाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार तुलसी भीतर बाहेरहु जौं चाहसि उजियार।**

नाम नामी से बड़ा है। नाम में भी प्रभु की प्रभुता समायी हुई है। इसीलिए वह समग्र विश्व का कल्याण करने वाला है – 'अहं संहरदखिलं सकृदुदयायैव सकललोकस्य तरणिरिव तिमिरजलधिं जयति जगन्मंगलं हरेर्नाम (भगवन्नामकौमुदी) अर्थात् सूर्य के समान एक बार उदित होते ही जो अन्धकार के सदृश फैले संसार के अपार पारावार को नष्ट कर देता है, वह श्रीभगवन्नाम सर्वोत्कर्षशाली है। जिसने नाम को धारण किया, नामी उसका बन्दी हो गया।

पंचशिखी सा रहा तप जो तम तोम का दुर्ग हिल रहा है।
अन्तर का रस पर्वतराज सा, आर्तजनों को पिला रहा है।
सन्त ही राग-विराग सँदीपिनि -ज्ञान से जीव जिला रहा है।

भक्ति परा का सरोज धरा पर, सूर्य समान खिला रहा है।

चित्त अचंचल है जिसका, सत-चिन्तन में रहता रत है।
पादप-सा उपकारी महा निधि-सिद्धियों की रखता पत है।
रामानुरागी विरागी अकाम 'विराग सँदीपिनि' का मत है।
सन्त-स्वरूप त्रिकाल-नियन्तक, वेदत्रयी निगमागत है।

यहाँ 'विराग सँदीपिनि' से तात्पर्य तुलसी की 'वैराग्य संदीपिनि' से है।

वास्तव में सत्संग का सुख अनिर्वचनीय है। स्वर्ग तथा अपवर्ग का सुख उसके सम्मुख कुछ भी नहीं है। 'मानस' की लंकिनी का कथन है 'तात स्वर्ग अपबर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग, तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग' (सुन्दरकाण्ड दोहा 4) वह एक ऐसा देवदारु वृक्ष है, जो घोर से घोर मानसिक व्यथा को दूर करने की सामर्थ्य रखता है (कहते हैं कि देवदारु में ऐसी रोगनाशक शक्ति है कि उसकी छाया और हवा में तपेदिक जैसे भयंकर रोगों में भी लाभ पहुँचाता है।) कबीर कहते हैं – 'कबिरा संगत साधु की, हरै जगत की ब्याधि।'' तुलसी की वाणी है – ''एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध, तुलसी संगत साधु की, कटै कोटि अपराध। ''इसीलिए 'संगति साधु की नितप्रति कीजै जाय, दुरगति दूर बहावसी, देसी सुगति बताय।'

अन्त में, मात्र इतना ही निवेदन है –

'पंथ-कुपथ पै दौड़ रहे मन का यदि अश्व न मोड़ा गया।
सप्तशती-तट-जाह्नवी पै, घट पाप नहीं यदि फोड़ा गया।
शान्ति-समृद्धि की सिद्धि नहीं, यदि मोह का मोह न छोड़ा गया।
राम-कृपा मिलने की नहीं, तुलसी से न जो प्रण जोड़ा गया।

हम तुलसी के हो जाएँ, तुलसी हमारे हो जाएँ उनका 'मानस' केवल पाठ का ही नहीं, आचरण का भी विषय बन जाए, जीवन की इसी में सार्थकता है। मंगलमय प्रभु हमें वह सामर्थ्य दे जिससे कि यह अखण्ड विश्वास हो जाए कि –

जीवन व्यर्थ हुआ उसका, जिसने लिया राम का नाम नहीं।
ध्यान में लीन हुआ जो नहीं, किया 'सप्तशती' को प्रणाम नहीं।
सम्भव स्वाद न दिव्य उसे, रसना में रसे रस-धाम नहीं।
है पशु मानव-आकृति में, तुलसी प्रभु का जो गुलाम नहीं।

❑❑❑

रामचरित्र को लेकर रामलीलाओं और लोकनाटक का निरन्तर आज भी अभिनय इस बात का प्रमाण है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य में राम का चरित्र सदा समादरणीय रहा है और वह हमारी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक अस्मिता का प्रतीक है।

प्रस्तुति : महेन्द्र नाथ शुक्ल — **डॉ0 भोला शंकर व्यास**

आद्याशक्ति है सीता

– योगेन्द्र शर्मा 'अरुण'

विश्व संस्कृति के आधार मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम चन्द्र एवं नारीत्व की आधारशिला सीता की आदर्श से अभिमंडित चरितगाथा युग युगांतरों से इस धरती की धड़कन बन कर प्रेरणा का अमृतमय अक्षय स्रोत बनी रही है यह एक निर्विवाद सत्य है। भारतीय दर्शन की 'अवतारवाद' की अनूठी चिन्तन धारा में मर्यादा पुरुष 'राम' तत्वतः 'परब्रह्म' का अवतार है तो 'सीता' मूलतः परब्रह्म की शाश्वत धर्मा 'आद्याशक्ति' ही है। वस्तुतः इसी व्यापक दर्शन चेतना के कारण 'राम-सीता' भारतीय संस्कृति में 'ब्रह्म' तथा उनकी 'परमशक्ति' के रूप में अवतरित हुए हैं। ब्रह्म राम तथा शक्ति सीता का यह आविर्भाव 'सत्यं शिवं, सुन्दरम्' की प्राण प्रतिष्ठा के लिए ही होता है, यही 'मानस' में कहा गया है –

"जब-जब होय धर्म कै हानी। बाढ़इ असुर महा अभिमानी।।
तब-तब धरि प्रभु मनुज सरीरा। हरहिं सकल भव सज्जन पीरा।।"

विश्व साहित्य को 'रामचरितमानस' जैसी अमृत कृति देने वाले लोक नायक महाकवि तुलसीदास ने तो राम को 'पूर्ण ब्रह्म' के रूप में प्रतिष्ठित करके उनके आदर्श चरित्र में 'शील' को आधार रख कर 'शक्ति' एवं 'सौन्दर्य' का अनुपम संगम कराया है।

"दिव्य है राम और सीता"

मर्यादा तथा आदर्श के चिरन्तन प्रतीक 'राम' तथा शक्ति रूपा सीता के चरित्र सांसारिक आदर्शों की स्थापना के प्रतीक मात्र नहीं है। बल्कि भारतीय दर्शन में प्रतिष्ठित 'सच्चिदानंद' की महत्वपूर्ण अवधारणा के प्रतीक भी हैं। जब महाकवि तुलसीदास 'रामचरितमानस' में अपार श्रद्धा के साथ कहते हैं –

"सिया राम मय सब जग जानी। करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।"

तो तत्व रूप में वे ब्रह्म राम तथा आद्याशक्ति सीता को इस जगत में कण-कण, अणु-परमाणु आदि में विद्यमान मानते हैं।

महाकवि तुलसी की यह व्यापक दृष्टि एक ओर जहाँ सभी धर्मो, जातियों, भाषाओं तथा देशों की सीमाओं को लांघ कर विश्व एकता के सर्वोच्च आदर्श को स्थापित कराती है वहीं 'राम'. तथा 'सीता' के दिव्यत्व की उद्घोषक भी बन गई है।

मर्यादा पोषक राम का चरित्र दिव्य है। यही संकेत स्पष्ट रूप से आदि महाकवि महर्षि वाल्मीकि प्रणीत 'रामायण' से भी मिलता है। सृष्टिपालक भगवान विष्णु से 'राम' के अभिन्नत्व को स्वीकार करते हुए आदि कवि वाल्मीकि ने 'युद्धकाण्ड' में कहा है –

"अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मधेचान्ते च राघव, लोकानां त्वं परोधर्मोविष्वक्सेनश्चतुर्भुजः।।"

अर्थात् 'हे राघव! आप ब्रह्म हैं। आप ही सृष्टि के आदि, मध्य तथा अंत में सत्य रूप 'अक्षर' हैं। आप ही समस्त लोकों में परम धर्म है और आप ही चतुर्भुज विष्वक्सेन विष्णु हैं।

भारतीय दर्शन में 'राम' तथा 'सीता' के नामों की बहुविध व्याख्याएं की गई हैं। दर्शन साधना तथा धर्म के विशिष्ट तत्वदर्शियों ने राम को 'परमेश्वर' मान कर इन दोनों नामों की जो गूढ़ व्याख्याएं दी हैं उनसे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि भारतीय चिन्तन का मूलाधार शाश्वत मानव कल्याण रहा है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम को जहाँ आदिकवि 'अक्षर ब्रह्मं सत्यं' कह कर सृष्टि का मूल घोषित करते हैं, वहीं ब्रह्मवैवर्त पुराण विष्णु के अवतार श्री रामचन्द्र के 'राम' को स्पष्टतः 'परमात्मा' का वाचक स्वीकार करता है –

''रा' शब्दों विश्ववचनो, 'म' श्वापीश्वर वाचकः । विश्वानामीश्वरों योहि, तेन रामः प्रकीर्तितः । ।'

उक्त श्लोक में प्रयुक्त 'राम' शब्द का 'रा' पूर्णत्व का प्रतीक है तो 'म' विशेष ईश्वरत्व का व्यंजक है । समस्त का ईश्वर होने के कारण 'राम' का ही अर्थ 'परमात्मा' है । इस प्रकार 'राम' के विराटत्व की यह अवधारणा हमारे चिन्तन को विस्तार देने का मूल कारण बनी है ।

'राम' को भारतीय धर्म साधना में 'निराकार' तथा 'साकार' रूपों में ब्रह्म का ही रूप माना गया है । जब इसी राम शब्द को निराकार ब्रह्म के रूप में लिया जाता है, यह 'ओउम्' का वाचक हो जाता है । वैयाकरणों तथा दर्शनाचार्यों की यही मान्यता है कि 'राम' शब्द में आने वाली 'आ' तथा 'अ' ध्वनियाँ मूलतः 'र' तथा 'म' व्यंजनों के सम्यक् उच्चारण के लिए ही हैं । 'मांडूक्य उपनिषद' में एक प्रमाणिक सूत्र उपलब्ध है – ''ओमित्वेतच्क्षरम्'' जिससे व्याकरण की उक्त धारणा तो संपुष्ट होती ही है, साथ ही 'राम' शब्द की 'ओम' से अभिन्नता भी सिद्ध हो जाती है ।

'राम' के नाम में आए दो वर्णो की इसी महत्ता में 'रामचरितमानस' के रचयिता महाकवि तुलसीदास ने भी स्वीकृत दी है –

''एक छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ । तुलसी रघुवर नाम के बरन बिराजत दोउ । ।''

ये ही ब्रह्म राम जब निराकर 'ओम' से साकार रूप धारण करते हैं तो योगमाया 'सीता' तथा शेष रूप लक्ष्मण के साथ अवतरित होते हैं, यही 'अध्यात्म रामायण' से संपुष्ट होता है । 'अध्यात्म रामायण' मर्यादा पुरुषोत्तम राम के अवतार को महादेव 'शिव' का अवतार घोषित करती है और शेष अवतारों से बिल्कुल अलग बताती है । इस संबंध में एक श्लोक के अनुसार 'विष्णु के अनेक अवतार हुए हैं और उन सभी में विष्णु की लीलाओं के अनुरूप ही लीला की गई, लेकिन शिवस्वरूप ज्ञानमय यह रामावतार वैसे सहस्र अवतारों के समान है ।' महाकवि तुलसी ने तो 'राम नाम' की महत्ता 'मानस' में निरुपित करके उन्हें चराचर में व्याप्त माना है ।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम की अर्धांगिनी 'सीता' मूलतः ब्रह्म की आद्याशक्ति ही है । सीता की सृष्टि के 'सृजन, पोषण तथा संहार की सूत्रधारिणी' स्वीकार करते हुए 'अध्यात्म रामायण' में कहा गया है –

''एषा सीता हरेर्माया सृष्टि स्थियन्तकारिणी । सीता साक्षात् जगद्धेतुश्चिच्छक्तिर्जगदात्यिका । ।''

अर्थात् विश्व की सृष्टि स्थिति तथा अंत की सूत्रधारिणी आद्याशक्ति साक्षात् माया सीता है । यही सीता जगत का कारण और चेतना, शक्ति तथा जगत का रूप है ।'

महाकवि तुलसी ने भी 'मानस' के 'बालकाण्ड' में सीता के 'शक्ति रूप' की वन्दना श्रद्धापूर्वक की है –

''उद्भव स्थिति संहारकारिणीं कलेश हारिणीम् । सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभम् । ।''

भारतीय धर्म साधना तथा भाषा शास्त्र में 'सीता' शब्द की भी दार्शनिक व्याख्या की गई है । सीता शब्द के 4 वर्णो ''स्+ई+त्+आ'' मैं भी 'राम' की ही भाँति 2 स्वर तथा 2 व्यंजन ध्वनियाँ हैं, जिनकी व्याख्या इस प्रकार की गई है – 'स' का अर्थ है 'सत्य एवं अमृत की प्राप्ति' तथा 'ई' का अर्थ है 'माया' । 'त' तथा 'आ' का अर्थ है 'महालक्ष्मी' और 'विराट पुरुष' इस प्रकार 'सीतोपनिषद'' के अनुसार सीता मूलतः ''सत्यामृत दिलाने वाली महाशक्ति'' है ।

निःसंदेह ब्रह्म राम तथा शक्ति-सीता सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है । तब फिर धर्मस्थलों में अंतर कैसा? फिर आदमी-आदमी के बीच घृणा और विद्वेष क्यों? आइए अन्त में हम महाकवि जयशंकर प्रसाद के शब्दों का मर्म समझें और सबको समझाएं –

''मस्जिद, पगोड़ा, गिरजा किसको बनाया तूने । सब भक्त-भावना के, छोटे-बड़े नमूने । ।
सुंदर वितान कैसा, आकाश भी तना है । उसका अनन्त मंदिर, यह विश्व ही बना है । ।''

प्राचार्य, उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत – 262 001



तिमिर भगेगा इस धरती से

– डॉ0 नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम'
उपाध्यक्ष, तुलसी मानस संस्थान

चारों ओर अंधेरा छाया जीवन बहुत उदास है,
तुलसी! तेरे राम राज्य का कोसों दूर उजास है।
रोटी, कपड़ा और मकान को तरस रहे भाई-भाई,
कहाँ गये वे वैष्णव-जन जो अपनाते थे पीर पराई,
आपा-धापी यहाँ वहाँ है स्वार्थों का अम्बार लगा है,
इतनी दूरी प्राण-प्राण में कोई अपना कहाँ सगा है?
छद्म और वैषम्य यहाँ पर सता रहे सब रिश्तों को,
अपने घर में भ्रातृ प्रेम का यह विचित्र उपहास है।।
मारकाट है धर्म-धर्म पर जातपांत पर बँटवारा,
सन्त हृदय है व्यथित निराश्रित-आँसू की बहती धारा
असुरों का नंगा ताण्डव है, नफरत का बाजार गरम है,
लूटो, खाओ, छीनों, झपटो, इंसा का बन गया धरम है,
इसे गिराओ, उसे मिटाओ लेकिन अपना काम बनाओ,
आज सफलता का यह अपना भरम भरा अहसास है।।
राम राज्य का यही स्वप्न क्या देख रहे थे तुम तुलसी?
इसी चित्र को देख, व्यथित हो साँस-साँस लगती झुलसी,
नैतिकता की अर्थी हर क्षण आज उठ रही आँगन में,
और पालकी अनाचार की उतर रही जन-जीवन में,
भ्रष्टाचरण-दशानन के घर बन्दी सदाचार की सीता
है मजबूरी आज सत्य की जो असत्य का दास है।।
शिक्षा, संस्कृति और धर्म को मार गया जैसे लकवा
सत्याचारी भयाक्रान्त हैं दुर्दिन ने दे डाला फतवा
जंगल सी अब तो लगती है इंसा की हरियाली बस्ती
सूख गया जीवन रस सारा नहीं रही -मौजों की मस्ती,
साल रही सब ओर रिक्तता, है मायूस युवाओं का मन,
बेकारी पैने दाँतों से कुतर रही हर आस है।।
कब तक और चलेगा कविवर! दुष्कृत्यों से भरा सिलसिला,
कब तक करे प्रतीक्षा प्रभु की पड़ी-पड़ी पाषाण-शिला,
कितनी घड़ियाँ इन्तजार की और सहे रघुवीर-प्रिया?
कब होगा उद्धार देवि का जिसने जीवन होम किया?
सन्तप्रवर! फिर यहाँ बुलाओ रवि सम दीपित राम को
तिमिर भगेगा इस धरती से हमको यह विश्वास है।।

❑❑❑

तुलसी की दृष्टि में मानव शरीर की सार्थकता

– डॉ० रामाप्रसाद मिश्र

मानव जीवन का निर्माण आत्मा और शरीर के सम्मिलन से होता है। आत्मा चेतन, अमल, आनन्दमय एवं शाश्वत होती है तथा वह परमात्मा का अंश है। शरीर की रचना पंच तत्वों (क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर) के समन्वय से होती है। आत्मा अलौकिक-अपार्थिव है; जबकि शरीर लौकिक व पार्थिव है। आत्मा चेतना से सम्पृक्त होने के कारण अजस्र आनन्द का उत्स है; परन्तु शरीर पंचतत्त्वों से निर्मित होने के कारण जड़ात्मक है। उन पंच तत्त्वों के कृत्य जड़ता का पोषण करते हैं।

समस्त प्राणियों में मानव-शरीर सर्वोपरि है। इसके समान और कोई देह नहीं होती। यह नरक, स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी है तथा कल्याणकारी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की प्रदायिका है। ऐसी देह को पाकर जो हरि का भजन नहीं करते और नीचातिनीच विषयों में अनुरक्त रहते हैं वे पारसमणि का तिरस्कार कर बदले में काँच के टुकड़े ले लेते हैं।

काँच किरिच बदले ते लेहीं। कर ते डारि परस मन देहीं।।

मानव शरीर पाना बड़े सौभाग्य का प्रतीक है। यह शरीर देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। यह साधन का धाम तथा मोक्ष का दरवाजा है। इस शरीर को पाकर भी जो अपने लोकोत्तर जीवन को नहीं सुधारते वे परलोक में दुख पाते हैं, पश्चाताप करते हैं तथा आत्मदोष का बोध न करते हुए काल, कर्म और ईश्वर पर मिथ्या दोषारोपण करते हैं। इस शरीर की प्राप्ति का फल विषय-भोग नहीं है। विषय-वासना में संलिप्त रहने वाले मानव अमृत से वंचित होकर गरल को ग्रहण कर लेते हैं। मानव शरीर संवेदनशील ईश्वर की एक अनुपम देन है। यह शरीर भव संतरण के लिए एक अनूठी नाव है। इस अनुपम साधन को पाकर जो भव सागर को पार करने में असमर्थ हो जाते हैं वे कृतघ्न, बुद्धिरहित और आत्महन्ता सिद्ध होते हैं। ऐसे शरीर को पाकर भी जो आसुरीवृत्तियों को अपनाकर परदारापहरण करते हैं, दूसरों से द्रोह करते हैं, परधन एवं परनिन्दा में संलग्न हो जाते हैं वे मनुष्य के शरीर में राक्षस बन जाते हैं। मनुष्य शरीर धारण कर जो पर पीड़क बन जाते हैं, उन्हें सांसारिक यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। यह एक मानव शरीर का अपमान है जो ज्ञान और गुणवत्ता से अनुप्राणित है। शरीर की सार्थकता हरिभक्ति में निहित है। रुग्ण शरीर के लिए तो भोग लिप्तता सर्वथा अवर्णनीय है। रघुनाथ के अभाव में सब कुछ उसी तरह व्यर्थ है, जिस प्रकार जीवन के बिना शरीर का कोई महत्व नहीं है।

शरीर के बाद हृदय का महत्व अवेक्षणीय है। हृदय को निर्मल और निर्विकार होना चाहिए। हृदय को रामत्व एवं पुनीतता से मुक्त करने के लिए समस्त विकारों का परित्याग अपेक्षित है। जिसके हृदय में काम, क्रोध, मद, मान, मोह, लोभ, क्षोभ, राग, द्रोह, कपट, दंभ, माया आदि नहीं होते उसके हृदय में ही रामत्व की विद्यमानता संभव है। वही व्यक्ति सहृदय कहलाता है, जो पर सम्पत्ति को देखकर पुलकित एवं परदुख करुणार्द्र होता है। ऐसा व्यक्ति सर्वस्व त्यागकर भगवान को हृदयंगम करता है तथा मनसावाचा-कर्मणा ईश्वरनिष्ठ होता है। रामानुराग ऐसा जल है जिसके द्वारा अन्तर्हृदय के कालुष्यों का प्रक्षालन होता है। जो राम के यश रूपी जल से मानस को नहीं धोता, वह कायर एवं कलियुग के द्वारा प्रवंचित होता है। जिसका हृदय हरिभक्ति को स्वीकार नहीं करता वह जीवित अवस्था में भी शव के समान है।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में यत्र-तत्र ऐसे विचार व्यक्त किये हैं जिनसे ज्ञात होता है कि शारीरिक अंगों की क्या उपयोगिता होनी चाहिए? या इन अंगों की सार्थकता किन कृत्यों के सम्पादन पर निर्भर है? कर्ण शरीर का एक महत्वपूर्ण अंग है। तुलसी के मतानुसार इसका उपयोग हरिकथा के श्रवण में होना चाहिए। जो ऐसा नहीं करता उसका कर्ण वाल्मीक के तुल्य है।1 कर्ण को तो सागर के तुल्य होना चाहिए। जिस प्रकार सरिताओं के

अकूत जल का पाकर भी सागर परिपूर्ण नहीं होता उसी प्रकार भगवान की कथा को सुनने के बाद भी कथा श्रवण की लालसा बनी रहनी चाहिए। **जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभगसरि नाना।।**

नेत्र का कृत्य चातक की भाँति होना चाहिए। जिस प्रकार चातक के नेत्र सरिता सिन्धु और सरोवर के जल की अवहेलना करते हुए एकमात्र जलधर के दर्शन के अभिलाषी होते हैं उसी प्रकार मनुष्यों को भी चाहिए कि वे अपने नेत्रों से भगवान के लावण्य को देखकर सुखानुभूति करे। राम लक्ष्मण सीता के सौन्दर्य दर्शन को ही अपने नेत्रों का अभीसिप्त फल मानकर हर्ष विह्वल होना चाहिए। इसके अतिरिक्त नेत्र की सार्थकता संतदर्शन पर भी अवलम्बित है। यदि कोई ऐसा नहीं करता तो उसके नेत्र मयूरपंख की भाँति व्यर्थ हो जाते हैं।

जिस प्रकार मानसरोवर में हंसिनी मोतियों को चुगती रहती है; उसी प्रकार जिह्वा की सार्थकता इसी में है कि वह राम के यशस्कर गुणों का चयन करें। राम के गुणसमूह का गान न करने वाली जिह्वा दादुर की जिह्वा की भाँति निरर्थक मानी जाती है। जिह्वा से संत, शंभु और विष्णु के लिए सम्मानसूचक शब्द निःसृत होने चाहिए। जो ऐसा नहीं करता या जो जिह्वा इनकी निंदा करती है उसे काट देने में कोई हर्ज नहीं है। क्योंकि सज्जनों एवं देवों का स्तवन ही जिह्वा को सार्थक बनाता है। समस्त कर्मो के बीच रामभजन को प्राथमिकता देने से ही मानवीय काया को सफलता मिलती है। जिह्वा से निकलने वाली वाणी में सत्यता और प्रियता होनी चाहिए। जो अपनी जिह्वा से आदरपूर्वक हरि का स्मरण करते हैं वे संसार-सागर को गोपद की भाँति सरलतापूर्वक पार करने में समर्थ होते हैं।

विनयशीलता मनुष्य के आचरण को सुशोभित करती है। वे शीष धन्य हैं जो देव, गुरु और द्विज के समक्ष विनम्रता के साथ प्रेमपूर्वक नत हो जाते हैं। जो ऐसा नहीं करता उसका शीष कड़वी तूंबी के तुल्य व्यर्थ है। हाथ मनुष्य के शरीर का एक प्रमुख अंग है। करतल को रामकथा से उपमित करते हुए तुलसी ने यह कहा है कि इससे संशय रूप पक्षी उड़ जाते हैं। जो चरण राम के तीर्थ स्थलों की ओर अग्रसर होते हैं; वे धन्य हैं। वह नासिका भी प्रशंसनीय है जो प्रभु के पवित्र और सुगन्धित प्रसाद को नित्य आदर के साथ सूँघती है। वह मुख साधुवाद का पात्र है जो प्रभु को अर्पित किये हुए भोजन को ग्रहण करता है। मुख को मुखिया के उपमान के रूप में प्रस्तुत करते हुए तुलसी ने यह अभिमत व्यक्त किया है कि उसका बड़प्पन इसी में है कि वह समस्त कायिक अंगों के पोषण की जिम्मेदारी का सविवेक निर्वाह करे।

शरीर, हृदय, श्रवण, नेत्र, जिह्वा, नासिका, मुख, सिर, हाथ, पैर आदि की उपयोगिता के सम्बन्ध में तुलसी के विचारों का अनुशीलन करने के उपरान्त वह निर्भ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि वे भक्ति, मानवता एवं नैतिकता के कायल थे। आहार, निद्रा, भय, मैथुन - ये चार ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो सभी प्राणियों में पाई जाती हैं। मनुष्य को मानवेतर प्राणियों की भाँति आचरण नहीं करना चाहिए। वह एक विवेकशील और प्राज्ञ प्राणी है। फलतः उसे अपनी एक अलग पहचान बनानी चाहिए। शिश्नोदर परायणता मनुष्यता के लिए एक कलंक है जिससे निजात पाने में ही मनुष्य का कल्याण संभव है। जिन्हें यमपुर का भय नहीं होता है वे ही वासना और आहार की पूर्ति में संलग्न रहते हैं।

किसी की प्रशंसा सुनकर दुखी होना, किसी की विपत्ति पर सुखानुभव करना, स्वार्थ, लोभ, काम और लम्पटता के वशीभूत होना, माता पिता, गुरु, ब्राह्मण आदि की अवज्ञा करना, सत्संग और हरिकथा का बहिष्कार करना आदि ऐसे कुकृत्य हैं जिनके कारण मनुष्य पशु बन जाता है और हृदय की पवित्रता को नष्ट करने के साथ अंगों का दुरुपयोग करने लगता है।

मन, मस्तिष्क और मानस में उत्पन्न होने वाले भाव और विचार आचरण को संचालित करते हैं। यदि अन्तर्प्रदेश के भावों और विचारों में कल्मषता होगी तो बाह्य अंगों के कार्य भी उसी के अनुरूप निकृष्ट होंगे। तुलसी का संदेश यही है कि अंगों को श्रेष्ठ कर्तव्य शक्ति प्रदान करने के लिए हृदय और चेतना का परिष्कार नितान्त आवश्यक है। अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह भक्ति और सद्भाव को आत्मसात करते हुए अपने अन्तराल को पावन और अनाविल बनावे और तद्नुसार अपने विभिन्न अंगों की गतिविधियों को सौष्ठव प्रदान करे। तुलसी का यह संदेश प्रसांगिक है क्योंकि उनके विचारों का अनुगमन कर अंगों का सही, मर्यादित और शालीन उपयोग किया जा सकता है और समाज में सृजनात्मक प्रभाव का संचार किया जा सकता है।

नयापारा, शीतला मंदिर के पीछे, भाटापारा, रायपुर (म.प्र.)



तुलसी के स्त्री-पात्र

– डॉ0 के0 बनजा

आज स्त्री विमोचन का नारा सर्वत्र गूँज रहा है। भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करते समय समाज तथा साहित्य में नारी का स्थान क्या था, यह स्पष्ट होता है। भारत में वैदिक और लौकिक संस्कृत साहित्य में स्त्री को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। साहित्य में स्त्री को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। शिव के अर्धनारीश्वर रूप और मनुस्मृति से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध अविच्छेध है। बृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार – "आत्मैवदूमग्र आज्ञोतुरुष विधः। सोऽनुवीक्ष्य नाऽन्यदात्मनेऽपऽयत्।....... स वै नैव रेम तस्मादेकाकी न रमते. स द्वितीयमैच्छात्।..........से इनमेतात्मानद्वेधाऽपातयत्, अर्थात आरंभ में पुरुषाकार आत्मा मात्र थी। वह अकेले रमण नहीं कर सकती। उस पुरुष ने साथी को चाहा। इसी आत्मा को दो रूपों में परिवर्तित किया गया। वे पति पत्नी बन गये। त्रिमूर्तियाँ भी सपत्नीक हैं।

वैदिक युग में कई स्त्रियाँ वैदिक मंत्रों की ऋषि हैं। हमारी संस्कृति में कई महिलारत्न उपलब्ध हैं यथा संध्या, वाक्, सूर्या, अपाला, अदिति, अरुन्धती, ममता, सावित्री, शैव्या, मदालसा, दमयन्ती, सुकन्या, शकुन्तला, गान्धारी, माद्री आदि। इसका तात्पर्य यह है कि भारत के प्राचीन साहित्य में नारी के स्वभाव और स्तर के सम्बन्ध में परमोत्कृष्ट विचार उपस्थित किए गए हैं। वेदों और उपनिषदों से यह संसिद्ध होता है कि वह पुरुष के साथ समानाधिकार का उपभोग करती है और पुरुष से भी दृढतर और वरीयसी होने के कारण उसकी इच्छाओं की एवं सुख साधनों की पूर्ति करती थी। इसलिए नारी को गृहलक्ष्मी के रूप में मानकर लिखा गया है कि **"यत्र नार्यस्तु पूजन्ते, रमन्ते तत्र देवताः"**

इन महान वाक्यों एवं विचारों के साथ नारी संबंधी कटु उक्तियाँ भी उसी जमाने में उपलब्ध हैं। मनुस्मृति और महाभारत के अनुसार स्त्री की उपस्थिति में वेद-पाठ करना तथा उनके लिए यज्ञोपवीत अनुचित समझा गया और वे इस विषय में शूद्रवत् समझी गयीं। इसका कारण यह है कि जब राजशासन शुरु हुआ तब दासों का जन्म हुआ और स्त्रियों की पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति ने दास प्रारंभ होता है। कुलीन और संभ्रान्त लोगों ने शूद्र और नारी की एक ही नियति निर्धारित कर दी दासता। ज्यों ज्यों कृषि का विकास होता गया समाज में शूद्र और नारी का स्थान अनिवार्यतः पतन की ओर बढ़ता गया। ध्यान देने की बात यह है कि 'भृत्यु' (नौकर) और भार्या (पत्नी) दोनों ही शब्दों का व्युत्पन्तिमूलक अर्थ एक ही है। अंग्रेज जाति में भी मध्ययुग तक पति को लॉर्ड कहा जाता था। यह शब्द भी स्त्री का पति के लिए और नौकर द्वारा मालिक के लिए संबोधित किया जाता था। लोर्ड का भी व्युत्पन्तिमूलक अर्थ है – "जो अपने आश्रितों को रोटी दे।" स्त्री की परतंत्रता का सर्वोत्तम उदाहरण के रूप में मनु वचन प्रसिद्ध है –

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्र्य मर्हति।

बैबिल में हव्वा पतन के अवसर पर भगवान ने उससे कहा था कि – "तेरी इच्दा तेरे पति के निमित्त होगी और वह तुझपर शासन करेगा। महाभारत और रामायण में भी कई स्थानों पर स्त्री निन्दा प्राप्त है। फिर भी स्त्री आदरणीय स्थान की अधिकारिणी थी।

मध्यकालीन भारत में स्त्री गौरव का ह्रास हुआ। मोक्ष प्राप्ति या साधक के साध्य के लिए स्त्री बाधा रूप में चित्रित हुई। स्त्री और धन को कलह कारण के रूप में देखा गया। यह दृष्टिकोण शायद उस समय की सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के कारण रहा होगा। पुरुष स्त्रियों के बन्धन में फँसकर अपने दायित्वों एवं कर्तव्यों से च्युत हो गए होंगे। तब स्त्री को माया रूप में उपस्थित कर उससे विरक्त हो जाने का आह्वान देकर पुरुषों को

समाजोन्मुख बनाने के उद्देश्य से शायद मध्यकालीन साहित्यकारों ने प्रयत्न किया होगा। भारतीय धार्मिक वाङ्मय और परंपरा में आदिशंकराचार्य के सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ा। यह नारी को हीन दृष्टि से देखने का कारण बन गया। शंकर ने अपनी प्रश्नोत्तरी में कहा कि प्राणियों को बंधन में डालने वाली श्रृंखला नारी ही है। उनके अनुसार बुद्धिमान समदर्शी और धीर पुरुष वही है जो स्त्रियों के कटाक्षों से मोह को नहीं प्राप्त होता –

"प्राज्ञोऽथ्स धीरस्य समस्त वा प्राप्तो न मोहं ललना कटाक्षैः।"

अपभ्रंश परंपरा में भी स्त्रियों से बचने का विधान प्रतिपादित है। मुनि देवसेन, मुनि रामसिंह आदि की रचनाओं में इस ओर संकेत प्राप्त है। जैन साहित्य और नाथ साहित्य में नारी और मैथुन पर अत्यधिक आग्रह दृष्टिगत होता है। उस समय जैनों और बौद्धों के मठों एवं विहारों में स्त्रियों को भी प्रवेश दिया गया था। शायद यह उन स्थानों के पवित्र वातावरण के लिए हानिकारक भी बन गया होगा। इसलिए गोरखनाथ जैसे नाथों और बाद के संतों ने स्त्री को साधनामार्ग से अलग कर दिया।

आधुनिक युग में स्त्री जागरण को लक्ष्य करके कई प्रकार की रचनाएं हुई, उनमें कुछ 'फेमिनिज़म' पर ही केन्द्रित है। पुरुष के समकक्ष स्त्री को अलंकृत करने और स्त्री को शिक्षित बनाकर, स्त्रियों को अपने अधिकार एवं स्वातंत्र्य का बोध देने का प्रयास संपन्न हो रहा है। लेकिन आज स्त्रियों की हालत क्या है? क्या स्त्री का स्तर ऊँचा हो गया? स्त्री का सुधार कहाँ तक हुआ ये सभी बातें विचारणीय हैं।

मध्यकालीन विश्व प्रसिद्ध कवि तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में स्त्रीपात्रों के चरित्र को क्या स्थान दिया, नारी पात्रों की सृष्टि में उनका दृष्टिकोण क्या है, ये सब जानने के लिए रामचरित मानस के स्त्री पात्रों के चरित्र का ही विश्लेषण करना है। यद्यपि विनयपत्रिका, कवितावली और गीतावली में इस ओर संकेत प्राप्त है। तुलसीदास की समस्त रचनाओं का एकमात्र लक्ष्य राम नामक पात्र को शील और सौन्दर्य से आवेष्टित कर आदर्श कर्मयोगी पुरुष की सृष्टि करना है। इस उद्देश्य से अभिमंडित उनकी समस्त रचनाओं में बाकी सभी पात्र गौण रूप धारण करते हैं। या उनके महत्व के शोभावर्द्धक या पोषक बनजाते हैं अथवा मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के प्रति उनकी अनन्य भक्ति या तादात्म्य का भाव भी प्रकट करते हैं। तब दूसरे पात्र विशेषकर नारीपात्रों की सृष्टि में उन्होंने विशेष तत्परता नहीं प्रकट की नारीकुलमणि सीताजी के चित्रण में भी। इसके साथ पूर्वसूरियां के द्वारा उद्धृत स्त्री संबंधी नकारात्मक उक्तियों को लेकर नारी की उपेक्षा ही नहीं उनकी भर्त्सना एवं अवहेलना करने का प्रयत्न भी किया। जब राम ने समुद्र से पार उतरने का रास्ता माँगा था तब समुद्र के मुँह से निकला – "ढोर गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।।"

यह वास्तव में 'गर्ग संहिता' के श्लोक का अनुवाद है –

"दुर्जनाः शिल्पिनो दासा दुष्टाश्च वटहाः स्त्रियाः ताडिता मार्दवं यान्ति नैते सत्कार भाजिनः।"

तुलसी का यह कथन टेलर व वाटर पांइट की इस सुप्रसिद्ध उक्ति से समानता रखती है –

"A Woman a special and a Valnet tree, The more you beat them, the better they be" - (1580–1651)

इससे एक बात स्पष्ट होती है कि संपूर्ण विश्व में उसी जमाने में स्त्रियों के संबंध में एक सा विचार प्रचलित था। इसलिए शेक्सपियर ने कहा होगा – "Frailty, the name is Woman."

तुलसी के स्त्री पात्रों को मुख्यतः दो कोटि में विभक्त किया जा सकता है – आदर्श नारी पात्र एवं यथार्थ नारी पात्र। आदर्श नारी पात्र के अंतर्गत सीता, कौशल्या, सुमित्रा, मंदोदरी जैसे प्रमुख पात्रों के साथ कुछ गौण एवं अविकसित नारी पात्र भी समाहित हैं। आदर्श नारीपात्रों में प्रथम स्थानीय सीता ही हैं। भारतीय नारीत्व की आत्मा सीता का पति प्रेम विख्यात है। सभी रामायणों में सीता का यह रूप चित्रित है। उसी प्रकार रामचरित मानस में भी है। सीता के चित्रण में तुलसी ने कहीं कही स्वाभाविकता का सहारा लिया है तो ज्यादातर आदर्शत्मकता को ही स्वीकार किया। सीता के सौन्दर्यवर्णन और श्रृगारिक वर्णन में जो स्वाभाविकता और चित्रमयता है वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है। यह सौन्दर्यमय और प्रेममय रूप के दर्शन सीताजी के गौरी पूजन प्रसंग तथा स्वयंवर प्रसंग के अन्तर्गत



होते हैं। नारी के सुकुमार सुकोमल रूप में कितनी चारित्रिक दृढ़ता प्रकट हो सकती है इसका निदर्शन तुलसीदास जी ने आलंकारिक ढंग से किया है –

"डगै न संभु सरासन कैसे। कामी वचनु सती मन जैसे।"

नारी को दीपशिखा कहने वाले तुलसीदास ने सीता को भी इसी शब्द से अभिहित किया और उनके सौन्दर्य का वर्णन इसी प्रकार किया – "सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छवि गृह दीपशिखा जनु बरई। राम के रूपमाधुर्य को लता की ओट से पान करने के उपरान्त सीता स्नेहाधिक्य से शिथिल होने लगी तब उसने क्या किया 'लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हें पलक कपट सयानी।" उसके मन में राम को और देखने की इच्छा, लेकिन माता-पिता से छिपाने का प्रयत्न इस प्रकार साधारण भारतीय नारीसुलभ स्वभाव एवं संकोच को प्रकट करने वाली सीता को कामुकता या श्रृंगारिकता की अतिरंजना से बचाने का प्रयत्न तुलसी ने इसलिये किया होगा कि आदर्शात्मक सामाजिक तरंगों से ही जाति और राष्ट्र का कल्याण संभव है।

सीता रामवंश की रक्षा के लिए अंतिम क्षण तक सभी प्रकार के कष्टों को भोगती हैं। सीता परित्याग के समय में भी वह रामचरितमानस में नहीं राम के कुल की रक्षा में प्राणत्याग को मन से हटाकर सीता ने अद्भुत धैर्य और विवेक का परिचय दिया। तुलसी की सीता ने एक भी कटु शब्द न पति के लिए न परिवार के लिए कही प्रयुक्त किया। अर्थात् तुलसी की सीता अतिशालीन कोमल और कलात्मक है। इसलिए इस आदर्शीकरण की अति में यह पात्र मानवोत्तर प्रतीत होता है।

तुलसी की दृष्टि में नारी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्वरूप माता का है। इसके निदर्शक पात्र है। कौसल्या और सुमित्रा। नारी का सामाजिक भावना को प्रस्तुत करने के लिये उनकी मातृभावना को ही उतारना चाहिए। तुलसी की कौसल्या उनकी अपनी सृष्टि है। अन्य रामायणों से भिन्न होकर रामचरितमानस की कौसल्या एक ओर राम के चरित और चरित्र के सर्वतः अनुरूप तथा दूसरी ओर द्रष्टा-सृष्टा महाकवि के मर्यादावाद के अनुसार चित्रित की गई है। वे पितृभक्त राम को वनगमन से विरत करना धर्म के विरुद्ध समझती हैं, किन्तु उनका मातृहृदय इसके लिये सरलतापूर्वक स्वीकृति भी नहीं दे पाता। तुलसी ने कौसल्या के द्वारा कैकेयी को राम की माता कहलाकर उनके चरित्र को बहुत ऊँचा उठा दिया है। वे क्षत्रियों के द्वारा समादृत वानप्रस्थ आश्रम को समादृत करने के धर्मविधान का उल्लेख करके व्यथा का संयमन भी करती है। इस प्रकार तुलसी ने कौसल्या को कौसल्या नहीं प्रत्युतः राम माता के रूप में चित्रित किया, अर्थात् आदर्श पुत्र की आदर्श माता।

सुमित्रा माँ का महत्व भी सराहनीय है। अपने पुत्र को राम के सेवार्थ भेजकर कितनी उदार मनस्थिति प्रकट करती है। सामाजिक चेतना को उजागर करने वाला उदात्त विचार है यह। गीतावली में एक घटना है कि जब सुमित्रा को यह पता लगता हे कि युद्ध क्षेत्र में लक्ष्मण मूर्छित पड़े हुए हैं। अतः सुमित्रा का वात्सल्यमयी हृदय उमड़ पड़ता है और वह शत्रुध्न को हनुमान के साथ राम के निकट पहुँचने की आज्ञा देती है। इस प्रकार अपने पुत्रों को राम की सेवा के लिये नियुक्त करने वाली सुमित्रा निःसन्देह तक साधारण माँ नहीं है।

उर्मिला, मांडवी और श्रुतकीर्ति में सीता के अनुरूप गुण, शील, शोभा आदि की चर्चा विवाह के समय करके तुलसी उनके प्रति मौन हो गए। आदर्श, सच्चरित्रवाली नारियों के साथ रावण की पत्नी मंदोदरी को भी तुलसी ने सम्मिलित किया। मंदोदरी को विदुषी एवं रामभक्तिन के रूप में चित्रित कर तुलसी ने उससे रावण को नीति की बातें भी बतलाई हैं – यथा **"नाथ बयरु कीजे ताई सों। बुधि बल सकिअ जीति जाही सो।"**

त्रिजटा लंका की एक राक्षसी थी जिसने अशोक वाटिका में सीता को युद्ध का सारा वृतांत दिया। काव्य में जहाँ जहाँ वह प्रस्तुत होती है वहाँ वहाँ वह सद्पात्र के रूप में व्यवहार करती है यद्यपि वह राक्षसी थी। सुलोचना भी आदर्श नारी पात्रों की श्रेणी में आने वाली है, लेकिन उसके चरित्र का भी विकास नही हुआ। इन राक्षस कुल की नारियों में भी मानवीयता के आदर्शगुणों का गुम्फन देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी की दृष्टि में नारी का महत्व कुल, जाति आदि पर निर्भर नहीं है।

तारा, अहल्या और शबरी रामभक्ति थीं तुलसी ने तारा को विदुषी के रूप में चित्रित किया तो गौतम मुनि की पत्नी अहल्या को पतिव्रता और रामभक्ति के रूप में प्रस्तुत कर जल्दी ही गायब कर दिया। भीलनी शबरी से राम की भेंट जब हुई तब उसने कहा –

"अधम ते अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अधारी।"

इस कथन से वास्तव में शबरी नारी की निन्दा नहीं करती, प्रत्युतः अपने लघुत्व को वह अभिव्यक्त करती है और वह अपने को शीलवती, शिष्ट और सभ्य नारी सिद्ध करती है। यहाँ भीलनी जाति की शबरी को राम के परम भक्तिन के रूप में प्रस्तुत कर और राम के द्वारा अनुग्रह दिलवाकर जातिगत भेद के संकुचित दायरे से मानव की मुक्ति की अभिलाषा तुलसी प्रकट करते हैं।

अत्रिमुनि की पत्नी अनसूया एक विदुषी और समाजहित चाहने वाली नारी है। नारी धर्म पर बड़ा प्रभावपूर्ण उपदेश देकर अनसूया ने नारी समाज को सचेत करने का प्रयत्न किया। उसने सीता को उपदेश दिया–

"मातुपिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी।
अमित दान भर्ता वैदेही। अधम सो से नारि जो सेव न तेही
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी।।
वृद्ध रोग वश जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना।।
ऐसेहु पति कर किएं अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।।
एकहि धर्म एक व्रत नेमा। कायं वचन मन पति पद प्रेमा।।

श्रेष्ठ नारियों में पार्वती, सीता की माँ सुनयना आदि भी हैं। उपर्युक्त आदर्श या उच्च श्रेणी की नारियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे महिला पात्र भी तुलसी की रचनाओं में हैं जो तुलसी की दृष्टि में अवगुणों से युक्त हैं तो भी वे कथा गति में मोड़ पैदा कर कन्या को आगे बढ़ाने वाली यथार्थ नारियाँ हैं। उनमें सर्वप्रथम स्थान कैकेयी को है। उसके साथ मंथरा, शूर्पणख जैसी नारियाँ भी हैं तुलसी के नारी पात्रों में यथार्थ के धरातल पर चित्रित एक मात्र नारी कैकेयी है। आदर्श से यथार्थ की ओर पुनः आदर्श की ओर करवटें लेनेवाली कैकेयी ऊँचे से नीचे आकर फिर ऊपर उठती है। पहले वह एक आदर्श पत्नी और माता की भूमिका निभाती है। लेकिन मंथरा की कुसंगति में पड़कर अपने आदर्श स्वरूप को नष्ट कर देती है। पहले से लेकर कैकेयी एक सक्रिय एवं भावुक नारी है। ऐसी नारी में भावपरिवर्तन स्वाभाविक है। पति के साथ युद्ध क्षेत्र में जाने वाली कैकेयी देश रक्षा में तल्लीन पतिप्रेम से अग्रणी है। भरत के प्रति मातृसहज प्रेम और सौतियाडाह से राम को वन में भेजने वाली कैकेयी एक साधारण यथार्थ नारी है। तुलसी उसे सम्पूर्ण नारी की प्रतिनिधि मानकर उसकी स्वार्थता का पर्दाफाश करते हैं।

मंथरा का वाग्वैदग्ध्य हिन्दी साहित्य में अतुलनीय है। कूट-बुद्धि, दूरदर्शिता व्यक्ति एवं अवसर को समझने की इनकी प्रतिभा बहुत बढ़ी चढ़ी होती है। स्वयं कैकेयी ने कहा "काने खोर कूबरे कुटिल कुचाली जामि।"

पुत्रहित हानि एवं सपत्नी विद्वेष नारी मनोविज्ञान को सर्वाधिक आन्दोलित करने वाले बिन्दु हैं इन दोनों का प्रयोग मंथरा ने किया। मंथरा ने कैकेयी को अपेक्षाकृत अल्पवयस्क अथवा अनुभव रहित सिद्ध करते हुये सपत्नी विद्वेष की ज्वाला प्रज्ज्वलित कर दी। मंथरा जैसी नारी साधारण जनमध्य दिखाई पड़ने वाली ही है।

वासना जन्य भूख से राम लक्ष्मण के पास आने वाली शूर्पनखा तुलसीदास की दृष्टि में सबसे पतित एवं गिरी हुई नारी है। लेकिन शूर्पनखा की परिस्थिति और संस्कार आदि को दृष्टि में रखने पर वह यथार्थ की भावभूमि पर खड़ी होने वाली है। सुयोग्य पति की खोज में भटकने वाली सूर्पनखा ने राम और लक्ष्मण को अपनेलिए योग्य समझकर उनके सम्मुख अपनी इच्छा व्यक्त की। तब उसका परिहास कर उसके प्रति अन्याय करने को राम और लक्ष्मण तैयार हुए। लंका दुर्ग की रक्षा के लिए उसके सीमान्त पर नियुक्त लंकादेवी नाम की निशाचरी का चरित्र भी संस्कारों के अनिवार्य बंधन में जकड़ा हुआ है।

उपर्युक्त नारीपात्रों के अतिरिक्त ऐसे कुछ प्रसंग भी रामचरितमानस में देखे जा सकते हैं जो नारियों के चरित्र



और स्थान को प्रकट करते हैं। सती को जब राम के ईश्वर होने में सन्देह हुआ तब शिवजी ने कहा –

"सुनहि सती तब नारि सुमाऊ। संसय अस नधरिअ उर काऊ।"

जब श्रीराम विषयक यथार्थ ज्ञान सती को प्राप्त हुआ तब स्वयं उसने अपने अज्ञानता और आत्मग्लानि नारि सहज जड अज्ञ कहकर प्रकट की।

स्त्रियों की निन्दा करने का स्वर तुलसी की रचनाओं में कई स्थानों पर गूँजता है। आरण्यकाण्ड में नारद ने राम से कहा कि आपके कारण मेरा विवाह नहीं हुआ। तब राम ने कहा –

"काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि। तिन्ह महँ अतिदारुन दुखद माया रूपी नारि।"

कवितावली के उत्तरकाण्ड में "भौंह कमान संधान सुठान जे नारि विलोकनि वानिते वाँचे" जैसे उक्तियाँ भी प्राप्त हैं। युवती नारी से भयभीत होकर तुलसीदास ने स्वयं कहा –

'दीपसिख सम जुवति तन मन जानि होत पतंग। भरहिं राम तजि काम मद करहिं सदा सतसंग।

तुलसी दास को लगा कि उस समय पुरुषों में कामुकता बढ़ रही थी। शिक्षित अशिक्षित सभी समाजों में स्त्री की ही चर्चा चल रही थी। सब अपने संस्कार को भूल रहे थे। यहाँ तक कि वृन्दावन में बसने वाले बूढ़े हित हरिवंश जी भी श्रृंगार रस में डूबकर गाया करते थे – "कृश कटि पृथु नितंब किंकिनि वृत कदलि खंभ जंघन।

पद कंबुज जावक जुत भूषन पीतम उर अवनी।।"

नारी के वासनाजन्य, अज्ञ, जड़वत् , अधम स्वरूप पर प्रकाश डालने वाले तुलसी ने नारी को श्रेष्ठ कहा –

"जननी सम जानहि सब नारी।"

यहाँ तुलसी ने स्त्री को माता समान देखने का आह्वान इसलिए दिया कि नारी को केवल वासना के पात्र या काम का उपकरण नहीं समझना है पुरुषों को यह चेतावनी सदृश है। इस कथन की प्रासंगिकता अब भी विचारणीय है। नारी की पराधीनता और दुःखपूर्ण स्थिति का संकेत पार्वती के स्वगृह त्याग और पतिगृह गमन के समय पर पार्वती की माँ के द्वारा हुआ –

"कत विधि सृजी नारि जग माहिं। पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।"

नारी को गूढ़ तत्व ज्ञान की अनधिकारिणी माने जाने की सामाजिक मान्यता का उल्लेख भी शिव और पार्वती संवाद में प्रतिफलित है।

उपर्युक्त विवेचन का तात्पर्य यह है कि आदर्श के प्रस्तुतिकरण के लिए नारी के वासनाजन्य रूप की निन्दा तुलसी ने सर्वत्र की। उस समय के सामाजिक पतन से लोगों को मुक्त करना उनका लक्ष्य है। यहाँ शुक्ल जी की उक्ति विचारणीय है कि "सब रूपों में स्त्रियों की निन्दा उन्होंने नहीं की है। केवल प्रमदा या कामिनी रूपों में। इस लिये तुलसी ने आदर्श नारियों की प्रशंसा करते हुए नारी के मातृरूप को ज्यादा महत्व दिया। सीता का सौन्दर्य वर्णन जब उन्होंने किया तब कामुकता न उत्पन्न करने के लक्ष्य में कहा "जगत् जननि अतुलित छवि भारी।"

तुलसी ने स्त्रियों की निन्दा इसलिए की है कि पुरुषों को सामाजिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनाया जाय। यहाँ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर पुरुष स्वभाव की एक विशेषता स्पष्ट होती है कि वह अपनी कमजोरियों को छिपाने के लिए स्त्रियों पर दोषारोपण करता है। यही मनोवैज्ञानिक पक्ष तुलसी के स्त्री चरित्र चित्रण में स्पष्ट दृष्टव्य है। तुलसी की आदर्श नारी भारतीय नारी की परिकल्पना है, उसमें व्याप्त थोड़े गुण आज की भारतीय नारियों में परिलक्षित है। हम साधारण पृथ्वीवासी हैं, हमको सीता जैसी अमानवीय नारी बनना नामुमकीन है। वास्तव में स्त्रियों का ऐसा आदर्शीकरण स्त्री शोषण के समतुल्य भी है। आजकल हमारे बीच में कैकयी मंथरा जैसे पात्र ही ज्यादा प्राप्त हैं क्योंकि जमाना बदल गया। फिर भी अनेक युगों की बी जाने पर भी तुलसी के स्त्रीपात्र हमारे बीच में ज्वलंत होंगे, वे भारतीयता के निर्देशक हैं और उनके कई गुण अनुकरणीय भी हैं।

–हिन्दी विभाग कोचनी विज्ञान एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कोचीन-22

जहाँ रावण ने विवाह किया था

— महेन्द्र

जोधपुर (राजस्थान) के पास वाला मण्डोवर बड़ा प्राचीन और ऐतिहासिक नगर माना जाता है। वहाँ जा कर कोई देखे तो उसे कल्पना नहीं करनी पड़ेगी, पर पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग ने जो कुछ बताने को संग्रह कर रखा है, लोग बाग तो प्रायः वही-वही देख कर चले जाते हैं। ऊपर जहाँ तक सड़क बनी है, वहाँ तक भी बहुत कम लोग जा पाते हैं। चारों ओर पत्थर ही पत्थर, चट्टानें ही चट्टानें पसरी-धसरी पड़ी हैं। उसे कोई क्या देखेगा, पर असली दिखावा तो ऊँचाई की ओर ही है। वहाँ जो रचना आज भी जिस रूप में जमी बिखरी हड़बड़ हुई मिलती है, उससे उस नगर का वैभव, उसकी समृद्धि उसका ठाठ-बाट, ललित लावण्य और सौन्दर्य-शौर्य तथा कला-सांस्कृतिक परिवेश खुल-खुल खिलखिला पड़ता है।

कहते है। 24 कोस तक यह नगर फैला हुआ था। कई महल उल्टे पड़े हैं। ध्यान से देखने पर लगता है जैसे सारा नगर ही किसी ने उलट दिया है। हमने एक-एक चट्टान देखी, गिरे हुए महल खण्डहर देखे, सब कुछ यही आभास दे रहे हैं। जब मैं अपना कैमरा आँख पर टिकाए जा रहा था तब मुझे एक बुढ़िया ने कहा भी — 'लाला, कांई फोटु लेबे है, आरवी नगरी ही उलटी पड़ी है।

किंवदती है कि साढ़े सात हजार वर्ष पूर्व रावण ने यहाँ आ कर मन्दोदरी से विवाह किया था। मन्दोदरी का पिता मन्दुजी था। उसी के नाम से मण्डोवर नाम पड़ा। हमने वह चंबरी देखी, पत्थर की बनी 10 खम्भों वाली जहाँ रावण का विवाह सम्पन्न हुआ। पास ही पत्थर में उत्कीर्ण बड़ा कलात्मक तोरण भी है जो अब तो टुकड़ों-टुकड़ों में वहाँ पड़ा है, परन्तु उसे देखने से यह पता तो लग ही जाता है कि वह विवाह कितना शाही ठाठ बाट वाला और ऐश्वर्यसम्पन्न रहा होगा। इसके लिए कितनी तैयारी करनी पड़ी होगी। कितने कारीगरों ने रात-दिन एक किया होगा।

अपनी कला की कीर्तिगाथा तो वहाँ पड़े पत्थर स्वयं बयान कर रहे हैं। बताया जाता है कि यह ध्वस्त महल 24 खण्डों का था। 12 खण्ड ऊपर तथा 12 खण्ड इसके नीचे थे। नीचे के खण्ड तलघर तो आज भी सुरक्षित हैं। इनकी बनावट इस ढंग से थी कि प्रत्येक खण्ड में जाने-आने तथा हवारोशनी पहुँचने का पूरा-पूरा प्रबन्ध था। आसपास के कुछ महलों के नीचे हम गए, उनके तलघर देखे, हवा जाने के स्थान देखें। बड़ी-बड़ी चट्टानों के नीचे दबे मुख्य द्वारा देखें, जिनसे नीचे पहुँचा जाता है, पर आज उन भीमकाय चट्टानों को कौन हिला सकता है। नीचे के तलघरों में छिपे खजाने भी हैं, जिनमें करोड़ों मन निधि दबी छिपी पड़ी है। एक तलघर में तो पूरा मन्दिर दबा पड़ा है जिसकी दीवारों पर उत्कीर्ण रंग-बिरंगी आकृतियाँ आज भी ताजा लग रही हैं। वे सभी स्थान देखे जहाँ राजपूत रहते, रानियाँ रहती अपनी-अपनी कुल देवियों की पूजा करतीं तब ही जा कर अन्न जल ग्रहण करतीं। मन्दोदरी का महल देखा। उसकी कुलदेवी का पूजा स्थल आज भी वैसा ही है। — पुराना होते हुए भी बहुत ताजा।

रावण जितना बलशाली था, उतना ही अभिमानी। वह सारे संसार को अपने अधीन कर लेना चाहता था। उसने मेन्दूजी को भी कह दिया कि वह उसके अधीन हो जाए। मेन्दू जी को भला यह क्योंकर स्वीकार्य होता। उन्होंने अपने जंवाई राजा जी का मान रखते हुए विनयपूर्वक रावण की यह बात नहीं मानी। रावण को कहा धैर्य था। वह बड़ा कुपित हुआ। उसने कुम्भकरण व मेघनाथ सहायता से सारी नगरी को ही उलट दिया। इसी लिए आज भी यह सारा नगर उल्टा पड़ा है। यही चंवरी के पास रानी महल, जनाना महल के ध्वंसावशेष हैं। कुछ कमरे तो यहाँ आज भी ऐसे हैं जिनमें की गई कला कारीगरी देखते ही बनती है। वह रंग और रूप विन्यास आज भी वैसा ही बना हुआ है।

ऐसा नहीं कि तब से यह मण्डोवर ऐसा ही पड़ा हुआ है। इन्हीं पत्थरों से नए महल बनते रहे और जगत बसता रहा। आज जो जोधपुर है उसका बहुत कुछ निर्माण यही के पत्थरों से हुआ है। बताया जाता है कि अब से तीन हजार वर्ष पूर्व श्रीकृष्ण ने भी यहाँ आ कर विवाह रचाया था जामवन्ती से। दरअसल वह वैवाहिक कार्यक्रम योजनाबद्ध नहीं रहा। जैसा रावण का रहा। अर्जुन के साथ श्रीकृष्ण जी मणि ढूंढते ढूँढते यहाँ आ गए, इसलिए कि वह मणि जामवन्ती के पास थी। इससे वह खेल रही थी। कृष्णजी ने वह मणि मांगी तब जामवन्ती का पिता जामवन्त बोला – मणि दूँगा पर उसके साथ-साथ बालिका को भी देना चाहूँगा।'' कृष्ण जी ने यह बात मान ली और वहीं उनका विवाह हो गया।

मण्डोवर अपने में बहुत कुछ छिपाए है। सारी की सारी परतें यों की यों जमी दबी पड़ी हैं। कौन खोले इन इतिहास परतों को।

❑❑❑

श्रीराम

विश्व साहित्य संस्कृति संस्थान

Vishwa Sahitya Sanskriti Sansthan

(Institute of World Literature & Culture

C-13, PRESS ENCLAVE, SAKET, NEW DELHI - 110 017 ● PHONE : 669776, 6868543

Secretary General
LALLAN PRASAD VYAS

दिनांक : 22 फरवरी, 1999

प्रिय श्री तिवारी जी,

आपने ''मानस पहेलियाँ'' तथा ''राम की अग्नि परीक्षा'' पुस्तकें भेजीं, हार्दिक धन्यवाद। ''मानस की पहेलियाँ'' मुझे बालकों में सत्संस्कारों के निर्माण की दृष्टि से उपयोगी प्रकाशन लगा।

शुभकामनाओं सहित,

शुभ चिन्तक
लल्लन प्रसाद व्यास

श्री बद्री नारायण तिवारी,
मंत्री,
मानस संगम,
प्रयाग नारायण शिवाला,
कानपुर

राम ज्यों-ज्यों पास तुम आते रहे

– पी.डी. निर्मल

वन गमन पर अबध की जनभावना,
भूप का दुर्दान्त आया सामने,
शो में डूबा हुआ रणिवास कुल,
कर दिया क्या कुछ विधाता बाम ने।

भरत का उन्माद, दीदी की व्यथा,
राम की खातिर भरत का वनगमन,
अवध के नर नारियों के साथ तब,
तीर पर मंदाकिनी के प्रिय मिलन।

भरत का प्रस्ताव भैय्या राम हित,
राम का हठ बन गमन के वास्ते,
टीस सी उठ कर हृदय के बीच से,
बन रही आँसू नयन के रास्ते।

राम का संताप, खल दल से समर,
भरत का तप ध्यान, संयम याद कर,
वेदना मेरे हृदय की रो पड़ी,
चेतना तंद्रिल हुई अवसाद पर।

चेतना लौटी तो देखा तुम सभी,
लीन थे उपचार में, प्रसाद में,
आगमन तेरा लगा एक स्वप्न सा,
सत्य भी धूमिल हुआ उन्माद में

रंक की झोली में हीरक खण्ड से,
राम तुम आए अचानक सामने,
काँपते हाथों से निर्धन की तरह,
मैं लगी मणिराजि अतुलित थामने।

देखती अपने कुकर्मों को कभी,
स्पर्श करती थी कभी तेरा वदन,
गूँजते थे शब्द मेरे कान में,
धन्य है, कुलघातिनी, तेरा सुवन।

'तू उसे सुख दे न पाई स्वार्थ में,
वह मुझे सम्मान देता आज भी,
देख कर यह विषमता संयोग में,
हो रही लज्जित निगोड़ी लाज भी।

हीनता में मैं सिकुड़ती ही गई,
राम ज्यों ज्यों पास तुम आते रहे।

–अमर ज्योति, मिश्रवाड़ा, नारनौल (हरियाणा)



प्रार्थना में निहित है चमत्कारिक शक्ति

– सुदर्शनकान्त

मानव सभ्यता का इतिहास में यह बात सर्वदेश काल व्यापीजीव लोक में सदा विदित रहा कि संसार के सभी धर्म, सभ्यता तथा संस्कृति प्रार्थना को महानतम् साधना के रूप में चमत्कारिक देव-शक्ति सम्पन्न माना है। जगत का निर्माता, प्रतिपालक, संचालन एवं विनाशक अपना अलौकिक अनादि अनन्त लीला नित्य प्रकाश करता जा रहाहै। आनन्दमय सृष्टि के नित्य समारोह में यह लीला सृष्टा तथा उनका सृष्टि की सतत मिलन डोर में बांधकर व्यक्तिगत अस्तित्व में परम अस्तित्व का परिचय प्रदान करते रहे क्षुद्र गृह के आँगन में निखिल विश्व की बात लेकर आता है। यह लीला। यह अपने में सबके तथा सबमें अपने को पाने का दिव्य ज्ञान, अपरिसीम शक्ति व प्रेरणा जुटाता है। जो कार्य देह, मन और आत्मा तथा प्राण को विपुल शक्ति तथा सम्भावना का परिचय पाने में प्रेरित करता है– इसका नाम है प्रार्थना। हमारा कर्म, धर्म, मर्म की विश्व विधाता का अस्तित्व तथा उनके साथ हमारा परम मैत्री सम्बन्ध के बारे में परिचय प्रदान करता है, यह प्रार्थना। वास्तव में हमारा जय-पराजय, आनन्द-वेदना पाप-पुण्य, जीवन-मरण, सम्पत्ति-विपत्ति, उदारता-हीनता, लाभ, हानि आदि सब कुछ लेकर यह जीवन साधना परमेश्वर को पाने के लिए नित्य प्रार्थना है। धर्म-कर्म, आचार-विचार, भोग-त्याग, दारिद्रय, चातुर्य में मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य है, सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्, का परिचय पाना, इस सत्य की खोज में मानव समाज निरन्तर सचेष्ट रहता है। इस खोज की अभिलाषा प्रार्थना में झंकृत होता है। हमारा सनातन और शाश्वत भारतीय समाज सभ्यता नित्य प्रार्थनारत है। हमें असत्य से सत्य की ओर और अंधकार से प्रकाश की ओर मृत्यु से अमरता की ओर ले जाने के लिए यह प्रार्थना विश्व कल्याण में चिर समर्पित, मानवता के महातीर्थ में भारतभूमि में भिन्न-भिन्न सभ्यता तथा संस्कृति संसार की दशों दिशाओं से आकर सब भिन्नताएं भूलकर महामिलन के महायज्ञ में अपनी-अपनी अधैर्य की आहुति देते हैं। एक जाति एक प्राण एकता के जयगान हो जाते रहे। भारत की आत्मा में यह प्रार्थना निरन्तर ध्वनित है। वेद, उपनिषद, भागवत् पुराण-काल के ऋषियों-मुनियों का जीवन दर्शन, आचार-विचार, शील-धर्म तथा आध्यात्मिक साधना प्रार्थना मण्डित रहा। इस माध्यम से हम लोग स्थल, जल, नभ, वायु, तेज एवं समस्त प्राणी के साथ आत्मीयता के बोध करते आ रहे हैं। विश्व कल्याण में सभ्यता की मंगल प्रभात से वर्तमाल काल तक यह देश ज्ञान धर्म और कर्म की साधना के माध्यम से आत्म-शक्ति की महिमा विकसित करने के लिए सदा प्रयत्नशील है। चिन्तन मनन तथा अनुशीलन द्वारा आत्मशक्ति तथा ब्रह्मज्ञान का लाभ प्राप्त होता है। यह जीवन साधना मृत्यु लोक में अमरता को प्रदान करता है। विश्व व्यापी परम मंगलमय विधाता के साथ व्यक्ति जीवन का महामिलन ही भारत आत्मा की ध्येय है। यह लक्ष्य मानव समाज को सतत प्रेरित करती रहती है। अलौकिक शक्ति प्राप्ति की ओर

सारे संसार के साथ एकात्म होकर व्यक्तिगत सुखःदुख को भुलाकर संसार के हित के लिए अपने को प्रेम, मैत्री करुणामय सेवाव्रत में सदा रत रखना ही मानव जीवन का धर्म है। रामायण, महाभारत काल से वर्तमान काल तक अगणित ऋषिमुनियों, साधकों अवतार तथा महामानवगण इस भारत रूपी महातीर्थ में निखिल भुवन के हित के लिए सदा प्रार्थना करते आ रहे हैं – सर्वे भवन्तु सुखिरनः सर्वेसन्तु निरामया

सामाजिक आर्थिक राजनैतिक तथा आध्यात्मिक जागरण के लिए आत्मशक्ति का बोध अत्यन्त आवश्यक है। इस आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए एकमात्र प्रार्थना है सर्वश्रेष्ठ उपाय है। संसार के सारे धर्म, मत, पंथ के ऋषि-मुनि अवतार पीर-पैगम्बर, साधु सन्त फकीर, मनीषी आदि मानव जीवन का श्रेष्ठ धर्म कर्म के रूप में प्रार्थना की महिमा का प्रचार-प्रसार किया है। उनके अनुसार जीवन में सुख-शान्ति प्रगति लाभ करने में नित्य प्रार्थना जीवन तथा जीवनभर प्रार्थना ही परम सहायक है।

यह प्रार्थना रोग-शोक, पाप-ताप, अन्याय-अविचार, हिंसा-घृणा, ईर्ष्या-द्वेष कलह आदि से मुक्त कर जीवन

चमत्कारिक देव शक्ति का संचार करता है। यह हमें सभी प्रकार की दीनता-हीनता की सीमा लांघकर महा जीवन की ओर ले जाता है। वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से प्रबुद्ध करता है। सारे संसार को एकता में जोड़ता है। हिन्दू, मुस्लिम , सिख, ईसाई, पारसी बौद्ध आदि सभी धर्म मत के अनुसार मानव जीवन सार्थक करने के लिए प्रार्थना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। प्रार्थना मनुष्य को सभी दुख दारिद्रय संकट से मुक्त कर शान्ति, श्रीवृद्धि प्रगति तथा कल्याण की ओर संचालित करता है। विगत शताब्दी व्यापी बहु अलौकिक शक्ति का परिचय हमें मिलता है। राजाराममोहन राय, रामकृष्ण, विवेकानन्द, महर्षि दयानन्द, अरविन्द, रवीन्द्रनाथ, गांधी विनोबा भावे, मदर टेरेशा आदि सभी ने प्रार्थना ही जीवन का परम ध्येय माना है। उनके द्वारा ही इन महाशक्तियों का परिचय हम लोगों को कराया वह अतुलनीय है। भारतीय समाज में प्रार्थना ही हमें मैत्री, सेवाव्रत का पालन करने और पूजा-पाठ में सतत शक्ति, साहस तथा श्रीवृद्धि प्रदान करता है। जाति-पाँति, ऊँच-नीच की विषमता को दूर करता है प्रार्थना। हमारे महात्मा गांधी राष्ट्रपिता का सारा जीवन दर्शन कर्म तथा साधना का मूल प्रेरणा स्रोत रहा है। प्रार्थना ने उन्हें प्रबल पराक्रमी साम्राज्यवादी शक्ति को पराजित करने की शक्ति व साहस प्रदान किया था। तपस्या की सफलता प्रार्थना शक्ति में आधारित रहा है। भारतीय नव जागरण तथा मुक्ति संग्राम के पुरोधा परम पुरुष श्रीरामकृष्ण का मानस पुत्र वीर सन्यासी स्वामी विवेकानन्द महान समाज सुधारक महर्षि दयानन्द विश्व मिलन शान्ति तथा सत्य शिव सुन्दर के उपासक कवि गुरु रवीन्द्रनाथ मुक्ति संग्राम के महान साधक अरविन्द भूदान आन्दोलन के प्रवर्तक सर्वधर्म समानत्व साधना के मूर्त प्रतीक आचार्य विनोबा तथा मानव कल्याण के लिए समर्पित ज्ञानी-गुणी देश भक्त साधक-साधिकागण ने हमें अपने-अपने दृष्टान्त से इस युग में निरन्तर निष्काम कर्म साधना तथा नित्य प्रार्थना करने के लिए निर्देश दिया है। गांधी जी के अनुसार – "प्रत्येक मनुष्य प्रयत्न करें और अपने अनुभव से देखें कि दैनिक प्रार्थना के फलस्वरूप यह अपने जीवन में कुछ नया जोड़ता है – कोई ऐसी वस्तु जोड़ता है जिसके साथ दुनिया को किसी भी वस्तु की तुलना नहीं की जा सकती।" उन्होंने कहा – "किसी पवित्र ध्येय में कभी पराजय स्वीकार न कीजिए और आज से यह दृढ़ निश्चय कर लीजिए कि आप शुद्ध और पवित्र रहेंगे और आपको ईश्वर की ओर से उत्तर मिलेगा – ईश्वर आपकी प्रार्थना जरूर सुनेगा। परन्तु ईश्वर अहंकारी की प्रार्थना कभी नहीं सुनता न उन लोगों की प्रार्थना सुनता है, जो उसके साथ सौदा करते हैं" ।

प्रभो! विपत्तियों से रक्षा करो, यह प्रार्थना लेकर में तेरे द्वार नहीं आया। विपत्तियों से भयभीत न होऊं यह वरदान दे। अपने दुःखों चित्त को शान्ति देने की भिक्षा मैं नही माँगता। दुःखों पर मैं विजय पाऊँ यह वरदान दे। अपने दुखों से दुःखी चित्त को शान्ति देने की भिक्षा मैं नहीं माँगता। दुःखों पर मैं विजय पाऊँ यह आशीर्वाद दे।

मुझे बचा ले - यह प्रार्थना लेकर मैं तेरे द्वार पर नहीं आया। केवल संकट-सागर में तैरते रहने की शक्ति माँगता हूँ। तेरी सहायता मुझे न मिल सके तो भी यह कर दे कि मैं दीन होकर अवश न बनूँ। मेरा भार हल्का कर दे, यह याचना पूरी होने की सान्त्वना मैं नहीं चाहता। यह भार उठाकर मैं चलता रहूँ यही मेरी प्रार्थना है। सुख भरे क्षणों में मस्तक झुकाकर तेरे दर्शन कर सकूँ। किन्तु दुःख भरी रातों में जब संसार मेरी हंसी उड़ाए मैं शंका न करूँ यही वरदान मैं चाहता हूँ।

प्रार्थना में असीम शक्ति है। प्रार्थना नम्रता की पुकार है। प्रार्थना धर्म का प्राण और सार है। प्रार्थना के बिना भीतरी मन की शान्ति नहीं मिलती। प्रार्थना ही आत्मा की खुराक है। प्रार्थना का अर्थ सदाचार होना चाहिए। ईश्वर को पत्र लिखने में न कागज चाहिए न कलम-दवात न शब्द उस पत्र का नाम है प्रार्थना। प्रार्थना पश्चाताप का एक चिन्ह। प्रार्थना प्रभात की कुँजी एवं सायंकाल की सांकल है। प्रार्थना आत्मशुद्धि का सहज ओर सरल साधन है।

प्रार्थना द्वारा ईश्वर की कृपा और सहायता से हम अपनी कमजोरियों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रार्थना में इतनी शक्ति है तो प्रार्थना की महत्ता को समझकर इसे सदाचारपूर्ण संसार के प्राणियों में ऐसे बाँटे कि सभी प्रार्थनामय हो जायें और अपने इस काया का सदुपयोग कर सकें।

– बापा आश्रम छात्रावास, हरिजन सेवक संघ, दिल्ली - 9

जार्जिया में रामकथा

– डॉ0 परशुराम शुक्ल

जार्जिया एक छोटा सा देश है। यह पहले पूर्व सोवियत संघ का एक राज्य था। सोवियत संघ के टूटने के बाद जार्जिया एक स्वतंत्र देश बन गया। जार्जिया के नागरिक भारतीय संस्कृति और हिन्दी भाषा से विशेष रूप से प्रभावित हैं। वे आज भी राम को एक आदर्श पुरुष मानते हैं। जार्जिया वासियों के भारत प्रेम का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि उन्नीसवीं सदी के पूर्व से यहाँ रामकथा का प्रचलन है तथा यहाँ के लोग पिछले सौ वर्षों से रामलीला कर रहे हैं।

सन् 1990 तक जार्जिया में रामकथा केवल लोककथाओं के रूप में थी। इस विषय पर जार्जिया में, यहाँ की भाषा में न कोई पुस्तक थी और न ही कोई प्रमाणिक ग्रन्थ। इस कमी को जार्जिया की एक लेखिका मेरी असातियानी ने अनुभव किया और उन्होंने जार्जियाई भाषा में रामकथा लिखने का निश्चय किया।

मेरी असातियानी एक प्राध्यापक की बेटी है तथा बचपन से ही उसकी भारतीय संस्कृति में विशेष रुचि है। बड़े होने पर हिन्दी भाषा का अध्ययन करने के लिए तिबलिसी विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया, किन्तु हिन्दी के प्राध्यापक के अभाव में उसने फारसी भाषा का अध्ययन आरम्भ किया। इसके साथ ही वह घर में हिन्दी का अभ्यास करती रही। इसी समय मास्को विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जैक लिट्टन हिन्दी भाषा और साहित्य के प्राध्यापक बन कर तिबलिसी विश्वविद्यालय पहुँचे। मेरी को मनचाही मुराद मिल गयी। उसने फारसी छोड़ी और पूरी लगन के साथ हिन्दी भाषा के अध्ययन में लग गयी। प्रोफेसर लिट्टन तिबलिसी विश्वविद्यालय में तीन वर्ष रहे। इस मध्य मेरी उनकी सर्वाधिक प्रिय छात्रा रही। प्रोफेसर लिट्टन ने चलते समय मेरी को तुलसीदास रचित 'रामचरित मानस' की एक प्रति भेंट की जो आज भी मेरी के पास सुरक्षित है। इस पुस्तक ने मेरी के जीवन की दिशा ही बदल दी तथा उसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की लेखिका बना दिया। प्रोफेसर लिट्टन के जाने के बाद मेरी ने तिबलिसी विश्व विद्यालय छोड़ दिया और एक प्राच्य विद्या संस्थान में काम करने लगी। यहीं पर उसने जार्जियाई भाषा में रामकथा आरम्भ की। इस कार्य में उसे शुरु में कुछ सफलता मिली, किन्तु कुछ समय बाद उसने अनुभव किया कि अभी उसमें रामचरितमानस का अनुवाद करने की योग्यता नहीं आयी है, अतः अनुवाद का अनुभव प्राप्त करने के लिए मेरी ने मुंशी प्रेमचंद की कहानियाँ पढ़ीं और उनका जार्जियाई भाषा में अनुवाद किया। इससे उसे अनुभव तो मिला ही, साथ ही स्थानीय स्तर पर ख्याति भी मिली। एक वर्ष बाद मेरी ने रामचरितमानस का अनुवाद आरम्भ किया जो सन् 1990 में पूरा हुआ तथा 1992 में भिरानी प्रकाशन गृह से प्रकाशित हुआ।

मेरी की रामकथा का अभी बाल संस्करण प्रकाशित हुआ है। क्योंकि जार्जियाई बच्चे रामकथा से अधिक प्रभावित हैं। उन्हें 'राम - रावण युद्ध' तथा हनुमान, सुग्रीव आदि वानरों एवं कुम्भकर्ण, मेघनाद, मारीच आदि राक्षसों की कहानियाँ विशेष रूप से अच्छी लगती हैं। 'जार्जियाई रामायण' सचित्र है। इसके चित्र बड़े ही मौलिक तथा आकर्षक हैं। इन चित्रों की रचनाकार श्रीमती रुसिकोपेत्वि अश्रीली अंतर्राष्ट्रीय स्तर की कलाकार हैं। उनकी प्रतिभा का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि उनके द्वारा बनाये गये चित्रों की पहली प्रदर्शनी उस समय लगायी गयी थी, जब वह मात्र चार वर्ष की थीं।

मेरी की जार्जियाई भाषा में लिखी गयी रामकथा बच्चों के साथ ही बड़ों में भी काफी लोकप्रिय हुई है। इस पुस्तक की लोक प्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि पहले वर्ष में ही इसके दो संस्करण प्रकाशित हुए और समाप्त हो गये। वर्तमान समय में मेरी रामचरितमानस पर शोधकार्य कर रही है, साथ ही वह सभी के लिए पठनीय जार्जियाई रामायण तैयार कर रही है।

❒100, पंचशील नगर, सिविल लाइन्स, दतिया (म.प्र.) - 475661

उनकी तो अतुलनीय शक्ति है

—मोहन जायसवाल सम्पादक ''सत्य लोकवाणी''

जगज्जननी भगवती सीता जी साक्षात शक्तिस्वरूपता है उनकी महिमा अपार है। वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास तथा धर्मग्रन्थों में देवी सती का अनन्त लीलाओं का शुभ वर्णन पाया जाता है। ये मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री रामचन्द्र की प्राणप्रिया और आद्याशक्ति है। इन्हीं के भृकुटि विलास मात्र से ही उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाली करने वाली आद्याशक्ति मूल प्रकृति संज्ञक श्री सीता जी ही है। जिसके नेत्र के निमेष उन्मेष मात्र से संसार की सृष्टि, स्थिति तथा संहारादि क्रियायें होती है।, वह सीता जी ही है। तिरोधान, अन्नग्रहादि, सर्वसामर्थ्यसम्पन्न होने से श्री जानकी जी साक्षात आद्याशक्ति परात्पर शक्ति कहलाती है।

श्री जानकी जी की अप्रतिम महिमा ने संसार की तमाम उपमायें हत कर दी हैं। इनकी तुलना में न उमा आ सकती है, न वाणी न लक्ष्मी न ब्रह्माणी। उतमोत्तम देवांगनायें भी उनकी उपमा में नहीं आ सकती। एक भक्त ने भगवती जानकी की स्तुति करते हुए क्या ही अच्छा कहा है – हे परमेश्वरी! आप के समक्ष बड़े-बड़े देवगण परम तुच्छ है अतः वे जब आपके दरबार में आते हैं तो आपके श्रीचरण मूल में आकर नम्र भाव से बैठते हैं। यह देख कर कल्पवृक्ष ने सोचा कि जिसके श्रीचरणों की वन्दना महान देवगण करते हैं वह भगवती सीता मेरी छाया में बैठती है। मैं उनके ऊपर हो जाता हूँ। ये मेरी भारी से भारी ढीटता है हे जगदम्बे। इस अक्षम्य अपराध को क्षमा कराने के लिए ही इस रत्न मंडप की स्वच्छभूमि में छायारूपेण प्रविष्ट होकर आपके चरणों को बारबार स्पर्श करके कल्पतरु अपने अपराध की क्षमायाचना करता है। श्री जानकी जी तो अतुलनीय शक्ति है, उनकी तुलना में अनन्त ब्रह्माँड में कोई भी नहीं प्राप्त हो सकता।

माता सीता का स्वरूप कैसा है? श्रीराम के निकट रहने के कारण वह जगदान्दाकरिणी है और जो कुछ देह विशिष्ट है, सबकी उत्पत्ति स्थिति और संहारकारिणी भी वही सीता जी है। सीता ही भगवती मूल प्रकृति है। ब्रह्मवादी कहते हैं कि सीता ही प्रणव होने के कारण प्रकृति है। तब सीता क्या नहीं है? श्रुति कहती है वे सर्व वेदमयी है, सर्वकीर्तिमयी है, सर्व धर्ममयी है सबका आधार तथा कार्य कारण दोनों है। यही महालक्ष्मी है, देवाधिपति भगवान से भिन्न और अभिन्न दोनों हैं। चेतन भी यही हैं और अवचेतन भी यही है। ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सबकी आत्मा यही है। यही प्रकृति के गुण और कर्म विभाग के पार्थक्य हेतु शरीर बनी हुयी है। देव, ऋषि, मनुष्य और गन्धर्व सब इन्हीं के रूप है। दैत्य, राक्षस, भूत-प्रेतादि का आदि शरीर यही है। पंचमहाभूत, इन्द्रिय, मन और प्राण भी भगवती सीता के ही स्वरूप है।

श्रुति फिर कहती है हे ! सीता शक्ति है। वह इच्छाशक्ति क्रियाशक्ति और साक्षात शक्ति है। यही इच्छाशक्ति के तीन भेद भी हैं अर्थात् श्रीभूमि और लीलास्वरूप ये वह भद्र रूपिणी है, प्रभावरूपिणी है और सोम-सूर्य अग्नि स्वरूपिणी है। सोमात्मिका होने के कारण सीता औषधियों के ऊपर प्रभाव विस्तार करने वाली हैं। यह कल्पवृक्ष पुष्प फल लता और गुल्मस्वरूप हैं फिर औषधि से उत्पन्न औषध रूप में वह अमृतस्वरूप होकर देवगणों को यज्ञफल प्रदान करने वाली हैं यही माता सीता अमृत द्वारा देवताओं को अन्न द्वारा शिशुओं को तृण द्वारा तृण भोजी जीवों को तृप्त करती हे। यही दिन रात स्वरूपिणी है। समय का जो प्रकाश भेद है सब यही है कालचक्र यही है सीता ही चक्रवत परिवर्तनमाना है। श्रुति ने कुछ भी शेष नहीं रखा।

❐❐❐

गोस्वामी तुलसीदास

– सरदार बलविंदर सिंह

हे युगमानव, साहित्य शिरोमणि।
तुमको मेरा शत-शत नमन।
मानवता के हे प्रेरणास्त्रोत।
तुमको मेरा शत् शत् नमन।
चिन्तन दिया प्रेरणादायक,
रचना की तुमने बेमिशाल।
रामचरितमानस के रूप में
ग्रंथ दिया तुमने विशाल।
चिंताओं, दुश्चिन्ताओं का
कर दिया तुमने शमन।
रचना कर रामायण की
मानवीय रूख मोड़ दिया।
भटके हुओं को दी दिशा
मानव-मानव को प्रेम दिया।
तोड़ दिए सारे मिथक
आलोकित किया कण-कण।
रचकर रामचरितमानस
भर दिया गागर में सागर।
मर्यादा, अनुशासन का
आदर्श किया तुमने उजागर।
तुमसे है गौरवान्वित
हिन्द की धरती और गगन।
मानस में तुमने राम नहीं
जन जन की गाथा गायी है।
पारसमणि दी संसार को
मानवता ने ली अंगड़ाई है।
अपिर्त कर रहा हूँ मैं
चरणों पर श्रद्धासुमन।
हे युगद्रष्टा युग प्रवर्तक
तुमको मेरा शत-शत नमन
युग निर्माता, साहित्य नक्षत्र
तुमको मेरा शत शत नमन

– न्यू टाटा लाइम गोलपुरी
जमशेदपुर - 03

समझना आसान नहीं

– रामेश्वर वैष्णव

तुलसी के कथ्य को समझना है सरल मगर
तुलसी के तथ्य को समझना आसान नहीं।
तुलसी का रामराज्य, प्रतातंत्र का प्रतीक
तुलसी के पात्र सभी जीवित आदर्श।
तुलसी की वाणी है गंगाजल के समान
तुलसी का स्वर्ग संगठित भारतवर्ष।
तुलसी की कथा सहज, सौम्य, बोधगम्य किन्तु
तुलसी के सत्य को समझना आसान नहीं।
तुलसी का शब्द-शब्द अभिमंत्रित क्रांति बीज
तुलसी का चिंतन है मुक्ति-पथ-प्रसंग
तुलसी का काव्य ज्ञान-भक्ति-पीयूष धार,
तुलसी की सोच में समन्वय का रंग
तुलसी औषधि है जगजाहिर कलि मल हर
तुलसी के पथ्य को समझना आसान नहीं।
तुलसी का ईश्वर कर्तव्य पथ-पथिक मानव
तुलसी का धर्म दूसरों का उपकार।
तुलसी की पीड़ा बस पीड़ित मानवता है।
तुलसी का सुख है सत्संग, सुविचार।
तुलसी की भाषा जन-जन की बोली लेकिन
तुलसी साहित्य को समझना आसान नहीं।

–सी 1/2, टिकरापारा, डाक परिसर
रायपुर, छत्तीसगढ़ – 492 001

हे राम ! आपका इंतजार है

–डॉ० जवाहर धीर

कलियुग की माया देखो भाई, फैला चारों ओर अंधकार है!
मतलब ही मतलब रह गया, मिट गया प्रेम-प्यार है!!
पहले तो एक ही पापी रावण था, जिसको आपने मारा था!
अब तो हर कोई रावण हो गया, सबाके ही धिक्कार है!!
भरत लखन का चरित्र हैं भूले, रावण सभी अब हो गए!
गला काटने की ताक में बैठा, अब सगा भाई ही तैयार है!!
हे राम ! करो कुछ कृपा आप ही, बदलो युग की काया!
बड़ी मुश्किल में है सारी दुनिया, बस आपका इंतजार है!!

गीतावली में विभीषण का अन्तर्द्वन्द्व

– डॉ0 उमाशंकर शुक्ल 'उमेश'

पवन-पुत्र श्री हनुमान जी ने अभिमानी रावण की स्वर्णमयी लंका को जलाकर भस्म कर दिया। लंका में चतुर्दिक कुहराम मच गया है। लंकावासियों में भय व्याप्त हो गया। सभी किंकर्त्तव्यविमूढ़ से हो रहे हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में महारानी मन्दोदरी अपने प्रियतम रावण को समझाती है –

समय सयानी मृदुबानी रानी कहै प्रिय। पावक न होइ जातुधान बेनु-बन में।

तुलसी जानकी दिए, स्वामी सो सनेह किये, कुसल, नतरु सब है हैं छार छन में।

मन्दोदरी के पश्चात महोदर और महामति माल्यवान् आदि सभी ने रावण को यथामति एवं यथाशक्ति समझाने का प्रयास किया किन्तु मृत्यु के वशीभूत व्यक्ति को किसी की मंत्रणा कब अच्छी लगती है? रावण किसी की कोई मंत्रणा नहीं सुनना चाहता है बल्कि वह उनका उपहास करता है। अंत में, विभीषण जी ने उसे समझाते हुए कहा –

तो सो न तिलोक आजु साहस, समाज-साजु, महाराज आयसु भो जोई, सोई सही है।

तुलसी प्रनाम कै विभीषन बिनती करै, ख्यालन बेधे ताल, कपिकेलि लंक दही है।

महाराज! आपकी जैसी आज्ञा होगी वही होगा, सचमुच आज त्रिलोकी में साहस और सैन्य बल में आपके समान कोई अन्य दिखलाई नहीं पड़ता, किन्तु यह भी तो देखिए कि भगवान राम ने संकल्प मात्र से ही सात तालवृक्षों को बेध दिया और वानर हनुमान ने खेल ही में लंका को भस्म कर दिया। भगवान श्री राम के ऐश्वर्य एवं बल – पौरुष का स्मरण कराते हुए विभीषण पुनः रावण को समझाता है –

'राम के समान कोई स्वामी नहीं दिखलाई देता, जिनके विरद का वर्णन वेद, पुराण, कवि एवं विद्वज्जन करते हैं। जो माया, जीव, स्वभाव, काल, कर्म के शासक हैं। ब्रह्म, विष्णु तथा महेश जी जिनके नाम का जप करते हैं। वे ही राम नर के रूप में अवतरित हुए हैं, इसलिए ऐसा करो जिसमें सभी का कल्याण हो।' किन्तु रावण को विभीषण के ये वचन कड़ुवे लगे –

वचन – विभूषन विभीषन – बचन सुनि, लागे दुख दूषन - से दाहिने बामैं।

तुलसी हुमकि हिये हन्यो लात, भले तात, चल्यो सुरु तरु ताकि तजि छोर घामैं।

अपने प्रतिकूल तथा दुःखमय वचन सुनकर रावण ने क्रोध में आकर हुमक कर विभीषण की छाती में लात मारी। तब विभीषण भैया! अच्छा!! ऐसा कहकर वहाँ से चल दिया और सोचने लगा कि क्या करुँ कहाँ जाऊँ? अंत में, उसने अपनी माता जी के पास जाकर सब वृत्तान्त सुनाया। माता तो आखिर माता होती है। वह अपने कुपुत्र के लिए कभी कुमाता नहीं हो सकती है। उसके हृदय में अपने पुत्रों के लिए समान स्नेह रहता है। विभीषण जी से सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर विभीषण को समझाते हुए उसने जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि दी वह प्रेरक ही नहीं अनुकरणीय भी है।

समाधान करति बिभीषन को बार-बार? कहा भयो तात! लात मारे बड़ो भाई है।

अर्थात् उसके लात मारने से क्या हुआ आखिर तो वह तेरा बड़ा भाई है। इतना ही नहीं वह प्रथम तो तेरा स्वामी, दूसरे पिता के समान ज्येष्ठ भ्राता और सबसे अधिक तो यह कि वह राक्षस कुल का तिलक है। उसके तो अपमान करन में भी तेरा बड़ा सम्मान है। माताश्री के ये वचन सुनकर विभीषण का मन अत्यन्त खिन्न हो उठा, क्योंकि वह माताश्री के पास न्याय माँगने आया था और न्याय के बदले यहाँ उसे उपदेश मिल रहे हैं और अपमान को सम्मान बतलाया जा रहा है। विभीषण को अत्यन्त खिन्न देखकर माँ को यह अनुमान लगाने में देर नहीं लगी

कि विभीषण का अन्तर अपमान की आग में जल रहा है। अवसर का लाभ उठाते हुए माता ने विभीषण को पुनः समझाया –

गरत गलानि जानि, सनमानि सिख देति, रोष किये दोष सहें समझें भलाई है।

माता को विभीषण के अन्तर्द्वन्द्व का आभास हो जाता है। वह विभीषण के मनोभावों को भाँप जाती है। इसीलिए मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उसे मोड़ने का प्रयास करती हुई वह कहती है –

इहाँ ते बिमुख भये, राम की सरन गए, भलो नेकु लोक राखे निपट निकाई है।

हाँ, यहाँ से विमुख होकर राम की शरण चले जाने में थोड़ी सी भलाई अवश्य है, फिर भी यदि लोक की रक्षा कर सको तो पूरी भलाई है। भाव यह कि भाई का पक्ष छोड़ने की अपेक्षा उसका पक्ष ग्रहण करके व्यवहार की रक्षा करना ही उत्तम है। विभीषण जी ने देखा कि माताजी की झोली में मंत्रणा मंत्र तो हैं पर न्याय का कोई यंत्र नहीं है। वह जिस विश्वास के साथ माता जी के पास आये थे उनका यह विश्वास माता जी के मंत्रणा प्रहार से चकनाचूर हो गया। सोचा, क्या करें? कर्त्तव्या कर्त्तव्य की भावभूमि पर फिर मंथन होने लगा। एक ओर अपमान का घूँट दूसरी ओर माता का उपदेश दोनों ने विभीषण जी को चिन्ता में डाल दिया। वह कहने लगे –

भाई को सो करौं, डरौं कठिन कुफैरै अर्थात् यदि मैं भाई का सा व्यवहार करता हूँ तो बड़े भारी कुफेर (अड़चन) से मैं भयभीत हूँ। क्योंकि रावण वह कार्य करेगा जो मैं चाहता हूँ और जिसमें सभी का कल्याण है। ऐमी स्थिति में मुझे फिर अपमानित होना पड़ सकता है। इस प्रकार विभीषण धर्म संकट में पड़कर ग्लानि से गले जा रहे थे –

सुकृत संकट परयो, जात गलानिन्ह गरयो, कृपा निधि को मिलौं पै मिलकै कुबेरैं।

अंत में, विभीषण जी ने निश्चय किया कि वे पहले अपने भाई कुबेर से मिलकर अपने अपमान की बात सुनायेंगे तत्पश्चात कृपानिधान भगवान श्रीराम से मिलेंगे। यहाँ पर महाकवि तुलसीदास जी का काव्य कौशल झलकता है। विभीषण जी को माता जी से मिलाने के पश्चात भाई कुबेर से मिलाते हैं ताकि कोई यह न कह सके कि विभीषण तो शत्रुपक्ष से मिलने के इच्छुक ही थे। लात मारने के मिस उनको अवसर प्राप्त हो गया। दूसरे तुलसीदास जी समाज को यह भी दिखलाना चाहते हैं कि अत्याचारी रावण के निरंकुश शासन के विरुद्ध परिवार में किसी सदस्य को बोलने का साहस न था। विभीषण इसी लोक निन्दा को बचाने की दृष्टि से माता जी और बाद में भाई कुबेर के पास गये थे। उन्होंने सोचा कि सम्भव है भाई कुबेर कोई मध्य का मार्ग बता दें। पर कुबेर भी क्या करते। वह तो रावण के अत्याचारों से पीड़ित होकर यहाँ आकर सुमेरुपर्वत पर रहने लगे थे। विभीषण जी से सब समाचार सुन वे सुमेरुपर्वत पर खड़े-खड़े सोच-विचार करने लगे –

जाइ गह पायँ, धाइ धनद उठाइ मेटयो, समाचार पाइ पोच सोचत सुमेरै।

कुबेर की मनः स्थिति समझकर विभीषण जी का धर्म संकट और भी अधिक बढ़ गया। सोचा, बड़े भाई कुबेर तो मौन हैं। यह भी हमें कोई उचित मार्ग नहीं बतला रहे हैं। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? विभीषण का अन्तर्द्वन्द्व अब सीमा पार कर रहा था। वह अन्तर्व्यथा से पीड़ित और मस्त थे। उन्हें कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। वह व्याकुलता का अनुभव करने लगे। इस बीच भगवान शंकर जी उसी स्थान पर उन्हें मिल गये। उन्होंने विभीषण को व्याकुल देख उनके अन्तर्मन की व्यथा समझकर कहा –

तहँई मिले महेस, दियोहित उपदेस, राम की सरन जाहि, सुदिन न हेरै।

जाको नाम कुंभज कलेस-सिन्धु सोरिबे की, मेरे कहयों मानि तात! बाँधै जिनिबेरै।

विभीषण तुम भगवान राम की शरण जाओ, इसमें कोई शुभ देखने की आवश्यकता नहीं है। हे तात् ! जिनका नाम क्लेशरूप समुद्र को सोखने के लिए अगस्त्य के समान है उनके पास पहुँचने के लिए, मेरा उपदेश मानकर तुम किसी प्रकार का बेड़ा मत बाँधों अर्थात् किसी प्रकार की तैयारी मत करो। अपने कुल के इष्ट भगवान शंकर की इच्छा समझकर विभीषण जी व्याकुलता कम हुई। वे सोचने लगे यदि ऐसा न होता तो श्री महादेवजी कुबेर के घर मिलकर हृदय में मेरा हित विचार कर ऐसी बात क्यों कहते? जिस सुनकर मैंने अपनी कुंटिलता छोड़कर श्रीरामचन्द्र जी की शरणता की है –

ना हित क्यों कुबेर घर मिल हर हितु कहते चितलाइकै। जो मुनि सरन राम ताके मैं निज बामता बिहाइकै।।
अनायास अनुकूल सूलधर मग मुदमूल जनाइ कै। कृपा सिंधु सनमानि, जानि जन दीन लियो अपनाइकै।।

भगवान शिव जी की कृपा से विभीषण की चिन्ता, व्याकुलता और निराशा कम अवश्य हुई किन्तु उसका अन्तर्द्वन्द्व कम नहीं हुआ, हाँ उसकी दिशा में यद्किंचित परिवर्तन अवश्य हुआ। विभीषण जी सोचने लगे – यह तो ठीक है कि मैंने भगवान श्रीराम जी की शरण में जाने का निश्चय कर लिया है। रामजी कृपालु हैं, दीन-बन्धु है, अशरण-शरण हैं। वे शबरी, गृध्र और कपिराज सुग्रीव के शोक को शान्त करने वाले हैं। पर इन सब में और मुझमें बहुत अन्तर है। मैं रावण का छोटा भाई हूँ। मैं राक्षसवंश में उत्पन्न हुआ हूँ। राम ने राक्षसों को नष्ट करने का संकल्प किया है। मैं शत्रुपक्ष का हूँ मैं जाति का राक्षस और शत्रुपक्ष का होने के कारण सर्वथा त्याज्य हूँ। भला मुझे कृपानिधान राम क्यों अपनायेंगे –

रति-चरजाति, आराति सब भाँति गत

किन्तु उसी समय पुनः विभीषण सोचने लगा – प्रभु ने पाषाण रूपिणी अहल्या, केवट, गृद्ध और शबरी के आगमन रूप संसृति चक्र को शान्त कर दिया है। वह दयालु चित्त है। पुराणों में उनका 'दीन हितकारी' कहकर सुयश गाया गया है। मैं भी उन्हें दीन बन्धु कृपालु और मृदुलचित्त जानकर ही शरण में जाऊँगा तो वे मुझे अवश्य अपनायेंगे। भगवान श्रीराम शरणागत की रक्षा अवश्य करेंगे इसी विश्वास के साथ मैं प्रभु के पास जाऊँगा। वस्तुतः विभीषण का यह अन्तर्द्वन्द्व उचित ही था। क्योंकि जब श्रीरामजी को यह सूचना प्राप्त हुई कि रावण का भाई विभीषण उनसे मिलने आया है उनके चरणों की शरण में आया है तो श्रीरामजी को सहसा विश्वास नहीं हुआ। वह पूछते हैं –

साँचेहु विभीषन आइ है?
बूझत बिहँसि कृपालु लषन सुनि कहत सुकुचि सिर नाइ है।
ऐहैं कहा, नाथ? आयो हयाँ क्यों कहि जाति बनाइ है।

इस प्रकार महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने विभीषण के अन्तर्द्वन्द्व को गीतावली में अपने काव्य कौशल से बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। श्रीरामचरितमानस में इस मार्मिक प्रकरण को विस्तार नहीं मिल पाया। विभीषण का यह अन्तर्द्वन्द्व सर्वजनीन है। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, इसलिए महाकवि ने इसे गीतावली में विस्तार से व्याख्यायित किया है।

– साहित्य-सदन,
फूलपुर, इलाहाबाद-2

मैं जिस राम की उपासना करता हूँ, वे मेरी कल्पना के पूर्ण पुरुष हैं। मैं उस ऐतिहासिक राम की उपासना नहीं करता, जिसके जीवन विषयक तथ्य ऐतिहासिक अन्वेषणों और अनुसंधानों की प्रगति के साथ-साथ बदलते रह सकते हैं। तुलसीदास का ऐतिहासिक राम से कोई मतलब नहीं था। इतिहास की कसौटी पर कसने से उनकी रामायण रद्दी के ढेर पर फेंक देने लायक रह जायेगी। लेकिन आध्यात्मिक अनुभूति की झांकियाँ देने वाली कृति के रूप में उनकी पुस्तक अद्वितीय है, कम-से-कम मेरे लिए तो वह ऐसी ही है। मैं, पुस्तक में जो भावना व्याप्त है, उस पर मन्त्र-मुग्ध हूँ।

प्रस्तुति : जे.एन. पारस एडवोकेट –महात्मा गांधी

वाली और रामचन्द्र

– डॉ. के.के.ए. वेंकटाचारी

रामचन्द्रजी सुग्रीव से सख्य करते हैं। तब सुग्रीव को रामचंद्रजी यह वचन देते हैं कि – "वाली मेरे बाण का शिकार हो जाएगा" अर्थात मैं वाली को मार दूँगा। इस कथन में वाल्मीकि, तुलसी और कंबन आदि तीनों की वाणी में कोई भिन्नता नहीं है। श्रीरामचन्द्र जी की प्रेरणा पाकर जब वाली से युद्ध करने के लिए सुग्रीव गया स्वयं दुर्बल होने के कारण वाली का सामना न कर पाया, तब वापस रामचन्द्रजी के पास आकर कहता है – "मैं वाली से युद्ध नहीं कर सकता।" तब रामचन्द्रजी कहते हैं कि "मैं उसी वक्त वाली को मारना चाहता था जब

रूप से समझने के लिए अब मैं तुम्हें माला पहनाता हूँ। इस से तुम को आसानी से पहचान सकता हूँ" इस प्रकार कहते हुए माला पहनाकर सुग्रीव को वाली से युद्ध करने के लिए भेजते हैं। जब दोनों भाई युद्ध में भिड़े तब वृक्ष के पीछे अपने को छिपाकर रामचंद्र जी वाली पर बाण छोड़ते हैं। वे बाण बाली की छाती पर लग कर सीने में घुस गया। यहाँ तक तीनों रामायणों के कथन में कोई अन्तर नहीं है।

रामचन्द्र जी का बाण जब वाली के वक्षस्थल पर छुप गया तब वाली बाण को देखता है – कंबन कहते हैं वाली बहुत स्पष्ट रूप से "राम" नाम को देखा बाण में जो नाम तीन लोगों के लिए मूल मंत्र है और जो नाम जिस के जप करने से स्वयं रामचंद्रजी को दे देता है और इस संसारिक बंधन और सात पीढ़ी के दुःखों का औषध है।

वाली के नीचे गिरते ही रामचन्द्र जी लक्ष्मण के साथ उनके सामने खड़े हो जाते हैं। वाल्मीकि वाली के मुँह से बहुत कठोर शब्द रामचंद्रजी को सुनाते हैं। "सारी दुनिया रामचंद्र को धर्मवान कहती है। मैं ने कभी यह नहीं सोचा था कि रामचंद्र जी छिपकर मुझे मारेंगे। तुमने मुझे क्यों मारा है? मैं तो निरपराधी हूँ और यहाँ तक बोलना है कि तुम्हारे इस अनीतिपूर्ण काम से सत्पुरुषों के बीच तुम्हारा स्थान बहुत नीचे हो गया है। यह भी तुम्हें मालूम होगा कि किसी राजा को वध करने वाला, ब्रह्महत्या करने वाला, गोहत्या करने वाला, चोर डाकू एवं अकारण मामूली प्राणियों को मारने वाला नास्तिक ये सब नरक जाएंगे। तुम यह नहीं कह सकते हो कि मेरा माँस खाने के लिए मुझे मारा है क्योंकि मैं पंच नखवाला प्राणी हूँ - पाँच नख रखने वाले प्राणियों के माँस खाने लायक नहीं होते। अर्थात् वानर का माँस खाना मना है। मेरे चर्म का भी तुम उपयोग नहीं कर सकते हो, क्योंकि वह भी त्याज्य है। तुम बहुत नीचे गिर गये हो। यदि तुम ने मेरे सामने आकर युद्ध किया होता तो जरूर मैं ने तुम्हें मारा होता। बहुत अधर्म से तुमने मुझे मारा है। कंबन भी यही कहते हैं कि दशरथ के पुत्र होकर ऐसे काम तुम्हें करना नहीं चाहिए था। शायद सीता को खोकर अपनी बुद्धि भी खो दी है। इस प्रकार और भी कठिन शब्दों का प्रयोग करके वालि रामचन्द्र को धिक्कारता है।

यद्यपि वाल्मीकि रामायण में वाली कई तरह के छिपके मारने के उसके आचरण के बारे में यहाँ तक कहता है कि रामचन्द्रजी ने क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर ऐसे नीच कर्म कर दिया है यही सब कंबन अपने रामायण में दोहराता है और एक खास बात लिखी है – "हे राम! तुम भरत के भाई होकर भी, यह क्षुद्र काम तुमने कर दिया।" तुलसी ने इन सभी विचारों पर ध्यान नहीं दिया और कहते हैं "वैसा ही धर्म की रक्षा के लिए तुमने अवतार लिया है लेकिन व्याध के जैसे मुझे मार डाला।"

रामचन्द्रजी वाली को जवाब देते हुए कहते हैं –"तुम मुझे अच्छी तरह जान कर भी बहुत कठोर शब्दों से मेरी निंदा की है। हम क्षत्रिय कुल के हैं। भरत अब राज्य चला रहा है। ये जंगल जहाँ तुम और सुग्रीव सब

हैं यह हमारा क्षेत्र है। हमारे राज्य में एक कठोर पाप तुमने किया है। वह पाप है अपने छोटे भाई सुग्रीव की पत्नी को जोर जबरदस्ती अपने वश में कर लिया है। जो इस तरह का नीच कर्म करता है उसे मारना राजा का धर्म है। मैं ने सुग्रीव को यह वचन भी दे दिया था कि उसकी भार्या को वाली से छुड़ाकर उससे लौटा दूँगा और सुग्रीव को इस राज्य का राजा बना दूँगा। मैं ने कोई धर्मविरुद्ध कार्य नहीं किया है। और भी एक बात है– राजा लोग शिकार के लिए जंगल में आ जाते हैं और सभी तरह के पशुओं को मारते हैं। वे यह नहीं सोचते कि किस का माँस खाना है और किस का निषिद्ध है।

वाल्मीकि के अनुसार राम के ये वचन सुनकर वाली समाधान हो गया और रामचन्द्र से अपने सुनाए कठोर एवं प्रमादपूर्ण कथन को भूल जाने की प्रार्थना करता है।

लेकिन कंब रामायण के अनुसार रामचंद्र जी के कथन पर अपने दोष को अस्वीकार करते हुए वाली कहता है कि हम मनुष्य लोग नहीं हैं। मनुष्य की नीति हमारे लिए लागू नहीं है। हम वन्यपशु हैं, हमारे विवाह वगैरा वैदिक पद्धती से होता नहीं हैं जिस पुरुष प्राणी को अन्य स्त्री प्राणी से मिलजाना स्वभाविक है। वानर होकर मैं अपने गुण के अनुसार दूसरी स्त्री से संपर्क रख लिया यह बड़ा दोष नहीं है। मनुष्यों का जो धर्म है पशुओं के जीवन में उसका प्रयोग नहीं कर सकते, रामचन्द्र जी तुम ने तो मुझे मारा है लेकिन सामने न आकर अपने को छिपाके मारा है वह बहुत बड़ी गलती ही है। तब लक्ष्मण के मुँह से कंबन उसका जवाब देता है– "हे वाली ! पहले ही तुम्हारा छोटा भाई सुग्रीव रामचंद्र जी के शरण मे आ गया है और उनका मित्र भी बन गया। तब रामचंद्र जी ने उनको वचन दिया है कि –"मैं वाली को मारकर उसकी पत्नी को उसे वापस दिलाना मात्र नहीं उसे उस क्षेत्र का राजा बनाने का वादा भी दिया है अर्थात् उसका राज्याभिषेक कर देंगे। हे वाली यदि रामचन्द्र जी तुम्हारे सामने आकर युद्ध करने लग जाते और रामचंद्र को देखकर तुम भी शायद शरण में आए होते तो तुम्हें भी बचाना पड़ेगा। इसलिए रामचंद्र तुम्हारे सामने न आकर तुझे शरण में आने का मौका नहीं दिया। सुग्रीव को दिए अपने वचन का भी पालन किया है।''

आखिर वाली लक्ष्मण जी के उत्तर से तृप्त हो गया और रामचन्द्र जी से कहा – "मेरे जीवन की अंतिम दशा में ज्ञान देकर मुझे बचाया है। तुम ही त्रिमूर्ति हो, सब के आदि हो, धर्ममूर्ति हो। तुम केवल मुझे मोक्ष दे दो। दूसरा वर भी तुमसे माँगना है – मेरा भाई सुग्रीव भी वानर ही है। यदि कभी वह मधुपान करके कुलगुण के अनुसार तुम्हारे पास कुछ अपचार करता है तब भी हे रामचन्द्रजी। जो बाण मेरे छाती पर तुम ने भेजा है उसे कभी भी मेरे भाई के ऊपर नहीं देना। और भी एक माँग है आप से – यदि आप के भाई यह कहते हैं कि सुग्रीव के वचनानुसार प्रोत्साहन से रामचन्द्रजी ने वाली को मारा है तब तुम्हारा कर्तव्य है कि मैं ने स्वयं ही वाली को मारा है न सुग्रीव के कहने पर, भाई लोगों को यही बताना पड़ेगा की यह अपवाद सुग्रीव के ऊपर नहीं होना चाहिए।

संक्षिप्त रूप से तीनो रामायणों मे वालिवध के विचार इधर दिया गया है। वाल्मीकि और कंबन दोनों में वाली के मुंह से जितने शब्द निकलते हैं रामचंद्र जी के विरुद्ध वे सब विचार में लेलेंगे तो यह लेख बहुत विस्तृत हो जाएगा। इसलिए यह त्रिवेणीसंगम अर्थात् वाल्मीकि, कंबन और तुलसी तुलनात्मक दृष्टि से एक उदाहरण के रूप में इधर दिए हैं।

नं. 40, टी.पी. कोइल स्ट्रीट
ट्रीप्लीकेन, चेन्नई - 600 005



कहते हैं कि हमने खूब रामायण पढ़ी है

— माया वर्मा

प्यार का हम नाम भूले, हृदय से ममता उड़ी है।
और कहते हम, कि हमने खूब रामायण पढ़ी है।।
जानते हम कब, कि लक्ष्मण का, भरत का त्याग क्या है।
राम के उर का अनुज के प्रति सहज अनुराग क्या है।।
शत्रु बन जाते परस्पर-मात्र धन के हेतु भाई।
प्यार की, सौहार्द की हमने स्यमंतक मणि गंवाई।।
है शरम की बात-आपस में बहुत कटुता बढ़ी है।
और कहते हम, कि हमने खूब रामायण पढ़ी है।।
हैं कहाँ वात्सल्य कौशल्या सरीखा आज माँ में।
रह गयी आस्था न करुणा में, दया, ममता, क्षमा में।।
आज घर-घर में बहू और सास में बनती नहीं है।
और सीता-सी सुता भी भूमि अब जनती नहीं है।
खो गया सारल्य-नारी छद्‌म छल की फुलझड़ी है।
और कहते हम, कि हमने खूब रामायण पढ़ी है।।
मानकर आज्ञा पिता की वे भटकते थे वनों में।
और फिर भी ग्लानि कब थी था नवल साहस मनों में।।
है समय अब भी कि जागें और पथ पहचान लें हम।
ढूँढकर युग-रावणों को युद्ध उनसे ठान लें हम।।
लोभ-लंका क्षार कर-उर से विभीषण को लगा लें।
प्यार की, सौहार्द की नव नीतिमय दुनिया बसा लें।।
मेंट दें संकल्पबल से – 'जंग' जो मन पर चढ़ी हैं।
फिर कहें सोत्साह-हमने आज रामायण पढ़ी है।।
पर अवज्ञा ही बड़ों की आज का फैशन बना है।
खो गया 'सम्मान' मन कर्तव्य का भी अनमना है।।
आज स्वेच्छाचारिता ही, हर युवा मन में अड़ी है।
और कहते हम, कि हमने खूब रामायण पढ़ी है।।
है कहाँ केवट तथा शबरी सरीखी भक्ति निश्छल?
पवनसुत, अंगद सरीखी कर्मनिष्ठा कहाँ अविचल?
ज्ञान खोया, भक्ति खोयी, कर्म भी खोने लगे हैं।
लोक मंगल हेतु अब निश्चेष्ट हम होने लगे हैं।।
मोह, मद, लोभादिकों की अंध मादकता चढ़ी है।
और कहते हम, कि हमने खूब रामायण पढ़ी है।।
दलन करना दुष्टता का राम से कब सीख पाये।
लोकहित की वेदी पर कब सुख सुमन अपने चढ़ाए।।
रीछ, वानर भी न बन पाये मनुज तन धारकर हम।
पा सके परितृप्ति कब, निज सुख किसी पर वारकर हम।।
आज हर धड़कन हृदय की-मात्र सोने में मढ़ी है।
और कहते हम, कि हमने खूब रामायण पढ़ी है।।

□□□

तभी अमृत प्राप्त होगा

– डॉ० फीरोजा मुजफ्फर

आज मनुष्य और मनुष्य की बीच के रिश्ते खोखले बनते जा रहे हैं। औपचारिकता के मुखौटे से झाँकती आत्मीयता ने वस्तुतः मनुष्य मनुष्य के बीच दूरियाँ ही बढ़ाई हैं। रिश्तों का खोखलापन मन को सालने लगा है। ऐसी स्थिति में तुलसी के नातेदार, नेहदार राम का स्मरण प्रासंगिक जान पड़ता है। तुलसीदास जी ने कहा है–

एक भरोसों एक बल एक आस विश्वास। एक श्याम घनस्याम हित चातक तुलसीदास।

आज असंतोष, अविश्वास, आशंका, अनास्था के अंगारों से झुलसती मानव जाति को तुलसी जैसी अटूट आस्था ही शांति की शीतलता की अनुभूति करा सकती है।

तुलसी का रामचरितमानस विश्व साहित्य की अमूल्य सम्पदा है। मानस में सत्य सदाचरण, शांति, प्रेम और अहिंसा जैसे मानवीय मूल्यों का सनातन संदेश विभिन्न पात्रों के माध्यम से विभिन्न परिस्थितियों में दिया गया है।

पारिवारिक, सामजिक और राष्ट्रीय जीवन में आज जिन जीवन मूल्यों की आवश्यकता है वे सभी तुलसी के मानस में निहित हैं।

तुलसी के आराध्य श्री राम शील, शक्ति और सौन्दर्य के आगार हैं। राम भक्ति की सुर-सरिता में अवगाहन करके मन की तपन दूर होती है। आज के त्रस्त और तनावग्रस्त व्यक्ति में भक्ति की इस सुरसरिता में अवगाहन कर नई शक्ति व स्फूर्ति का संचार होता है। तुलसी की मान्यता है –

जाके प्रिय न राम बैदेही। तजिये ताहि कोटि बैरी सम जदपि परम सनेही।

तुलसी के मानस को महात्मा गाँधी ने नई दृष्टि से देखा है। भरत द्वारा अयोध्या में धरोहरी शासन के आदर्श की कल्पना साकार की गई है। धरोहरी शासन पर स्वदेश, स्वराज्य, स्वाधीनता, स्वालंबन के परिप्रेक्ष्य में आज नए सिरे से चिन्तन की आवश्यकता है।

राम और भरत का भ्रातृ प्रेम, परस्पर अटूट विश्वास आज के विखण्डित होते परिवार को बचाने का एक मात्र पथ है। राम और भरत का अपार, असीम, अगाध, अनुराग शब्दातीत है।

भरत सरिस को राम सनेही, जग जपु राम राम जपु जेही।।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में तुलसी साहित्य की प्रासंगिकता का पुनर्मूल्यांकन इस दृष्टि से भी किया जा सकता है। आज आपस की दूरियाँ बढ़ी हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व दो भागों में खण्डित हो गया है। एक को जीने का मौका मिल रहा है और दूसरा भाग अनजीया है। यह अनजीया व्यक्तित्व ही रावण की तरह दशमुख से गरज रहा है। इस गर्जन, तर्जन, घृणा और प्रतिहिंसा में अपनी शक्ति का ह्रास न कर रचनात्मक कार्य-लोक मंगल के कार्य करने की प्रेरणा तुलसी के राम देते हैं। तुलसी साहित्य का सनातन संदेश है – आज मानवीय संबंधों की परिधि में श्रीराम के बहुआयामी व्यक्तित्व को देखना प्रासंगिक ही होगा। प्रतिकूल परिस्थिति, विषम परिस्थिति के झंझावात में श्रीराम निरुद्वाग्न, शांतमन से कर्तव्य निर्वहन करते आगे बढ़ते जाते हैं

तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शबरी की कथा भी बहुत प्रासंगिक है। राम शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश देते हैं। शबरी राम से कहती है –

केहि विधि अस्तुति करौं तुम्हारी, अधम जाति मैं जड़मति नारी।।

शबरी रसीले और स्वादिष्ट कंदमूल फल राम को खिलाती है। शबरी की कथा वस्तुतः गंगा को कावेरी से जोड़ती है। वर्ण द्वेष के भाव सागर में भावनात्मक सेतु-बंध बनकर राष्ट्रीय एकता, सामजिक सौमन्स्य तथा वर्ण मैत्री

को उजागर करती है। शबरी वनवासिनी और आदिवासिनी बनी तथा हरिजन से हृदयवासिनी बनी। हरिजन से हरिपद पाकर चाँदनी बनकर सर्वत्र बिखर गई।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समन्वयवाद, समरसता, सामासिक संस्कृति की जड़ें जन मानस के मन में मजबूत करने की महती आवश्यकता है। आज प्रत्येक भारतवासी की अन्तरात्मा की आवाज है— मेरा देश भारतवर्ष सुदृढ़ हो, सुरक्षित हो, और उन्नति के उत्तुंग शिखर का स्पर्श करे। ऐसी स्थिति में तुलसी साहित्य की प्रांसगिकता स्वतः सिद्ध है। डॉ. ग्रियर्सन ने बुद्ध देव के बाद तुलसी को ही भारत को सबसे बड़ा लोक नायक माना है। भारत को लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके। भारतीय समाज में विभिन्न प्रकार की परस्पर विरोधी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचार निष्ठा और विचार पद्धतियाँ प्रचलित हैं। महात्मा बुद्ध समन्वयकारी थे, और तुलसी का मानस तो समन्यवाद का जीवंत उदाहरण है।

लोक और शास्त्र का समन्वय, गृहस्थ और वैराग्य जीवन का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, अवधी, संस्कृत, उर्दू, लोक भाषा के शब्दों का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, कथा और तत्व ज्ञान का समन्वय, ब्राह्मण और चाण्डाल का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय राम चरित मानस प्रारंभ से अंत तक समन्वय का काव्य है।

समन्वय का अर्थ है कुछ झुकना कुछ दूसरों को झुकाना। तुलसी ने असाधारण दक्षता से मानस में समन्वय, सामंजस्य, समायोजन और समरसता की सरिता प्रवाहित की है।

आज हम भूमण्डलीयकरण की बात पल-पल में करते हैं। संचार क्रांति ने आज विश्व को एक परिवार बना दिया है। तुलसी की ख्याति उस समय यूरोप में पहुँची अब आवागमन और संचार साधन इतने विकसित नहीं थे।

आज से लगभग 113 वर्ष पूर्व की बात है। सन् 1886 में वियना में योरपीय प्राच्य विशेषज्ञों का एक अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ था। डॉ० ग्रियर्सन भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में इस अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे। डॉ. ग्रियर्सन ने मध्यकालीन भाषा साहित्य विशेषकर तुलसी के संबंध में अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया। तुलसी साहित्य की प्रासंगिकता सिद्ध कर डॉ. ग्रियर्सन ने तुलसी की तुरुही आस्ट्रिया के वियना नगर में निनादित की।

डॉ. ग्रियर्सन का सच्चा उत्तराधिकार ग्रिफिका के शब्दों में मिलता है— "मैं विश्व के सारे साहित्य को चुनौती देता हूँ कि वह अपने में से रामायण (मानस) जैसा एक भी काव्य ग्रन्थ और उसमें राम सीता जैसे पूर्ण मानव चरित्रों को दिखाने का साहस करें।"

दशरथ शास्त्री ने तुलसीदास के विषय में संस्कृत में लिखा है। उसका भावानुवाद इस प्रकार से है—

भक्ति में दूसरे उद्धव, योग में दूसरे दत्तात्रेय, ज्ञान में शुकदेव, आचार-व्यवहार में कात्यायन और कांति में चन्द्र ज्योत्स्ना, इस प्रकार तुलसी सर्वत्र सुशोभित है।

इस प्रकार वर्तमान परिप्रेक्ष्य में तुलसी साहित्य विशेषकर रामचरितमानस की प्रासंगिकता असंदिग्ध है। हमारे अंतरमन की आवाज है- परिवार, समाज, राष्ट्र में शांति हो। संवेदनशील, सहिष्णुता और सौहार्द्रता के सेतु सुदृढ़ हों, यह सपना साकार करने के लिए तुलसी के मानस का नई दृष्टि, नवीन सूझबूझ, नूतन कल्पना के साथ मंथन करना होगा तभी अमृत प्राप्त होगा।

अयोध्या में राम मंदिर के निर्माण का प्रश्न राष्ट्रीय भावनाओं से जुड़ा था, जुड़ा है और जुड़ा रहेगा। अयोध्या राम की जन्म भूमि थी अतः वहाँ राम मंदिर का निर्माण होना ही चाहिए। कोई भी विवेकशील व्यक्ति यह कहने का दुस्साहस नहीं कर सकता कि भगवान राम का अयोध्या से कोई लेना-देना नहीं।

प्रस्तुति : भगवत प्रसाद शर्मा, एडवोकेट **(दैनिक जागरण से)**

भवभूति और तुलसी

– डॉ0 कृष्णदेव प्रसाद

संस्कृत नाट्य साहित्य में कालिदास के बाद भवभूति ही प्रसिद्ध नाटककार है। उनका समय आठवीं शती का पूर्वार्द्ध है। इनका वास्तविक नाम श्रीकण्ठ था। 'भवभूति' उनका उपनाम था। इनके तीन नाटक उपलब्ध है – 'महावीरचरित', 'मालती माधव' और 'उत्तररामचरित'। 'महावीरचरित' भवभूति की प्रथम रचना है, अतः इसमें नाट्यकला का पूर्ण उत्कर्ष नहीं दिखाई पड़ता। इसमें राम-विवाह से राज्याभिषेक तक की रामायणी कथा को नाटकीय रूप दिया गया है। रामायणाश्रित होने के कारण गोस्वामी तुलसीदास ने भवभूति के दो नाटकों – 'महावीर चरित' और 'उत्तररामचरित्त' का अध्ययन अवश्य किया होगा। परन्तु भवभूति की मौलिक उद्भावनाओं से वे कहीं भी प्रभावित नहीं हुए हैं। इन नाटकों के कुछ भावों की छाया तुलसी पर दृष्टिगत होती हैं इस लघु लेख में उनका विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

'महावीरचरित' के प्रथम अंक में राजा कुशध्वज महर्षि विश्वामित्र के विषय में कहते हैं कि ये जंगम तीर्थ या मूर्ति धारण कर संचरण करने वाले धर्म के समान है। (अथवा जंगम तीर्थ धर्मो वा मूर्तिसंचरः 1/10 उ.) और सन्तों का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं – मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू।। (1/2/4)

भवभूति विश्वामित्र को चलता फिरता तीर्थ कहते हैं और तुलसी सन्त समाज को चलता-फिरता तीर्थराज कहते हैं। दोनों भावों में पूर्ण साम्य है। 'जंगम' और 'तीर्थ' शब्द भी दोनों उदाहरणों में पाये जाते हैं।

राजाकुशध्वज कहते हैं कि जनकवंशियों और रघुवंशियों का सम्बन्ध किसे प्रिय नहीं लगेगा? (जनकानां रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः?) अर्थात् दोनों वंश परस्पर अनुरूप हैं, अतः उनका सम्बन्ध अभिनन्दनीय है और 'मानस' में दशरथ और जनक को देखकर देवता कहते हैं –

सकल भाँति सम साजु समाजू। सम समधी देखे हम आजू।। (1/320/6)

यहाँ प्रसंग में कुछ भिन्नता होने पर भी भाव-साम्य है। 'महावीरचरित' में श्रीराम परशुराम को देखकर कहते हैं कि पराक्रम और तपस्या के मूर्तिमान स्वरूप में मुनि प्रचण्ड शरीरधारी वीररस के समान जान पड़ते हैं। (प्रतापतपसोरिव व्यतिकरस्फुरन्मूर्तिमान्। प्रचण्ड इव पिण्डतामुपगतश्चवीरो रसः।।)

तुलसी ने भी परशुराम के सम्बन्ध में यही बात इस दोहे में कही है –

सान्त बेषु करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप। धरि मुनि तनु जनु बीर रसु, आयउ जहँ सब भूप।। (1/268)

परशुराम राम से पराजित हो गये हैं राम उनसे क्षमा माँगते हुए कहते हैं – 'संयोगवश मैंने जो आपके प्रति अविनय का व्यवहार किया, उसके लिए मैं करबद्ध क्षमा याचना करता हूँ। आप प्रसन्न होइये।' (दैवात् कृतस्त्वयि मया विनयापचारस्तत् प्रसीद भगवन्नयमञ्जलिस्ते।। 4/21)

तुलसी के राम भी 'मानस' में कहते हैं – छमहु चुक अनजानत केरी (1/282/4)

'दैवात् कृतो विनयापचारः' और 'चूक अनजानत केरी' के भाव समान हैं।

श्रीराम अपने पिता राजा दशरथ से कहते हैं कि मध्यमा माता अपने दोनों वरों को माँगती है। कृपया आप उन्हें वर प्रदान कर सन्तुष्ट करें। तब दशरथ जी राम से कहते हैं – 'रघुवंशी सदा से सत्यप्रतिज्ञ होते आये हैं, बेटा! तुमको संशय क्यों हो रहा है?' (सत्यसन्धा हि रघवः कि वत्स विचिकित्ससि?) और 'मानस' में दशरथ जी कहते हैं – रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई।। (2/28/4)

'सत्यसन्धा हि रघवः' और प्रस्तुत पंक्ति में पूर्ण भावसाम्य है। – 'महावीरचरित' के पंचम अंक में जटायु संपाति से कहता हे – 'लक्ष्मण ने शूर्पणखा के कान, नाक और ओठ क्या काट डाले, रावण के तिरस्कार की गाथा

ही लिख दी। (5/12)

ठीक यही भाव 'मानस' के निम्नलिखित दोहे में है –

लछिमन अति राघव सो, नाक कान बिनु कीन्हि। ताके कर रावन कहँ मनो चुनौती दीन्हि।। (3/17)

प्रस्तुत श्लोक और दोहा दोनों स्थलों में केवल शूर्पणखा के अंग-भंग का ही वर्णन नहीं है अपितु रावण के साथ विरोध के सूत्रपात का संकेत भी है।

मन्दोदरी रावण से कहती है – 'महाराज ! मैंने सुना है कि समुद्र तट पर अपनी सेना को ठहरा कर राम ने समुद्र को बुलाया। उसके नहीं आने पर उन्होंने किसी अस्त्र का प्रयोग किया, जिससे क्षणार्ध में ही पानी चक्कर काटने लगा और उस अस्त्र की गर्मी से खौलता हुआ लाल हो गया। ग्राह और कछुए मूर्च्छित होने लगे। शंख और सीपियाँ भयंकर शब्द के साथ फूटने लगीं। तब बाण से विद्ध सागर जल से बाहर आया और श्रीराम के चरणों पर गिर गया।(6/12)

इस प्रसंग में 'मानस' में तुलसीदास जी कहते हैं –

सन्धानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला।।
मकर उरग झष गन अकुलाने।। जरत जन्तु जलनिधि जब जाने।।
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आयउ तजि माना।। (5/58/6-8)

यहाँ तुलसी के राम की महिमा भवभूति के राम से अधिक जान पड़ती है। तुलसी के राम द्वारा शरसन्धान मात्र से उतना काम हो जाता है जितना भवभूति के राम द्वारा शर का प्रयोग करने पर होता है।

'महावीरचरित' के सप्तम अंक में अलका लंका से कहती है कि पिता के आदेश से राम और लक्ष्मण के दण्डकारण्य में आने पर राक्षसराज रावण ने जो निन्दनीय कर्म किया यह सब (रावण वध आदि) उसी का परिणाम है। (...............विहितमयमशेषः कर्मणस्तस्य पाकः।)

'मानस' में रावण का वध होने पर देवता भी कहते हैं – विश्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अध गयउ कुमारगगामी।। (6/110/4)

'अयमशेषः कर्मणस्तस्य पाकः' और 'निज अघ गयउ कुमार गगामी' का भाव समान है।

अयोध्या में आने पर राम भरत और शत्रुघ्न से कहते हैं कि हमारे दुःखसागर में नाव का काम करने वाले ये सुग्रीव और विभीषण हैं–

अस्मांक व्यसनाम्भोधौ अयं पोतत्वमागतः। कपीन्द्रोऽयं च लंकेन्द्रो मित्रं धर्महिते रतः।।32

'मानस' में इसी प्रसंग में राम वशिष्ठ मुनि से कहते हैं – ए सब सखा सुनहुं मुनि मेरे। भये समर सागर कहँ बेर।। (7/8/7)

'मानस' में केवल सुग्रीव और विभीषण को ही नहीं, अपितु सभी सखाओं को समर-सागर का जहाज कहा गया है। सुग्रीव और विभीषण का अर्थ ग्रहण कर लेने से उनके आश्रित बन्दर, भालू और राक्षसों का भी ग्रहण हो ही जाता है। अतः उपर्युक्त उद्धरणों में निःसन्देह भावसाम्य विद्यमान है।

विश्वामित्र वशिष्ठ जी से कहते हैं कि 'भगवन् अब क्या प्रतीक्षा कर रहे हैं? रामभद्र का अभिषेक कीजिये।' (भगवान् मैत्रावरुणे! किमद्यापि प्रतीक्ष्यते?) निर्वर्त्यतां रामभद्रस्याभिषेकः। 4/39 के बाद गद्य) और मानस में राम राज्याभिषेक के अवसर पर –

कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका। जग अभिराम राम अभिषेका।।
अब मुनिबर बिलम्ब नहिं कीजै। महाराज कहँ तिलक करीजै।। (7/10/7-8)

दोनों उद्धरणों में पूर्ण भाव-साम्य है।

'उत्तररामचरित' के द्वितीय अंक में वासन्ती आत्रेयी से पूछती है – अश्वमेध यज्ञ में श्रीराम की सहधर्मचारिणी कौन है और आत्रेयी का यह उत्तर सुनकर कि स्वर्णमयी सीता की मूर्ति ही गृहिणी बनायी गयी है, वासन्ती को बड़ा

दुःख होता है। वह कहती है – 'ओह ! वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल लोकश्रेष्ठ पुरुषों के चित्त को कौन जान सकता है?'

(वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि। लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति। ।2/7)

यही भाव तुलसी ने अंगद की बिदाई के अवसर पर व्यक्त किया है। श्रीरामराज्याभिषेक के बाद हनुमान जी रामजी की सेवा में रह जाते हैं। अंगद उनसे प्रार्थनापूर्वक कहते हैं कि श्रीराम से बार-बार मेरी याद दिलाते रहियेगा।' अंगद के जाने पर हनुमान जी ने श्रीराम से उनका प्रेम निवेदित किया, जिसे सुनकर भगवान राम प्रेममग्न हो गये। राम के इस प्रेममय स्वभाव को देखकर काकभुशुण्डि जी गरुड़ से कहते हैं –

कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि। चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि। ।7/19

प्रसंग सर्वथा भिन्न होने पर भी यहाँ पूर्ण भावसाम्य है। यह प्रस्तुत श्लोक का रूपान्तर है।

पर्यटन विभाग, बिहार सरकार
पुराना सचिवालय, पटना – 800 015

भारत सरकार GOVERNMENT OF INDIA
विधि साहित्य प्रकाशन VIDHI SAHITYA PRAKASHAN
विधायी विभाग LEGISLATIVE DEPARTMENT
विधि न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय
Ministry of Law, Justice & Company Affairs

ब्रह्मदेव चौबे
कार्यकारी प्रधान संपादक

भारतीय विधि संस्थान
भवन
भगवान दास रोड
नई दिल्ली - 110 001

परम आदरणीय तिवारी जी,

कानपुर में "हिन्दी विधि साहित्य और न्यायालयों में हिन्दी का प्रयोग" विषय पर आयोजित संगोष्ठी में हमारे आगमन पर मेरा तथा विधायी विभाग के संयुक्त सचिव परामर्श श्री सुन्दर लाल एवं प्रकाशन एवं विक्रय प्रबंधक श्री सुभाष चन्द्र का आपने जो सम्मान किया उसके लिए हम सभी आपके आभारी रहेंगे।

हिन्दी के प्रचार-प्रसार के प्रति आपका अनन्य समर्पण हमरे लिए सदैव प्रेरणा का स्त्रोत बना रहेगा। अतएवं विश्वास है कि परमपिता परमेश्वर आपको दीर्घायु बनाएगा और सदैव स्वस्थ बनाए रखेगा ताकि हिन्दी की साराहनीय सेवा आप दीर्घकाल तक करते रहें। इस क्षेत्र में आप भविष्य में भी हमारा मार्गदर्शन करेंगे। हमें इस क्षेत्र में आपका सहयोग करके अपार आनन्द मिलेगा।

सादर।

आपका

ब्रह्मदत्त चौबे
सम्पादक

डॉ0 बद्री नारायण तिवारी
अध्यक्ष
उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग नारायण शिवाला, कानपुर



रत्नावली की पाती

– रामगोपाल भावुक

आदमी युवा अवस्था को तो अभावों में काट लेता है। मित्रों से बतिया कर अथवा अपने बुजुर्गों के समक्ष अपनी पीड़ा का रोना, धोना रोकर युवा अवस्था तो कैसे भी व्यतीत कर लेता है। किन्तु उसे जैसे ही यह बोध हुआ कि उसकी वृद्धावस्था आ रही हे वह उसके बारे में चिंतित दिखाई देने लगता है। लोग श्रम करके वृद्धावस्था के लिये धन अर्जित करके रखते हैं। जिससे वृद्धावस्था सार्थक बन सके। इसके लिये आदमी अपनी संतान को योग्य बनाने में लगा रहता है। यदि संतान न हुई तो सहारे की तलाश में उसका अंतस् मन जाने कहाँ-कहाँ भटकता रहता है। मातेश्वरी रत्नावली स्वामी के जाने के बाद इसी उधेड़बुन में रहने लगी थीं।

आज हरको और रत्नावली आमने-सामने बैठी थी। रत्नावली किसी पुस्तक के पृष्ठों को पलट रही थी। हरको उनके सुन्दर बालों की ओर देख रही थी। उसी समय हरको को रत्नावली के सिर में एक श्वेत बाल दिखाई पड़ गया। यह देखकर वह श्वेत बाल का संकेत सहेली होने के नाते रत्नावली को देना अपना कर्तव्य लगा। अनन्दित होते हुये बोली - "भौजी अब तो बाल सफेद हो चले, अब तो समझ लो जिन्दगी कट गई। रत्नावली ने अपना ध्यान पुस्तक से हटाकर हरको के चेहरे की ओर कर लिया। हरको बिना प्रश्न किये ही समझ गई कि उनका अगला प्रश्न हो गया है। वह सोचकर बोली – "भौजी आज आपके सिर में एक सफेद बाल दिखाई पड़ा है। बात सुनकर रत्नावली सब कुछ समझ गई। बोली "तू ठीक कहती है यह युवा अवस्था ऐसी नहीं लगी। तुम जैसी सहृदयवान सहेलियों के साथ गुजर गई। लेकिन कठिन तो अब यह वृद्धा अवस्था लगने लगी है।" यह सुनकर हरको कहने लगी "आप चिन्ता न करें। गोस्वामी जी ने अभी तक आपकी कोई व्यवस्था नहीं की है। अरे! वृद्धावस्था में तो सोचेंगे। अब कुछ न कुछ व्यवस्था कर सकते हैं।" इसी समय शिष्य गणपति वहाँ आ गया था तो उसे देखकर प्रसंग बदलते हुये रत्नावली बोली – "अरे गणपति एक पहर दिन व्यतीत हो गया अभी तक शिष्य पढ़ने नहीं आये" यह सुनकर गणपति ने उत्तर दिया – "भैया आने वाले होंगे" इसी समय अन्य पढ़ने वाले शिष्य पौर में आ चुके थे। यह देखकर दोनों घर में से बाहर निकल आईं।

एक दिन शाम को तीव्र गति से चलती हुई हरको लौटी। आते ही बोली – "भौजी ऽऽऽ ओ भौजीऽऽऽ" रत्नावली ने पूछ दिया क्या बात है आज बड़ी खुश दिख रही है।" यह सुनकर हरको ने उत्सुकता से उत्तर दिया "आज कुछ साधु महात्मा हनुमान मंदिर में आये हैं, वे कह रहे थे गोस्वामी जी इन दिनों अयोध्या में ठहरे हुए हैं" रत्नावली ने उत्तर दिया – "अयोध्या तो उनके प्रभु का धाम है। उनके लिये इससे अच्छी जगह और कहाँ हो सकती है।" उसी समय गोस्वामी जी के शिष्य रामा भैया ने यही सूचना देने के लिये दस्तक दी। आते ही बोले – "भौजी जय सीताराम!" उत्तर निकला – "जय सीताराम" कहो भैया आज इस समय इधर कैसे भूल पड़े" प्रश्न सुनकर रामा भैया बोले आज अयोध्या से आने वाले और अयोध्या की ओर प्रस्थान करने वाले दोनों ओर के साधु महात्मा अपने हनुमान जी के मंदिर पर ठहरे हुये हैं कोई सूचना भेजनी हो तो भेज सकते हैं। यह सुनकर रत्नावली आनन्द के सागर में गोते लगाते हुये बोली "भैया मैंने एक दोहा लिखकर रखा है, आप और हरको दोनों अनुमति दें तो उसे ही उनके पास संदेश के रूप में भेज देती हूँ।" हरको और रामाभैया संयुक्त स्वर में बोले हाँ भेज ही देना चाहिये। अब दोनों की जबान प्रश्न पूछने से रुक गई कि क्या लिखा है ऐसा उस दोहे में जिसे मैं गुरु जी के पास भेजना चाहती है। दोनों के चेहरे के भाव समझकर रत्नावली ने बिना पूछे ही वह कागज का टुकड़ा एक हस्तलिखित पुस्तक में से निकालकर दोनों की ओर बढ़ाते हुए कहा "आप इसे पढ़कर देख लें।" कागज का पुर्जा रामा भैया ने हाथ में ले लिया और उसे खोलकर जोर-जोर से पढ़ा–

कटि की छीनी कनकसी, रहति सखिन्ह संग सोय। और कटे को डर नही अंत कटे डर होय।।

हरको समझ गई यह दोहा मेरे श्वेत बाल के संकेत का परिणाम है। यही सोचकर बोली "वाह-वाह! भौजी अपने इस एक दोहे में क्या नहीं कह दिया। युवा अवस्था में पतली कमर वाली सुन्दरी, अपनी सखियों के साथ रहकर समय व्यतीत कर लेती है। भौजी आपको गुरु जी के चले जाने के बाद कोई चिन्ता, भय अथवा पीड़ा नहीं रही है। किन्तु अब जीवन की अन्तिम वृद्धावस्था कैसे कटेगी मात्र यही डर है।" यह कहकर हरको रामा भैया की ओर देखने लगी। उसके देखने से रामा भैया समझ गये कि इस संबंध में अब मुझे कहना है वे यही सोचकर बोले "गुरुजी को आपके इस प्रश्न का उत्तर देना ही पड़ेगा।" यह सुनकर रत्नावली बोली - "मेरी यह चिन्ता स्वाभाविक ही है।" अब कुछ कहने की बारी रामाभैया की थी वे अपना निर्णय सुनाते हुये बोले – "आज ही इसे उन साधुओं के साथ अयोध्या रवाना करता हूँ। अच्छा चलता हूँ। भौजी जय-जय सीताराम।"

रत्नावली ने उनके जाने की स्वीकृति प्रदान की – "जय-जय सीताराम।"

रामाभैया पत्र लेकर चले गये। उसी दिन से रत्नावली का चित्त पत्र के साथ रहने लगा। पत्र का क्या प्रभाव पड़ेगा उनके चित्त पर। वे इसका क्या उत्तर दे सकते हैं। अच्छा रहा इस एक दोहे में भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों का आलेख है। क्या उत्तर हो सकता है उनका? मैं उन्हें अच्छी तरह जानती हूँ। वे विद्वान हैं कोई न कोई ऐसा हल निकालकर लिख भेजेंगे और मुझे उनके उत्तर से सहज में ही संतुष्ट हो जाना पड़ेगा।

इसी उधेड़बुन में लम्बा समय गुजर गया। अब तो उत्तर आने की प्रतीक्षा ही धूमिल हो चली थी। सोमवती का अवसर आ गया। यमुना के घाट से आने जाने वाले तीर्थ यात्रियों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो गई। आज अचानक एक साधुओं का झुण्ड दरवाजे पर आ गया। स्वभाव के अनुसार रत्नावली उनसे यात्रा प्रसंग सुनने पौर (दरवाजे) में आ गई। उन्हें आया हुआ देखकर एक साधु ने प्रश्न कर दिया। "आप रत्ना मैया हैं ना" अपना नाम सुनकर रत्नावली के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो गई – ये इस तरह मेरा नाम क्यों पूछ रहे हैं? प्रश्न सुनकर बोली – "हाँ कहिये मैं ही गोस्वामी जी की दासी हूँ" उत्तर सुनकर दूसरे साधु ने अपनी झोली में से एक कागज का छोटा सा पुर्जा निकाला और रत्ना मैया की ओर बढ़ाते हुए कहा – "हम अयोध्या से आ रहे हैं गोस्वामी तुलसीदास जी ने आपके लिये यह सन्देश भेजा है।" यह सुनकर रत्नावली परमानंद के परमपद को प्राप्त करने की अनुभूति जैसा बोध प्राप्त करते हुये बोली – "अरे स्वामी की दासी पर इतनी कृपा" पत्र हाथ में ले लिया उसे उसी क्षण अति उत्सुकता से खोला उस में भी एक दोहा लिखा था –

कटे एक रघुनाथ संग, बाँध जटा सिर केस। हम तो चाखे प्रेम रस पत्नी के उपदेश।।

पाती पढ़कर हृदय से चिपकाली बोली – "मुझे उत्तर मिल गया है। रघुनाथ के साथ अपना शेष जीवन व्यतीत करने के लिये मुझे आदेशित किया गया है।" सभी उत्सुकता से उनकी ओर देखने लगी। यह कागज का टुकड़ा उन्होंने सभी की ओर पढ़ने के लिये बढ़ा दिया। सभी ने उसे पढ़ा और सराहा। कस्बे में जो-जो सुनता गया मैया के पास आता गया। उनके हाथ की सुन्दर लिखावट का स्पर्श पाकर सभी अपने को धन्य समझ रहे थे, और रत्ना मैया अपने अतीत के सागर में गोते लगा रहीं थीं।

कमलेश्वर कॉलोनी, भवभूतिनगर (डबरा)
ग्वालियर (म.प्र.) 475 110

"जब मृत्यु निश्चित ही है, तब आप दिन-रात स्वाध्याय में सिर क्यों खपाते हैं?" एक व्यक्ति ने सन्त इमर्सन से प्रश्न किया।

– "इसलिए कि ज्ञान में घुल जाना अमरत्व है।" इमर्सन ने संक्षिप्त उत्तर दिया और विचारों के सागर में लीन हो गये।

प्रस्तुति : श्रीमती किरन मिश्र, एम.ए.

उन्होंने समाज को नयी दिशा दी

— सूर्यकांत द्विवेदी

भारत की संत परंपरा महान रही है। संत को ही भवसागर से पार करने वाला कहा गया है। किसी भी प्रकार की विपत्ति आए तो संत चरण में सुख की प्राप्ति करो। संत ही विपत्ति को टाल सकने में समर्थ है। वर्तमान युग में सवाल किया जा सकता है कि संत कहाँ मिलेगा और मिल भी जाएगा तो संत की पहचान करने वाली आँखों कहा से आएँगी? संत को तलाशो करना भी कठिन है। सद्संत मिलना आसान काम नहीं है। इसलिए कहा गया है कि संत को ढूँढना है तो अपनी परंपरा में तलाशी। जिसे कहीं गुरु न मिले वह सदा शिव, गणेश जी या फिर हनुमान जी को ही गुरु मानकर ईश की आराधना प्रारम्भ कर दे।

गुरु परंपरा की बात की जाए तो हमारे समाज में संतों की विशेष थाती रही है। संतों ने ही राम को लंका पर विजय प्राप्त कराई और महाभारत में तो साक्षात भगवान ही अर्जुन के गुरु बनकर युद्ध स्थल पर खड़े थे। भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से ही गीता का अमृत सामने आया जो आज भी पूरे विश्व को जीवन जीने कर्म और धर्म की शिक्षा देता है। इससे आगे बात की जाए तो गुरु द्रोणाचार्य, दधीचि, गार्गी, विश्वामित्र एवं कात्यायन ऋषि का नाम आता है। इनमें ही एक नाम है भगवान परशुराम का। उनके बिना भारतीय संस्कृति का आख्यान अपूर्ण ही कहा जाएगा।

भगवान परशुराम भी ऐसे ही संत थे। वह क्रोधावतार भी थे और करुणावतार भी। वह ब्राह्मण समाज के गौरव और समाज को नई दिशा देने वाले थे। भगवान परशुराम माता-पिता के परम सेवक थे। माता की पूजा से बढ़कर किसी की पूजा नहीं हो सकती। माँ को ही देवी का स्थान दिया गया है। जो बेटा माँ की आज्ञा न माने उसका जीवन निस्सार है। माँ का तिरस्कार करने वाले को ईश्वर की पूजा भी पुण्य नहीं दे सकती। इसलिए रामायण काल में माँ क पूजा के कई आयाम सामने आते है।। एक बार राजा सहस्त्रार्जुन ससैन्य महर्षि जमदाग्नि के आश्रम से निकले। ऋषि ने उनका सत्कार किया। ऋषि के पास कामधेनु देखकर राजा के हृदय में लालच आ गया। राजा ने ऋषि से कामधेनु माँगी और न देने पर बलात उसको ले लिया। उस समय परशुराम जीवन में थे। वापस आने पर उनको पूरी घटना का पता चला। उन्होंने अकेले ही राजा सहस्त्रार्जुन का सेना सहित संहार कर दिया। ऋषि को पुत्र का एक कदम अनुचित लगा। उन्होंने परशुराम जी से कहा कि वह इसका पश्चाताप करने के लिए तीर्थो का भ्रमण करें। पिता की आज्ञा का पालन करते हुए परशुराम जी ने एक वर्ष तक विभिन्न तीर्थों का भ्रमण किया और विभिन्न स्थानों पर शिवालय स्थापित किए। इनमें से एक शिवालय परशुरामेश्वर (पुरा महादेव) जिला बागपत और वैद्यनाथ धाम (बिहार) में है। यहाँ सावन की शिवरात्रि पर लाखों काँवाड़िए जलार्पण करते हैं। ऐसी मान्यता है कि काँव में गंगाजल लाकर भगवान शिव को अर्पण करने की परम्परा परशुराम जी ने ही शुरू की थी। उसी के बाद से ही कांवड़ यात्र का शुभारंभ हुआ।

तीर्थाटन के बाद परशुराम जी ने आश्रम पहुँचने से पहले ही सहस्त्रार्जुन के पुत्रों ने ऋषि जमदाग्नि को मार दिया था। अपनी माता रेणुका की करुण पुकार से आहत होकर परशुराम जी ने प्रण लिया कि वह धरती को क्षत्रियों से विहीन कर देंगे। परमशिव भक्त परशुराम ने 21 बार क्षत्रियों को परास्त किया। लेकिन प्रभु राम के अवतार आने के बाद वह समस्त क्रोध को त्याग कर अपने ईश के आगे नतमस्तक हो गए। शिव-धनुष की लीला और परशुराम और लक्ष्मण के संवाद माता-पिता के प्रति उनकी निष्ठा को अभिव्यक्त करते हैं। रामायण में दो ही चरित्र शिव के परम उपासक हैं एक हैं रावण और दूसरे परशुराम।



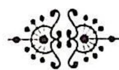
हुलसी के तुलसी

— दीन मोहम्मद 'दीन'

उस उदयाचल - सा जिससे उदित हुआ, हिन्दी काव्य - शशि युग जन्य तम हारी है।
राजापुर तुलसी ने जन्म ले कृतार्थ किया, पुण्य तीर्थ–तुल्य, रज-रजत सँवारी है।
हुलसी के उर की हुलास-भक्ति मधुमास, जन्म भूमि, कर्म भूमि, मर्म भूमि न्यारी है।
'दीन' दोनों हाथ जोड़े हुए सामने है खड़ा। राजापुर! राम-राम तुझको हमारी है।

(2)

हिन्दी काव्य-कानन के मान्य कल्प बृक्ष आप, कवि-कुल दूत को प्रणाम बार-बार है।
हिन्दू धर्मकेतु फहराया है गगन मध्य, भक्त-अवधूत को प्रणाम बार-बार है।
हिन्द शान, हिन्दमान, दिनमान, दिव्यमान, भारती के पूत को प्रणाम बार-बार है।
जोड़ता हूं हाथ-नाथ आपको झुकाता माथ, हुलसी सपूत को प्रणाम बार-बार है।



पावन चित्रकूट

— आचार्य राजीव मिश्र

अग-जग का शरण-प्रदाता जब, तेरे 'वन कानन' आया।
उस बनवासी ने अवधतुल्य, था प्यार तुम्हारा पाया।।
कूटरूप में चित्र तुम्हारा, प्रभु के ह्रदय समाया।
जिससे प्रेरित हो तेरा यश, निज श्रीमुख से था गया ।।
राम-भरत का मिलन यहीं, पादुक मिलीं श्रीराम से।
दोनों के संतप्त ह्रदय, पा सके शान्ति इस धाम से ।।
त्याग, तपस्या, बन्धुप्रेम, है बसा यहाँ कण-कण में।
इसीलिए यह तीर्थ, रमा है, जन-जन के तन-मन में।।
जब कोई तुलसी चन्दन, इस बन मे घिसता है।
तिलक कराते राम, भक्त से ऐसा रिश्ता है।।
चित्रकूट का पुण्यतीर्थ यह, राम-भरत का धाम है।
अर्पित सौ-सौ नमन इसे, सौ-सौ बार प्रणाम।।

बी. एन. एस. डी. शिक्षा निकेतन इण्डर कालेज कानपुर ।

तुलसी के विदेशी चितेरे

– डॉ० बद्री नारायण तिवारी

आज तुलसी जयन्ती सावन शुक्ल सप्तमी के दिन हिन्दी के विद्वान व तुलसी भक्त डॉ० कामिल बुल्के से जुड़ी दो घटनाएं तुलसी व हिन्दी के प्रति उनकी समर्पण भावना को उजागर करती हैं। डॉ० बुल्के का हिन्दी प्रेम दिखावा न होकर उनके जीवन का एक अंग बन चुका था। एक घटना ही उनके जीवन दर्शन की अनुभूति कराती है। एक बार उनके कक्ष में एक व्यक्ति ने दूसरे महानुभाव का परिचय देते हुए कहा – ''फादर, यह मेरे अंकल हैं। यह सुनकर डॉ. बुल्के ने तुरन्त प्रश्न करते हुए पूछा – ''अंकल ! अंकल का क्या अर्थ हुआ?'' अंकल याने अंकल उस आगन्तुक ने दोहरा दिया। 'मगर अंकल से यह नहीं ज्ञात हो कि आपके ये कौन हैं? ये आपके चाचा हैं, मामा हैं फूफा हैं, ताऊ हैं कि मौसा हैं? आपकी अपनी भाषा में प्रत्येक सम्बन्ध के लिए पृथक-पृथक निश्चित शब्द हैं उसका प्रयोग न कर आप एक विदेशी भाषा के -'अंकल' शब्द का प्रयोग करना क्यों पसंद करते हैं?''

इस हिन्दी प्रेम की पृष्ठ भूमि में तुलसी का रामचरितमानस ही उसका केन्द्र बिन्दु है। बेल्जियम में जन्मे डॉ. बुल्के ने तुलसी के -'मानस' की प्रस्तुत पंक्तियों ने उनके ऊपर एक हृदयस्पर्शी अमिट प्रभाव छोड़ा –

''धन्य जनमु जगतीतल तासू, पितहि प्रमोद चरित सुनि जासू।
चारि पदारथ करतल ताके, प्रिय पितु, मातु प्रान सम जाके।।''

इस चौपाई की भावनापूर्ण व्याख्या करते हुए डॉ० कामिल बुल्के के कथनानुसार – 'पिता और पुत्र का ऐसा आदर्श सम्बन्ध, ऐसी उदात्त कल्पना मेरे देश में नहीं थी, योरोपीय साहित्य में भी सुलभ नहीं हुई। मैंने मन में सोचा, जिस देश में ऐसा साहित्य रचा गया, उसके निकट जाना ही चाहिये। जिसने उसे रचा, उसके बारे में जानना चाहिये और उस 'ग्रन्थ' को पढ़ना चाहिए जिससे ऐसी बात कही गई है।' उपर्युक्त पंक्तियों से प्रेरित हो नवम्बर सन् 1935 में अपनी मातृभूमि त्याग कर जीवन पर्यन्त भारतीय नागरिकता लेकर भारत में ही रहे। उनके जीवन की दो कमजोरी मानी जाती थी। एक तुलसी, दूसरी हिन्दी। वर्षों पूर्व हमारे यहाँ आयोजन में कानपुर पधारने पर निकटवर्ती मंधना कस्बे के शिक्षकों के बिना पूर्व निश्चित कार्यक्रम के क्षणिक निवेदन मात्र से बाबा बुल्के तुलसी पर बोलने चले गए। उनको देश के कोने-कोने से आमंत्रित करने पर वह सहजता से जाते थे और प्रायः कहा भी करते थे –

सबहिं नचावत राम गोसाईं। मोहिं नचावत तुलसी गोसाईं।।

हिन्दी के किसी भी विद्वान की तुलना में तुलसी विदेशों में अत्यधिक लोकप्रिय हैं। रूस जैसे साम्यवादी अनीश्वरवादी देश के तुलसी भक्त रूसी विद्वान अकादमीशियन अलकसई बारान्निकोव ने साढ़े दस वर्षों में रूसी भाषा में 'मानस' का पद्यानुवाद किया। द्वितीय महायुद्ध के संघर्षकाल में बरान्निकोव के इस महान कार्य से प्रभावित हो रूस का सर्वोच्च सम्मान 'ऑर्डर ऑफ लेनिन' प्रदान किया गया। रूस के तुलसीदास नाम से चर्चित बारान्निकोव ने एक वसीयत की थी, जिसमें उन्होंने कहा था कि तुलसी रचित अपनी सर्वाधिक प्रिय अर्द्धाली भलो भलाइहिं पै लहैं (अर्थात् भले व्यक्ति भलाई तथा दुर्जन बुरे कार्य ही करते हैं जैसे कि अमृत का कार्य अमरत्व तथा विष का कार्य मारण) का रूसी भाषा में अनुवाद करवाकर व साथ ही साथ देवनागरी हिन्दी में भी उनकी कब्र पर अंकित किया जाय। लेनिनि के निकट 'कोमोरोव' स्थित उनकी समाधि पर तुलसी समर्पण की साकार स्मृति को देख सकते हैं। प्रख्यात गीतकार नीरज जी की इन पंक्तियों में तुलसी भक्त रूसी विद्वान के प्रति भावांजलि में कहा– *गंगा–बोल्गा के एक सेतु तुम बरान्निकोव, तुलसी में रमकर खुद तुलसीमय हो गए। भारत से प्रेम किया इतनी गहराई से, रूस और भारत के एक हृदय हो गये।।* विदेशी शंकराचार्य के रूप में चर्चित डॉ० लुइजि पियो तैस्सीतोरी

संसार के वे प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने तुलसी के 'रामचरित मानस' पर शोध कार्य किया। 'मानस' में वर्णित रामकथा और उसके चरित नायक श्रीराम तैस्सीतोरी को इतना भाये कि इटली के फ्लोरेन्स विश्वविद्यालय से सर्वप्रथम सन् 1911 में उन्होंने तुलसीकृत 'रामचरितमानस और वाल्मीकि रामायण' शीर्षक शोध ग्रंथ लिखने के बाद वह भारतवासी हो गए। इटली के उदीनेग्राम में सन् 1887 में जन्मे तैस्सीतोरी ने जिस अटूट लगन, अनवरत परिश्रम और गम्भीर अध्ययन से तुलसी और हिन्दी को स्थापित किया, वह समस्त शोधार्थियों के लिए प्रेरणाप्रद है। अनुवादक रूप से तुलसी को स्वतंत्र रूप प्रदान कर स्वर्णिम गरुड़ बनाया। तैस्सीतोरी ने मात्र 31 वर्ष के जीवनकाल में लगभग 40 पुस्तकें विभिन्न विषयों पर मातृभाषा इतालवी के अलावा अंग्रेजी, लैटिन, ग्रीक, संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी, डिंगल, खड़ी बोली, बृज आदि भाषाओं का गहन अध्ययन कर लिखा। "शंकराचार्य और रामानुजाचार्य का तुलसी पर प्रभाव" "बैसवाड़ी व्याकरण का तुलसी पर प्रभाव" चर्चित कृतियों के अतिरिक्त राजस्थान की रेतीली तप्त भूमि में घूम-घूम कर पुरातत्व पर भी काफी कार्य किया। भारत में 8 अप्रैल 1914 को पदार्पण किया और 22 नवम्बर 1918 को बीकानेर में वह चिरनिद्रा में विलीन हो गए। प्रख्यात भाषाविद् सुनीति कुमार चाटुर्ज्या तथा श्री हजारीमल बांठिया के सद्प्रयत्नों से उनकी समाधि निर्मित की गई। मानस को विज्ञान से सम्बद्ध करने वाले मनीषी डॉ. रामलषन सचान की प्रस्तुत पंक्तियों में इस इतालवी विद्वान के प्रति सुमन अर्पित कर रहा हूँ–

तन मिला इटली से मन, मिला भारत से। तन मन से बन गये, हिन्दी के निवासी।।

हिन्दी शोध कार्य के, प्रथम उत्तराधिकारी। करते प्रणाम तुम्हें, मेरे देशवासी।। सन् 1940 में शांति निकेतन में तुलसी जयंती के अवसर पर विश्वकवि गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर के उद्‌गार के कुछ अंश तुलसी के कृतित्व को समझने के लिए पर्याप्त है –

'जहाज की ध्वजा उसका गौरव वृद्धि भले ही करे, जहाज संचालन में उसकी सहायता का कोई हाथ नहीं होता। मेरी भी वही अवस्था है। तुम्हारी इस स्मृति सभा में मेरी उपस्थिति से यत्किंचित गौरववृद्धि भले ही हो, तुलसीदास का प्रकृति परिचय देने में यह सहायक नहीं हो सकती। तुलसीदास समस्त देश को रस से पुष्ट करते हैं उनकी कर्म कुशलता भाषा को नये सिरे से गढ़ती है। चिन्तन प्रणाली को नया रूप देती है। मानव चित्त को नवीन प्रेरणा से उद्‌बुद्ध करती है। मानस में उनकी यथार्थ प्रतिभा का प्रकाश है। भक्ति के द्वारा जिस व्याख्या से उन्होंने रामायण को अभिनव परिस्थिति प्रदान कीहै, वह साहित्य की असाधारण देन है। इस व्यापक चित्त क्षेत्र से तुलसीदास का अधिकार किसी भी युग में नहीं हट सकता। उनका अनुदान स्थायी महान प्रतिभा के विकास को वहन करते हुए काल के प्रभाव का अतिक्रमण करके सदा सर्वदा देश को समृद्ध करता रहेगा।''

इस अवसर पर गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर ने तुलसी के प्रति सर्वप्रथम परिचय का चित्रण करते हुए कहा –

'मुझे याद है, बचपन में प्रतिदिन साँझ के समय डयोढ़ी के चौकीदार तुलसीदास की रामायण को गाकर पढ़ा करते थे। इस पाठ के भीतर से मानो अमृतरस प्राप्त करके सारे दिन की थकान को भूल जाते अपने अवकाश के समय को रसमय कर लेते थे। उन्हीं के भीतर मैंने तुलसीदास की सार्वभौम प्रतिभा का पहले-पहल परिचय पाया था।''

सर्वहारा के जनकवि तुलसी का सर्वप्रथम परिचय गुरुदेव ने हृदयग्राही ढंग से व्यक्त किया है। संभवतः इसी भावना से प्रभावित साहित्य मर्मज्ञ आचार्य सीताराम चतुर्वेदी ने वर्तमान तुलसी भक्तों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया सर्वप्रथम तुलसी रामकथा के प्रवचन से अर्थोपार्जन करने वाले कथावाचक दूसरे डी.लिट्, पी.एच.डी. आदि उपाधियों से विभूषित तुलसी साहित्य पर लेखन वाचन से वेतन द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले तीसरे वर्ग में तुलसी के प्रति निष्पृह भाव से पूर्णरूपेण समर्पित जन सामान्य आज से 150 वर्षो पूर्व जो हमारे पूर्वज फिजी, मॉरीशस, सूरीनाम, गयाना आदि देशों गिरमिटिया मजदूर बनकर गए थे- अपने वे भारतीय श्रमिक तुलसीकृत रामचरित मानस तथा हनुमान चालीसा को संबल रूप में साथ लेकर गए थे – आज वह लोग वहाँ के सर्वोच्च राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्री आदि पदों पर विराजमान हैं। वे लोग गौरवपूर्ण ढंग से तुलमी के मानस का बखान करते नहीं अघाते।

अंग्रेजों ने जब अपने उच्च प्रशासनिक सेवा इंडियन सिविल सर्विस (आई.सी.एस.) के पाठ्यक्रम में भारतीय समाज की जानकारी विषयक ग्रंथ की खोज प्रारम्भ की थी तो फोर्ट विलियम कॉलेज कलकत्ता के बहुभाषी विद्वान मुंशी अदालत खाँ ने 'रामचरितमानस' को सुझााया। तत्कालीन विदेशी शासकों ने मुंशी अदालत खाँ से उसके 'अयोध्याकाण्ड' का अंग्रेजी में अनुवाद सन् 1871 ई. में कराया और आचार संहिता के रूप में अध्ययन अध्यापन का शुभारम्भ किया। उसकी पाण्डुलिपि नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता में सुरक्षित है।

इस अवसर पर कुछ ऐसे लोग भी है। जो पावन स्मरण न कर तुलसीदास के जन्मस्थान का समाप्तप्रायः विवाद का अरण्य रोदन कर पत्र-पत्रिकाओं में बुद्धि विलास का प्रदर्शन करते हैं। कई दशाब्दि पूर्व स्वतंत्रता सेनानी, भारतीय संस्कृति के इतिहास पुरुष भाई जी हनुमान प्रसाद पोद्दार ने एक विद्वत समिति बनाकर मानस के विभिन्न पाठ भेदों का निरूपण तथा जन्मस्थान का निर्णय भी करा दिया था। पोद्दार जी की गीता प्रेस से अनेक संस्करण करोड़ों की संख्या में देश-विदेश में तुलसी-प्रेमियों के यहाँ है। उनके सभी मानस या तुलसी के अन्य प्रकाशनों में यमुनातट पर स्थित चित्रकूट के निकट (पूर्व जनपद बाँदा तत्कालीन चित्रकूट जनपद) राजापुर ग्राम को जन्मस्थान करोड़ों व्यक्ति पढ़ते और मान्यता देते हैं। इसी आधार पर बाँदा के यमुनातट स्थित राजापुर में पूर्व मुख्यमंत्री उ. प्र. पं. गोविन्द बल्लभ पन्त तुलसी स्मारक समिति बनाकर लाखों रुपये की लागत से विशाल तुलसी स्मारक भवन की स्थापना भी करा चुके हैं। महाकवि निराला ने अपने 'तुलसीदास' खण्डकाव्य में यमुना तट स्थित राजापुर जन्मस्थान को ही लिखा। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त तथा राष्ट्रकवि पं. सोहन लाल द्विवेदी तथा महीयसी महादेवी वर्मा प्रभृति साहित्य मनीषियों ने भी गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित राजापुर को ही माना।

आज तुलसी जयन्ती के पुण्य पर्व पर ऐसे तुलसी भक्तों को विस्मृत न करते हुए लंदन विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा विज्ञान विभाग के अंग्रेज हिन्दी विद्वान लेखक तथा अवधी-बृजभाषा के कविवर डॉ. रूपर्ट स्नेल की प्रस्तुति रेखांकित पंक्तियों से गोस्वामी तुलसीदास को श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ–

....रिषि मुनि तपसी यों करें शून्य को मन ध्यान, शून्य ही यह जगत है, बिन मुनि बंशी तान।

......बुलबुल सी बानी बनी, गुलसी छवि अविनास। हुलसी अति मति सीय की छवि लखि तुलसीदास।।

(हिन्दुस्तान से साभार)

लक्ष्मण, सीता और मित्रों सहित रामचन्द्र बनवास की अवधि समाप्त कर जब वापस लौटे तो यतिवेशधारी भरत ने मानो अपने जन्म-जन्म का पुण्यफल पा लिया– उनकी खुशी की सीमा नहीं थी। अवधपुरी के निवासी भी अपना सर्वस्व पा गये थे। भरत को अपना प्राणप्रिय भाई मिला, उर्मिला को अपना पति मिला, माताओं को अपने नयनतारे पुत्र मिले, प्रजा को अपना राजा मिला; किन्तु रामचन्द्र को जो मिला, वह किसी को नहीं मिला। अवध की भूमि की धूलि को बार-बार अपने सिर पर चढ़ाते हुए प्रेमार्द्र वाणी में रामचन्द्र ने कहा–

'जिसके सामने त्रिभुवन की सम्पदा तुच्छ है, संसार के सारे स्नेह-सम्बन्ध गौंण हैं, कीर्ति और मोक्ष जहाँ अपना मूल्य नहीं रखते, उस जन्म भूमि को यह भाग्यवान राम फिर से पा गया है।'

प्रस्तुति : सूर्य प्रकाश तिवारी

राम अपार गुणों के सागर हैं

– डॉ0 शंकराराव कप्पीकेरी

भारतीय राम भक्ति काव्य की अत्यंत सुदीर्घ परंपरा रही है। विश्व में रामायणों की रचना हुई है। संसार की प्रमुख भाषाओं में रामायण के अनुवाद हुये हैं। मानव चेतना का चित्रण हुआ है, मनुष्य की सीमाओं, दुर्बलताओं, कमियों व विविधताओं का वर्णन किया गया है। ऊपर उठने की कोशिश होती रही है। पर दुख, कातरता एवं पराई पीर की पहचान हुई है। मानव मूल्यों की तलाश हुई है तथा उसकी रक्षा के लिए प्रतिबद्धता भी।

राम भक्त काव्यकारों ने मानव मानव के मध्य रागात्मक संबंधों को स्थापित करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। मानव का पथ प्रदर्शन करते रहे हैं। गति का सम्बल भी देते रहे हैं। रामचरितमानस एवं अन्य रामायणों ने दिशा निर्देशन किया है समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया है। जन मानस की चेतना का जागरण किया है। 'राम कथा परहित सरिस धरम नहीं भाई, पर पीड़ा सम नाहि अधमाई' का अप्रतिम निदर्शन है।

राम कथा साहित्य में मनुष्य की अधोमुखी चेतना का ऊध्र्ववीकरण हुआ है। रामायणकारों ने मनुष्य को अपनी सीमाओं, दुर्बलताओं, कमियों, त्रुटियों के मध्य रहकर ऊपर उठने का संदेश दिया है। भक्ति आन्दोलन के माध्यम से प्रेम को महत्व दिया गया है। प्रेम तत्व की अनिवार्यता व अपरिहार्यता के कारण धार्मिक भावना सबके लिए सुलभ हो गई थी। किसी को ईश्वर भक्ति से वंचित नहीं रखा गया था। 'राम को भजे सो राम का होई' का मंत्र दिया था।

तुलसी का रामचरित मानस पलायन का काव्य नहीं है। वह गृहस्थाश्रम की समस्याओं से जूझने का काव्य है। तुलसी उन ज्ञान वैराग्य के पक्षधर नहीं, जिसमें व्यक्ति पारिवारिक माया मोह में फंसकर काम, क्रोध लोभ, छल, कपट और दंभ का जीवन बिताता रहता है। आपके अनुसार वहीं गृहस्थ उत्तम है, जो आसक्तियों के बीच रहकर उनसे ऊपर रहता है।

रामचरितकारों का प्रयास रहा है कि मनुष्य पहले मनुष्य बने, तभी वह भक्त व साधक बन सकता है। साधना की पराकाष्ठा वहाँ होती है, जब भक्त चराचर जगत में अपने प्रभु को ही निहारने लगता है। वह तो प्रेममय हो जाता है। 'सियाराम मय सब जग जानी' ही लोकोन्मुख दृष्टि रही है। लोक संग्रही वृत्ति पर जोर दिया गया है। मनुष्य के मनुष्यत्व को जगाने का सुप्रयास हुआ है। रामकथाकारों का चिंतन अध्यात्म प्रधान होतु हुए भी मानव केन्द्रित चिन्तन रहा है। मानस चिंतन परंपरा में प्रमुख ग्रंथ है।

रामकथाकारों ने नर में नारायण को खोजने का प्रयास किया है। पात्रों के चरित्र तथा रामायण के आदर्श सामाजिक, पारिवारिक संबंध ही वे प्रेरणास्रोत हैं जो मनुष्य को टूटने नहीं देते। उसकी मनुष्यता को जगाए रहते हैं। तुलसी के प्रेम प्यार की व्यापकता द्वारा मानव-मूल्यों की रक्षा संभव है। राम कथा ने सचमुच ही मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

तुलसी के राम अनन्त सौन्दर्य, अपार शक्ति और अनुपम [illegible] समन्वित पुरुषोत्तम हैं। वे धर्म रक्षक और सद्धर्म के कवचरूप हैं। सब गुणों के आगार हैं। तुलसी ने प्रभु के कृपालु करुणायतन, कृपासिन्धु, करुणा, सुख सागर, सुख धाम रूप का बार-बार स्मरण किया है। तुलसी के प्रभु सबके प्रति समदृष्टि रखते हैं। सहज उदार हैं, फिर भी जन रंजन और भक्त कल्पतरू हैं।

तुलसी ने सैद्धान्तिक रूप से ब्रह्म के राम के निर्गुण व सगुण दोनों रूपों को स्वीकार किया है। लेकिन उन्हें प्रभु का सगुण रूप ही भाता है। तुलसी ने स्वीकार किया है कि जगत में जब जब धर्म की ग्लानि होती है, उसका निरन्तर ह्रास होने लगता है। जब-तब प्रभु अवतरित होते हैं और दैवी प्रवृत्तिवाले संतों, सज्जनों की पीड़ा दूर करते हैं। स्वाध्याय तप, परायण ब्राह्मण सर्वदेव मयी गौ, दैवी प्रवृत्ति के प्रतिनिधि देवगण और भगवत्परायण संतों की रक्षा

के लिए परमात्मा मनुष्य रूप में अवतार लेते हैं। प्रभु के अवार लेने में उनकी भक्त वत्सलता मुख्य कारण है।

मानस में भगवान के सहज कृपालु, दीन दयालु, दीन जनप्रेमी स्वरूप का उल्लेख हुआ है। तुलसी ने मातृत्व के स्वरूप को महत्ता प्रदान की है, वात्सल्य को महत्ता दी है। श्रीराम को आदर्श समत्व योगी के रूप में प्रस्तुत किया है। तुलसी ने प्रत्येक काण्ड के सम्बद्ध व्यंजक स्तुतियां दी हैं।

तुलसी ने मंत्र-तंत्र के माध्यम से समाज को युद्ध में विजय प्राप्त करने की प्रेरणा नहीं दी है। आपने धर्मनिष्ठ बनकर अधर्म की शक्तियों को परास्त करने की दी है। राम स्वयं साक्षात साकार धर्मरूप ही हैं। राम के धर्मरक्षक और अधर्म विनाशक का परिचय दिया है। राम को करुणावान और मिथ्यामद भंजक, सब प्रकार से कुशल और अयोध्या का भूषण कहा है। राम का नाम कलियुग के पापों को मथ डालने वाला और ममता को मारने वाला है। प्रभु राम भक्तों के भाव मात्र को ग्रहण करने वाले और अत्यंत कृपालु हैं। जानकी नाथ राम अपार गुणों के सागर हैं।

– व्ही0 पी0 नगर, गुलबर्गा - 585105

अद्भुत प्रतिभा के धनी भारतेन्दु काल के देदीप्यमान नक्षत्र श्री राधाचरण गोस्वामी ने साहित्य, समाज, संस्कृति, राजनीति आदि विभिन्न क्षेत्रों को एक साथ आलोकिक किया। वे देश भक्ति को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सकलार्थ साधिनी कहा करते थे। श्री गोस्वामी जी के द्वारा समाज, देश एवं राष्ट्र के सम्पूर्ण क्षेत्रों में की गई विभिन्न सेवाओं के लिए देश उनका चिर ऋणी है। इसलिए तो 20 नवम्बर सन् 1887 ई. को ''हिन्दोस्थान' पत्र ने अपने सम्पादकीय में गोस्वामी जी को 'युग का महापुरुष' माना था। जब पंजाब केशरी लाला लाजपतराय सन् 1906 और सन् 1908 में वृन्दावन पधारे तो दोनों बार गोस्वामी जी ने एक मुख्य वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य होते हुए भी लाला जी की बग्घी के घोड़ों को खुलवाकर स्वयं ही उनकी बग्घी को खींचने में गौरव का अनुभव किया था।

(श्री गोस्वामी राधाचरण जीः व्यक्तित्व तथा कृतित्व से)

प्रस्तुति मदन मालवीय

यह भगवद्-भक्ति का प्रमुख अंग है

— डॉ0 गजानन शर्मा

परमात्मा शाश्वत , सनातन और चिरन्तन तत्व है । यह सृष्टि के पूर्व भी था, सृष्टि के आरंभ में भी था और सृष्टि की स्थिति में भी संस्थित है । सृष्टि के अन्त में भी रहेगा और सृष्टि के अभाव में भी उसकी स्थिति बनी रहेगी । इस प्रकार उसकी सत्ता त्रिकालाबाधित तथा अविनश्वर है । उसी की मायाशक्ति के वश में सम्पूर्ण विश्व संचालित हो रहा है । ब्रह्मादि देवगण, दैवी शक्तियाँ उसी के निर्देश और नियंत्रण में अपने दायित्वों का संपादन कर रहे हैं । वह जगत् के समस्त कारणों का मूल कारण है, किन्तु उसका कोई कारण नहीं, यह समस्त कारणें से परे है । हमारी वाणी, चक्षु आदि इन्द्रियाँ तथा मन उस विराट्, अनन्त सत्ता तक पहुँचने में असमर्थ है । फिर उसका वर्णन तो असंभव ही है । वहाँ वाणी मौन और भाषा विवश-असहाय-निःशब्द हो जाती है । वेदकी अपौरुषेय वाणी 'नेति-नेति' कहकर उसकी इन्द्रियबोधातीत स्थिति का संकेत करती है । वेद **'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'** कहकर मन-वाणी आदि की असमर्थता और सीमा का निर्देश करते हैं । महामति व्यामजी की समाधि भाषा भागवत विनम्र भाव से स्वीकार करती हे कि पृथ्वी के रजकण गिन पाना कदाचित संभव हो सकता है, किन्तु परमात्मा के गुणों की गणना कदापि संभव नही है । प्रभु चरणों में अपने जीवन और अहंको समर्पित/विसर्जित कर देने वाले सन्त भी यही कहते हैं कि संपूर्ण पृथ्वी को कागज बना दिया जाए, सातों महासागरों की स्याही बना ली जाए, समस्त वनस्पतियों की कलम बना ली जाए, तो भी भगवान् के गुणों का लिख पाना संभव नहीं है । उस महा-महमा-सम्पन्न विराट् के सम्मुख मानव-बुद्धि की बिसात ही क्या है? **'महिमा अमित मोरि मति भोरी । रवि सम्मुख खद्योत अँजोरी ।'**

जिसकी सत्ता से हमारी सत्ता है, जिसकी चिन्मयता हमारी चेतना का मूल है, जिस असीम-अगाध/अथाह आनन्द के एक कणमात्र से विश्व के समस्त प्राणी सुख और आनन्द की अनुभूति करते हैं — जो आनंद सिन्धु सुखरासी । सीकर तें त्रैलोक्य सुपासी' है, उस महामहिमावान् प्रभु के सम्मुख अपनी विवश, नगण्य स्थिति का अनुभव करने के उपरान्त भी ज्ञानी और भक्तजन उसका गुणगान किये बिना रह ही नहीं पाते — सब जानत प्रभु प्रभुता सोई तदपि कहे बिनु रहा न कोई ।' जबसे मनुष्य ने बोलना सीखा है, जबसे उसने भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाया है, तबसे वह उस विराट् व्यापक-अनन्त अखण्ड परसत्ता के सौन्दर्य — शक्ति - गुण - रूप - नाम - लीला को हर्षविभोर होकर अपनी अटपटी वाणी में गाकर शान्ति और आनन्द पाता रहा है, वाणी को सार्थक करता रहा है । परमसत्ता के प्रति हर्ष, विनय, विनम्रता, पुकार, महिमागान, आत्मनिवेदन, क्षमा-भावना, आश्चर्य भावों से भी हुई सहज स्फुट होने वाली उक्तियाँ ही स्तुति बन जाती हैं ।

ऋग्वेद क्रान्तद्रष्टा मनीषियों के हृदय से उद्भूत स्तुतियाँ हैं । संस्कृत वाङ्मय में स्तुति/स्तोत्र साहित्य का समृद्ध भंडार है । श्रीमद्भागवत तो स्तुतियों का सागर ही है । भागवतकार को जहाँ भी और जब भी अवसर मिलता है, तब वह किसी-न-किसी पात्र के माध्यम से भगवान् के किसी-न-किसी स्वरूप की स्तुति करने लगता है । भागवतकार का कथन है कि महाप्रज्ञ महापुरुषों के अनुसार, तप, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, सत्यभाषण, ज्ञानसाधना, दान, आदि समस्त सत्कर्मों का अक्षय फल यही है कि हममें भगवद् गुनगान की रुचि, प्रवृत्ति और क्षमता आये । भागवत में एक विद्वान के अनुसार, छोटी-बड़ी एकसौ चालीस स्तुतियाँ हैं । अध्यात्म रामायण में भी स्तुतियों का भंडार है । इन स्तुतियों में गहन दार्शनिक तत्वों का भी सुन्दर समावेश है । तुलसीकृत रामचरितमानस पर भी श्रीमद्भागवत और अध्यात्म रामायण का गहरा प्रभाव है । रामचरितमानस का आरम्भ वन्दना/स्तुति से ही होता है । वंदना भी स्तुतिका एक रूप है । बालकाण्ड का बहुत बड़ा भाग वन्दनात्मक स्तुतियों से समृद्ध है । मानस के प्रत्येक कांड का आरंभ संस्कृत स्तुति से ही हुआ है । जहाँ और जब भी अवसर मिला है, तुलसीदास जी ने विभिन्न पात्रों से स्तुतियाँ

करवायी है। हिन्दी के भक्ति साहित्य में भी विपुल स्तुतियाँ उपलब्ध हैं। स्वयं तुलसीदास जी की विनयपत्रिका मे अनेक, विविध, भावात्मक तथा प्रभावपूर्ण स्तुतियाँ हैं।

स्तुति भगवद्-भक्ति का प्रमुख अंग है। श्री शंकराचार्य जैसे महान् दार्शनिक ने भी अनेक मधुर एवं भावप्रवण स्तुतियाँ रची हैं। भगवान् की सर्वसमर्थता, कर्तु-अकर्तु-अन्यथाकर्तु क्षमता और अपनी असमर्थता, भगवान् की असीम, अकल्पनीय शक्तिमत्ता और अपनी अत्यन्त शक्तिहीनता, भगवान के असंख्य अलौकिक, अद्भुत गुण-गण और अपनी कल्मषपरता, दोषमयता देखकर, भक्त यदि गा उठे—

'राम सों बड़ों है कौन मो सों कौन छोटो। राम सों खरो है कौन मों सों कौन खोटो।।'

तो यह भक्त का घिघियाना या उसकी हीनता का द्योतक नहीं है, यह विराट् सत्ता की महिमा के सम्मुखस विनय एवं समर्पणशील आत्मा का सहज निवेदन है। इसमें भक्त को सुख, संतोष और शान्ति मिलतीहै। शिव-भक्त उपमन्यु ने शिव-स्तवन में कहा है — "हे प्रभो! आपकी सतत स्मृति परम पवित्र और पतित-पावनी है, लेकिन उस स्मृति में यदि स्तुति का योग हो जाए तो कहना ही क्या है। उसकी महिमा तो बताई नहीं जा सकती है। जैसे दूध तो स्वभाव से ही मधुर होता है यदि उसमें मिसरी या शक्कर घोल दी जाए तो उसके स्वाद मे जो माधुर्य बढ़ जाता है, वह तो अवर्णनीय ही है।

"त्वदनुस्मृतिरेव पावनी स्तुतियुक्त न हि वक्तुमीश सा। मधुर हि पयः स्वाभावतो ननु कीदृक् सितशर्करान्वितम्।।"

वैधी भक्ति में मंत्र एवं क्रियाएं प्रधान होती हैं। जब वैधी भक्ति परम प्रेममय, दिव्यानुरक्ति से सम्पन्न भावप्रवण स्तुतिसे युक्त हो जाती है, तो धीरे-धीरे भक्त को प्रेमलक्षणा भक्ति प्राप्त होने लगती है। इसलिए भक्ति के साधनों में स्तुतिगान को एक प्रमुख और अनिवार्य साधन के रूप में श्रीमद्भागवत में स्वीकार किया गया है —'परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम।' ब्रजांगनाओं ने प्रभु के अन्तर्धान होने पर हृदय की गहराई से अनुभव किया था कि भक्त कवियों के द्वारा किया गया प्रभु का गुणगान, उनकी स्तुतियाँ तो अमृतरूप हैं, वे त्रितापों से संतप्त जीवों को नवजीवन प्रदान करती हैं, जीवन का आधार-सम्बल बनती हैं। प्रभु का स्तुत्यशात्मक गुणगान सभी रोग-दोष पापों को नष्ट कर देता है। प्रभु के गुणों का गान सुनना ही मंगलकारी है, वह श्रवणमंगल है। जो स्तुतियों के द्वारा प्रभु का गुणगान करते हैं, वे जगत् में सबसे बड़े दाता हैं, क्योंकि वे अमृत का दान करते हैं।

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्। श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः।।

गोपिकाओं ने स्तुतिगान किया, प्रभु के दर्शनों की लालसा से उनकी लीलाएँ गाते हुए वे अश्रु बहाने लगीं, तब प्रभु अदृश्य नहीं रह पाये और मन्द-मन्द मुस्काते हुए उन्हें प्रकट होना ही पड़ा। ऐसी अद्भुत शक्ति है स्तुति में। तुलसीदास जी द्वारा रचित रामचरितमानस की स्तुतियाँ भी ऐसी ही उत्कृष्ट कोटिकी हैं। उन्हें गाते हुए भक्तगण देहानुसन्धान भूल जाते हैं और भगवद्भाव-विभोर हो जाते हैं। देश-काल-पात्र आदि का व्यवधान विस्मृत हो जाता है। स्तुतियों का गायक उन स्तुतियों में अपनी ही भावनाओं की अभिव्यक्ति का अनुभव करने लगता है। तब भाव-समाधि जैसी स्थिति हो जाती है।

सामान्यतः स्तुतियों में परमात्मा के नाम की महिमा, उनके रूप सौन्दर्य का चित्रण उनके दिव्य गुणों का गान, उनकी भक्तों के रंजन और रक्षण के लिए की गयी अलौकिक लीलाओं का भावपूर्ण वर्णन, प्रभु-प्राप्ति के उपायों का निर्देश, भक्त-हृदय की आकांक्षा आदि का समावेश होता है। अनेक स्थलों पर भक्ति के सिद्धान्तों और दार्शनिक रहस्यों का संकेत भी मिलता है। स्तुतिकर्ता के जीवन से भी स्तुति का गहरा सम्बन्ध होता है, उसके जीवन और मानस की पृष्ठभूमि में स्तुति का प्राकट्य होता है। इस प्रकार स्तुतियों में निज भावभूमि की झलक भी मिलती है। अहल्या द्वारा की गयी स्तुति में नारी जीवन की विवशता, शबरी की स्तुति में अतिशय भाव-प्रवणता, बाली में तार्किकता, परशुराम में क्षमा याचना का भाव, वाल्मीकि में शास्त्रीय सिद्धान्तों की सार ग्राहकता आदि सहज ही दृष्टिगोचर होते हैं। इससे स्तुतियों में प्रभूत वैविध्य और वैशिष्ट्य भी दर्शनीय है। तुलसीकृत स्तुतियों में युगीन स्थितियों की छाया भी स्पष्ट है, यह तथ्य उनके द्वारा रचित स्तुतियों का अध्यात्म रामायण और भागवत में

उपलब्ध स्तुतियों से तुलनात्मक अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है।

रामचरितमानस की स्तुतियों में भगवान् के सुन्दर स्वरूप निरूपण की विपुलता है। तुलसीदास को प्रभु के निर्गुण और सगुण दोनों ही स्वरूप सिद्धान्ततः सहज स्वीकार है –

जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही। (जटायु)

जय निर्गुन जय जय गुन सागर। (सनकादि मुनि)

जय सगुन निर्गुन रूप (चारों वेद)

अगुन सगुन गुन मंदिर सुन्दर (शंभु)

जब तुलसीदास राम के निर्गुण स्वरूप का वर्णन करते हैं, तब वे उन्हें निर्गुण, निर्विकार, निरुपाधि, अनीह, अरूप, अनाम, केवल, तुरीय, सच्चिदानन्द, विशुद्ध, बोधविग्रह, निजानन्द के रूप में निरूपित कहते हैं। भगवान् के इस निर्गुण स्वरूप को इन्द्रियातीत, अगोचर अविगत, अकथ, गिरा-ज्ञान-गोतीत, मन-बुद्धि से परे, कहा है। परमात्मा के अज, अद्वैत, अनादि, अनन्त अपार और अनुभवगम्य स्वरूप की ओर तुलसीदास ने अनेक स्तुतियों में बारम्बार संकेत किया है। परमतत्त्वके इस स्वरूप की वे उपेक्षा नहीं करते किन्तु उसकी इन्द्रियातीत अविगत अकथ स्थिति को बराबर रेखांकित करते रहते हैं।

तुलसीदास श्रीराम के सगुण रूप का वर्णन करने में तन्मय हो जाते हैं। उनके राम अनन्त सौन्दर्य, अपार शक्ति और अनुपम शील-समन्वित पुरुषोत्तम हैं। वे श्रुति-सेतु-पालक, धर्मरक्षक और सद्धर्म के कवच रूप हैं, सब गुणों के आगार हैं। तुलसीदास प्रभु के करुणायतन, कृपालु, कृपासिन्धु, करुणा-सुख -सागर, सुखधाम रूप का बारम्बार स्मरण करते हुए अघाते नहीं हैं। उनका विश्वास है कि प्रभु केवल दयालु ही नहीं, अपितु कारण रहित दयालु हैं। वे सबके प्रति समदृष्टि रखते हैं, सम हैं, सहज उदार हैं, फिर भी जनरंजन और भक्त कल्पतरु है –

'समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ।।

भक्तों को वे अपार आनन्द देते हैं तथा उनकी कामनाएँ पूरी करते हैं। लेकिन भक्त भी ऐसे हैं कि प्रभु से केवल भक्ति और कामादि दोष-रहित मानस की ही आकांक्षा रखते हैं – भक्तों का भगवान से सहज और निस्वार्थ प्रेम होता है।

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु। – तुलसीदास – सुन्दर काण्ड

नाथ भगति अति सुखदायनी, देहु कृपा करि अनपायनी। – हनुमान

भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे,

कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च। – वाल्मीकि

प्रभु भक्तों से केवल प्रेम चाहते हैं – 'रामहिं केवल प्रेम पिआरा।' वे भावगग्राहक हैं और भाव से ही वश में हो जाते हैं, भाववश्य प्रभु।

सैद्धान्तिक रूप से तुलसीदास ब्रह्म के, राम के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को स्वीकार करते हैं, लेकिन उन्हें प्रभु का सगुण रूप ही भाता है। जब भी वे अवसर पाते हैं तभी विभिन्न पात्रों के माध्यम से भगवान् के सगुण साकार स्वरूप के प्रति विशेष रुचि प्रकट करना नहीं चूकते हैं –

कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव, अब्यक्त जेहि श्रुति गाव।

मोहि भाव कोसल भूप। श्रीराम सगुन सरूप।। –इन्द्र

मम हियँ बसहु निरन्तर, सगुन रूप श्रीराम। – शरभंग

जदपि् बिरज व्यापक अविनासी। सबके हृदय निरन्तर बासी।

जदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसतु मनसि मम कानन चारी।।

जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी। सगुन अगुन उर अंतर जामी।।

जो कोसलपति राजिव नयन। करउ सो राम हृदय मम अयन।। सुतीक्ष्ण

निर्गुण सगुण-साकार रूप धारण करना एक अबूझ पंहेली है। बड़े-बड़े ज्ञानी, मननशील मुनि भी इसे सुलझाने में उलझ जाते हैं। वे यह समझ नहीं पाते कि निर्गुण सर्वव्यापी सत्ता सगुण साकार होकर अनेक प्रकार के चरित क्यों और कैसे करती है–

निर्गुन रूप सुलभ अति, सागुन जान नहिं कोइ। सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ।।

माता कौशल्या भी प्रभु के प्राकट्य के समय कहती हैं कि जिस परब्रह्म के रोम-रोम में असंख्य ब्रह्माण्डों के समूह विद्यमान है, वह मेरे उरमें आकर बसा, वह जन अनुरागी भक्तवत्सल प्रभु मेरे कल्याण के लिए साक्षात् श्री विग्रह धारण कर प्रकट हुआ। यह एक अद्‌भुत रहस्य है। इसे समझने के प्रयास में बड़े-बड़े धैर्यवान बुद्धिमानों की मति भी स्थिर नहीं रहती, भ्रमित हो जाती है –

ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम-रोम प्रति वेद कहै। मम उर सो वासी यह उपहासी, सुनत धीर मति थिर न रहै।।

भगवान् के भूतल पर अवतरित होने के अनेक कारण हैं और वे 'परम विचित्र एक तें एका' हैं। इसके कुछ सामान्य कारण इस प्रकार हैं – एक कारण तो गीता ने बतलाया है, जिसे तुलसीदास भी स्वीकार करते हैं, कि जगत् में जब जब धर्म की ग्लानि होती है, उसका निरन्तर ह्रास होने लगता है, जब महा अभिमानी आसुरी प्रवृत्तियों की बाढ़ आ जाती है तब-तब प्रभु अवतरित होते हैं और दैवी प्रवृत्तिवाले सन्तों, सज्जनों की पीड़ा दूर करते हैं – 'हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।' स्वाध्याय तप-परायण ब्राह्मण, सर्वदेवमयी गौ, दैवी प्रवृत्ति के प्रतिनिधि देवगण और भगवत्परायण संतों की रक्षा के लिए परमात्मा मनुष्य रूप में अवतार लेते हैं –

विप्र धेनु सुर सन्त हित लीन्ह मनुज अवतार। नर तनु धरेहु संत सुर काजा।

प्रभु के अवतार लेने में उनकी भक्त – वत्सलता मुख्य कारण है –

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप। किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप।

जो परमात्मा इन्द्रियातीत है जो मन बुद्धि और इन्द्रियों से परे है, जो माया और माया के तीनों गुणों से भी परे है, जो अजन्मा है वे ही सच्चिदानन्दघन प्रभु राम के रूप में अवतरित होते हैं। निर्गुण निराकार सच्चिदानन्द परब्रह्म और सगुण साकार श्रीराम तात्विक रूप से एक ही है–

ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुर पार। सोइ सच्चिदानन्द घन कर नर चरित उदार।

प्रभु जब सगुण साकार रूप ग्रहण करते हैं तो वे जो शरीर धारण करते हैं, उसके अनुरूप इतना कुशल नाट्य करते हैं कि लोग उनके वास्तविक स्वरूप जान ही नहीं पाते। अभिनेता के अभिनय की सफलता इसी में है कि वह अभिनेय को पात्र के रूप में ही प्रतीत हो – जस काछिअ तस चाहिअ नाचा। प्रभु के नाट्यको देखकर जड़ बुद्धि मोह में पड़ जाते हैं लेकिन जो तत्त्ववेत्ता हैं, वे इस कुशल नाट्य को, लीला को निरखकर प्रसन्न होते हैं। – 'जड़ मोहहिं, बुध होहिं सुखारे।'

जब प्रभु प्राकृत नरों के अनुरूप पावन चरित करते हैं, तब भी वे प्राकृत नहीं हो जाते। उस समय भी उनकी देह चिन्मय और आनन्दमय ही होती है। उन्हें माया या प्रकृति के विकार स्पर्श नहीं कर पाते – उनका शरीर धारण करना प्रकृति वश नहीं होता। वे तो निज इच्छा से शरीर निर्मित कर लेते हैं जो कि माया या त्रिगुणों से परे होता है। वस्तुतः वे सदा अधिकारी ही रहते हैं –

निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गो पार। चिदानन्दमय देह तुम्हारी। बिगत विकार जान अधिकारी।।

अवतार दशा में भी प्रभु सदा शुद्ध, निर्विकार, सच्चिदानन्द ही रहते हैं, वे प्राकृत मनुष्य आदि नहीं होते। तुलसीदास जी ने इस तथ्य को नट के उदाहरण से समझाया है –

जथा अनेक वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ। सोइ सोइ भाव देखावइ, आपुन होइ न सोइ।।

इस रहस्य को न समझ पाने के कारण सती देवी को भी कष्ट उठाना पड़ा था। संपूर्ण रामचरितमानस में अनेक प्रकार से निर्गुण के सगुण होने और कुशल नाट्य करने के रहस्य को समझाया गया है। मानस की स्तुतियों में भी अनेक स्थलों पर इस रहस्य की ओर संकेत है।

परमात्मा तत्त्व के रहस्य को जान पाना मनुष्य के वश की बात नहीं। उपनिषदों के ऋषि भी कहते हैं कि प्रभु जिनका वरण कर लेते हैं, जिन पर कृपा करते हैं, उनके सम्मुख अपना स्वरूप स्पष्ट कर देते हैं – 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः' (कठ 1.2.22, मुण्डक 3.2.3) तुलसीदास जी ने भी महर्षि वाल्मीकि के द्वारा इसी वैदिक रहस्य का उद्घाटन करवाया है कि श्रीराम का स्वरूप वाणी आदि इन्द्रियों, मन और बुद्धि से परे है, अतः उस अविगत,अकथ स्वरूप के लिए वेद 'नेति नेति' कहते हैं। वे इस दृश्य जगत् के दृष्टा हैं। ब्रह्मा विष्णु, शंकर आदि देव भी उनके मर्म को नहीं जानते। वे तो उनके इशारे पर नाचते रहते हैं। जब ये त्रिदेव भी प्रभु के मर्म को जान नहीं पाते, तब और कौन जान सकता है? उन्हें तो वही जान पाता है जिसे प्रभु स्वयं ही कृपापूर्वक अपना मर्म ज्ञात करवा देते हैं। और उनका स्वरूप जानकर वह उनका ही रूप हो जाता है। यह सब केवल प्रभु की कृपा से ही संभव है –
राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर। अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह।।
जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। विधि हरि संभु नचावनिहारे।। तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा।। सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुमहिं तुम्हहिं होइ जाई।। तुम्हारिहिं कृपाँ तुम्हहि रघुनन्दन। जानहिं भगत भगत उर चंदन।।

परमसत्ता यदि तटस्थ और निरपेक्ष तत्त्व ही हो तो अध्यात्म–साधना का रस ही समाप्त हो जाये। परमात्मा केवल पूर्णतः तटस्थ न्यायाधीश ही हो तो उसके प्रति परा अनुरक्ति परप्रेम, सर्वोत्कृष्ट स्नेहरूपा भक्ति का कोई प्रयोजन ही न रहे। परमानन्द का विषय तो यह है कि वह परम निरपेक्ष होकर भी परम भावमय, रस स्वरूप है। वह कर्माध्यक्ष होते हुए भी परम प्रेममय, भावग्राहक और भाववश्य है। वह सर्वत्र सम और तटस्थ होकर भी भक्तवत्सल है। इसीलिए तो भक्त उसे पाने के लिए लालायित रहता है। इतना ही नहीं, भक्त उसके भरोसे निश्चिन्त और निर्द्वन्द्व हो जाता है। प्रभु उसकी सुरक्षा और परिपोषण ममतामयी माँके समान करते हैं–

'करऊँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।।'

प्रभु का यह स्वभाव और सहज रीति ही है कि वे समर्पित भक्तों पर अतिशय प्रेम करते हैं –

'गिरिजा रघुपति कै यह रीति। संतत करहिं प्रनत पर प्रीती।।'

प्रभु-प्राप्ति के शास्त्रों में अनेक मार्ग हैं। अनेक मनीषियों ने पृथक-पृथक साधना-पद्धतियाँ और उपाय भी दिखाये हैं। योग, जप, दान, तप, यज्ञ, व्रत, नियम आदि असंख्य मार्ग है, लेकिन रामकी कृपा प्राप्ति का सबसे सरल, सहज, सुखद, सुलभ और सुनिश्चित मार्ग निष्केवल प्रेम का मार्ग ही है। सहज, संपूर्ण और निःस्वार्थ प्रेमी पर परमात्मा की कृपा होती ही है, इस विषय में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है –

रमा जोग जप दान तप नाना मख व्रत नेम। राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम।।

सुलभ सुखद मारग यह भाई। मंगत मोरि पुरान श्रुति गाई। जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा।। – शरभंग

प्रभु–प्रेम का राजमार्ग सभी के लिए खुला है। यहाँ जाति, लिंग, वर्ग, वर्ण या किसी भी आधार पर न तो भेद है और न निषेध है। शर्त एक ही है कि प्रेम सहज, निष्कपट होना चाहिए और सब रूपों में प्रभु को ही देखना तथा सभी भावों से प्रभु से ही प्रेम होना चाहिए।

पुरुष नपुंसक नारि व जीव चराचर कोई। सर्वभाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।।

तुलसीदासजी ने तो रामचरितमानस से अंतिम रूप में यह अमिट सिद्धान्त घोषित कर दिया है कि चाहे पानी मथने से घी मिल जाये, चाहे बालू से तेल निकलना संभव हो, लेकिन परमात्मा के प्रति प्रेमपूर्ण समर्पण और भजन के बिना भव-जलधिसे पार उतरना संभव नहीं है –

बारि मथे घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल। बिनु हरिभजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल।।

इसी कारण रामचरितमानस में साधक, ऋषि, मुनि, सिद्ध, भक्त, देव, महादेव सभी एक स्वर से परम प्रेमरूपा, परम अनुरागमयी, अमृतस्वरूपा, परम फलरूपा, अविरल, अनपायनी भक्ति ही माँगते हैं। सभी की स्तुतियाँ इस परम ध्येय में निष्पन्न होती हैं –



अबिरल भगति, मागि वर, गीध गयउ हरिधाम । - जटायु

पदाब्ज भक्ति देहि मे । – अत्रि

करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह वर मागहीं । मन वचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं ।।

बार-बार बर मागऊँ, हरषि देहु श्रीरंग । पर सरोज अनपायनी, भगति सदा सतसंग ।। – शिवजी

परमानन्द कृपायतन, मन परिपूरन काम । प्रेम भगति अनापायनी, देहु हमहिं श्रीराम ।। सनकादि मुनि

भगवान् की प्रेमा-भक्ति अन्य साधनों से प्राप्य नहीं है । यह दुर्लभ परम प्रेमस्वरूपा भक्ति तो प्रभु की कृपा से किसी बड़ भागी को प्राप्य है । अतः मानस में विभिन्न भाग्यवान् महानुभावों ने कृपासिन्धु प्रभु से ही उनकी अखण्ड, अविच्छिन्न, अमिट, सुदृढ़ भक्ति की याचना की है । वास्तव में वे परम भाग्यवान् हैं, वे ही परम बुद्धिमान हैं, जो जीवन में प्रभुभक्ति की ही कामना करते हैं । भक्त-कल्पतरु - प्रभु की भक्ति ही सब सुखों की खानि है । मानस के प्रवक्ता महाभाग काकभुसुंडीजी यही याचना करते हैं । यही याचना मानवमात्र की भी होनी चाहिए –

अविरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव । जेह खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव ।।

भगत कल्पतरु प्रनतहित कृपासिन्धु सुखधाम । सोइ निज भगति मोहि प्रभु देह दया करि राम ।।-काकभुसुंडी

समस्त वेद - शास्त्रों का सार एवं सुनिश्चित सिद्धान्त यही है कि अनन्यभाव से एकाग्रमना होकर श्रीराम से प्रेम करें । प्रपंच को भुलाकर, कपट–जंजाल को छोड़कर उन्हें ही भजें ।

श्रुति सिद्धान्त इहइ उरगारी । राम भजिअ सब काज बिसारी ।।

जीवन में सहज धर्मनिष्ठ होना उत्तम है, विरक्त होना भूषण स्वरूप है, ज्ञानी बनना उच्च उपलब्धि है, जीवन्मुक्त होना चरितार्थता है और ब्रह्मपरायण होना धन्यता है, लेकिन इन सभी से बढ़कर सबसे उत्तम और दुर्लभ परम सौभाग्य है – अहंकारशून्य होकर निष्कपट भाव से प्रभु-प्रेम में तन्मय और तल्लीन रहना –

धर्मसील बिरक्त अरु ज्ञानी । जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी । सबतें सो दुर्लभ सुरराया । रामभगति रत गत मद माया ।।

भक्ति की प्राप्ति प्रेमपूर्वक भगवान् की स्तुति करने से होती है । कलियुग में तो इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय है ही नहीं ।

ऐहि कलिकाल न साधन दूजा । जोग जग्य जप तप व्रत पूजा ।। रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि । सन्तत सुनिय रामगुन ग्रामहि ।।

अविरल भक्ति, अनपायनी भक्ति और निर्भरा भक्ति की कामना मानसकी अनेक स्तुतियों में है । भगवत प्रेम का सतत, अखंड, अखंड, अबाध और अविच्छिन्न प्रवाह अविरल भक्ति है । जटायु ने प्राणोत्सर्ग करके इस दुर्लभ अविरल भक्ति को पाया था ।

प्रभु के प्रति परम प्रेम का ऐसा प्रवाह जो समस्त अवरोधक प्रतिरोधक तथा विरोधी तत्वों का मानमर्दन करते हुए अदम्य, अजेय, सहज, अकुण्ठ और तेजोदीप्त रहे वह अनपायनी भक्ति का स्वरूप है । यह केवल भगवत्कृपा लभ्य है । शिवजी, हनुमानजी, सनकादि मुनियों की काम्य यही अनपायनी भक्ति है ।

सुतीक्ष्णजी और हनुमान जी निर्भर प्रेम में मगन हैं, तथा अत्रि मुनि निर्भर प्रेम से परिपूर्ण हें भगवान के प्रति परिपूर्ण, सुभर, परम प्रेम की सर्वोच्च अवस्था निर्भरा भक्ति है । अतः तुलसी घोषणा करते हैं कि हे प्रभु ! मेरे हृदय में अन्य कोई कामना नहीं है । मैं सत्य कहता हूँ – "आप तो मुझे केवल निर्भरा भक्ति प्रदान कीजिए ।" यह निर्भरा भक्ति कामादि दोष रहित निर्मल मन में ही स्थित हो सकती है ।"

मानसकी श्रीराम- स्तुतियाँ हमारे मन में अविरल, अनपायनी और निर्भरा भक्ति की तीव्र तथा अदम्य आकांक्षा जगावें तभी स्तुतियों के पाठ की हमारे लिए सार्थकता होगी ।

आइये, हम स्तुतियों को भावपूर्वक गाकर प्रभु को पुकारें । उनकी अनुपम, अलौकिक अद्भुत छवि को हृदय में अंकित, प्रतिष्ठित करें और उन की ही कृपा से दिव्य प्रभुप्रेम प्राप्त कर धन्य हों ।

–32, शिक्षक नगर, ऐरोड्रम रोडद्ध इन्दौर -452 005

वे ही जन संपूज्य विश्व में

– श्याम बाबू ओमर शास्त्री

श्रेष्ठ जन्म पाते हैं वे जन, जो करते शुभकर्म।
नीचि योनि में जाते, जो करते अधर्म दुष्कर्म।।
जो सुगन्धि युत द्रव्य हवन कर, करते पर उपकार।
जन्म-जन्म में मिलता उनको, सुख का शुभ भण्डार।।

अग्नि आदि विद्या से रक्षित, जैसे जन विद्वान्।
होकर सबके मित्र प्रशंसित सेवा करें महान।।
जैसे करते धर्म और विद्या का वे उत्थान।
वैसे ही सब मनुज विश्व में, करे प्रयत्न महान्।।

जो करते हैं औरों के हित, धन, विद्या की वृद्धि।
जो रहकर कटिबद्ध किया करते हैं जन समृद्धि।।
वे सब रहते सुखी प्रशंसा, के बनते हैं पात्र।
ऐसे सद्पुरुषों का जीवन होता परहित मात्र।।

करते दान शिल्प ज्ञान का, जो शिल्पज्ञ विद्वान्।
समुत्कृष्ट करके जो जन का करते हैं कल्याण।।
जो अन्धे को आँख बधिर को, करते श्रवण प्रदान।
पूज्य यशस्वी बहुश्रुत हो, जग में पाते सम्मान।।

आत्म शक्तिऔ निज़ शरीर से, जो देते नित शक्ति।
भर देते सामर्थ्य बनाते शूरवीर जो व्यक्ति।।
जो औरों को पुरुषार्थी कर, करते हैं धनवान।
वे ही जन संपूज्य विश्व में हैं महान विद्वान।।

– प्रवक्ता/पत्रकार, महेवा

श्रीराम सम्पूर्ण मानव हैं, उनकी कथा मानवता की कथा है और उनका चरित मानवता का उपदेश है। शतकोटि विस्तार वाले राम के चरित को (चरितं रघुनाथस्य शतकोटि प्रविस्तरम्) अपनाकर कोई भी व्यक्ति सुख-शान्ति और उन्नति प्राप्त कर सकता है।

डॉ0 वनेश्वर पाठक
राँची (बिहार)

प्रस्तुति : मनोज तिवारी

तेरे जैसा तू ही है

— श्रीमती मालती शर्मा

पद्मासन स्थिते देवि परब्रह्म स्वरूपिणि । परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तुते ।।

हे कमल के आसन पर विराजमान परब्रह्म स्वरूपिणी देवि ! हे परमेश्वरि ! हे जगदम्ब ! हे महालक्ष्मि ! तुम्हें मेरा प्रणाम है ।

कमल का पुष्प माँ दुर्गा सहित समस्त देवी देवताओं को विशेष प्रिय है । तभी तो जब श्री राम से रावण किसी भी युक्ति से परास्त नहीं हो रहा था तब उन्होंने शक्ति प्राप्त करने हेतु माँ दुर्गा का पूजन करने का संकल्प लिया और इसके लिए हनुमान से एक सौ आठ कमल लाने को कहा । पूजन के अन्तिम दिन श्री राम ने जब शेष बचे एक कमल उठाने के लिए हाथ बढ़ाया तो वहाँ कमल नहीं था । श्रीराम आसन छोड़ नहीं सकते थे क्योंकि इससे सिद्धि के भंग होने का भय था । अतः श्रीराम ने सोचा कि मेरी माँ मुझे कमल नयन कह कर पुकारती थीं मेरे पास दो नेत्र रूपी कमल हैं क्यों न मैं माँ दुर्गा को एक नयन अर्पित करके अपना अनुष्ठान पूरा कर लूँ ऐसा विचार कर जैसे ही उन्होंने अपने हाथ से ब्रह्मास्त्र उठाया माँ दुर्गा प्रकट हो गई और उनका हाथ रोककर बोलीं कि है धैर्य धारण करने वाले साधक राम ! तुम धन्य हो तुम्हारी साधना सफल हुई तुम विजयी होंगे । महाकवि निराला ने अपनी कृति 'राम की शक्ति पूजा' मे इस का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है —

"कहती थीं माता मुझे सदा राजीव नयन । दो नील कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मात एक नयन ।''
"साधु-साधु साधक-धीर, धर्म धन-धन्य राम । कह लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम ।
होगी जय होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन । कह महा शक्ति राम के बदन में हुई लीन ।

प्रश्न यह उठता है कि सभी पुष्पों में कमल ही सब देवी-देवताओं को इतना प्रिय क्यों हैं? कमल का पुष्प भारतीय संस्कृति का एक अत्यन्त प्रिय तथा अर्थपूर्ण प्रतीक है । कमल और सूर्य का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है। सूर्य को कमलिनी का पति कहा गया है । विष्णु के चार हाथों में से एक हाथ में कमल सदैव सुशोभित रहता है। महाराष्ट्र के एक महान सन्त ज्ञानेश्वर कहते हैं — "हार्ती चे नि नीला कमलें पूजू तयां ते ।'' वह (कमल) भक्तों की पूजा करने के लिये सदैव हाथ में रहता है । शास्त्रों का कथन है कि भगवान स्वयं कमल रूप हे । इसलिये उनका पूजन कमल पुष्पों से किया जाना चाहिये । विष्णु की पूजा में सरोवर के कमल तथा तुलसीदल ये दोनों अनिवार्य हैं । यही भगवान विष्णु प्रलय काल के बाद अगाध और अपार जल राशि में बालक रूप होकर वट पत्र पर शयन करते थे और तभी उनके नाभि प्रदेश से एक डंडी पैदा हुई और उसके सिरे पर एक सुन्दर कमल खिल उठा । उसमें गर्भ के समान ब्रह्मा बढ़ने लगे और बाहर आ गये । ब्रह्मा ने आँखों खोल कर चारो ओर देखा और अपनी कमल जननी का मूल स्थान खोजने लगे तथा उन्होंने अगाध जल में डुबकी लगाई और उन्हें कमल की जड़ मिल गई तथा मुट्ठी भर मिट्टी भी उनके हाथ में आ गई । ऊपर आकर ब्रह्मा जी ने वह मिट्टी कमल के पत्ते पर फैला दी वही बाद में पृथ्वी बन गई । कमल पुष्पों में जो केसर थी वही पर्वत बनी । मध्यभाग से जम्मूद्वीप बना जिसमें हम सब रहते हैं । उसके बाहरी भाग में छोटी-छोटी पहाड़ियों वाला म्लेच्छों का देश बना । नीचे की पंखड़ियों में देव लोक का निर्माण हुआ । इस प्रकार चौदह भुवनों के निर्माण का मूल कारण कमल ही है । ऋग्वेद में कमल की दो जातियों का उल्लेख है — पुण्डरीक (श्वेत कमल) तथा पुष्कर (नीलकमल) अथवा इन्दीवर । इसके अतिरिक्त एक जाति और भी है जिसका नाम कोकनद है जो ताम्रवर्ण का है । तैत्तिरीय ब्राह्मण में कमल माला का उल्लेख है । पंचविश नामक ब्राह्मण में कमल की उत्पत्ति नक्षत्रों के सामूहिक तेज से बताई गई है । मिस्र देश में भी अति प्राचीन कमलासना देवी

मिलती हैं। इस्लामी संस्कृति के अनुसार सातवें आसमान पर खुदा का तख्त है। उसके दाहिने भाग में कमल का फूल खिला हुआ है। महायान बौद्ध धर्म की कल्पना के अनुसार बुद्ध जब चलते थे तो जहाँ-जहाँ उनके पाँव पड़ते थे वहाँ कमल उग आते थे। माननीय कला दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान डॉ0 आनन्द कुमार स्वामी से किसी ने पूछा कि वह कौन सी वस्तु है जिसके बिना भारतीय साहित्य तथा शिल्प सूना हो जायेगा? डॉ0 आनन्द ने तत्काल उत्तर दिया – ''कमल''. यह बात निर्विवाद सत्य है यदि कमल न होता तो महाकवि कालिदास ने कामदेव के समान सुन्दर राजा अज के नेत्रों की उपमा किससे दी होती? यदि कमल पत्र न होता तो शकुन्तला ने दुष्यन्त को प्रणय पत्र किस पर लिखा होता। पंडित राज जगन्नाथ की मार्मिक कमल अन्योक्ति अनूठी है –

भ्रमरश्व मारुतेऽस्मिन् मा सौरभ लोभमम्बु जिनि मंस्थाः लोकानामेव मुदे महितोऽप्यात्मामुनार्थितां नीतः।।''
अर्थात् हे कमलिनि! यह वायु तुझसे छेड़छाड़ करता है, परन्तु भौंरे के समान तेरे सौरभ का स्वार्थी नहीं यह याद रखना। वह तेरे पास याचक बन कर आया है और वह तेरी सुगन्ध चारों दिशाओं में फैला कर लोगों का मन आनन्द से भर देता है। भतृहरि कहते हैं कि सरोवर में कमल न हो तो उसके हृदय में शूल उठता है और यह बात सही भी है कि कमल और जल की शोभा अन्योन्याश्रित है किसी ने ठीक ही कहा है – पयसा कमलं कमलेनपयः। पयसा कमलेन विभाति सरः - जल से कमल की शोभा है और कमल से जल की शोभा है तथा जल और कमल इन दोनों से सरोवर सुशोभित है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कमल की लोकप्रियता सार्वभौम है। पद्म पुराण सहित अनेक पुराणों तथा व्रत कथाओं में स्थान-स्थान पर कमल की प्रशंसा की गई है। कमल सप्तमी नाम का एक व्रत भी है जो चैत्र शुक्ल सप्तमी के दिन किया जाता है। एक कवि ने कमल की महिमा का बखान करते हुये ठीक ही कहा है – ''हे पुण्डरीक! लोक धात्री लक्ष्मी तुझमें निवास करती है। सारे जगत के मित्र सूर्य का तुझ में अनन्य प्रेम है। भ्रमर बन्दीगण के समान सदैव तेरा यशगान करते रहते हैं। किसी भी पुष्प से तेरी तुलना नहीं की जा सकती। तेरे जैसा तू ही है।

–38/49–'ए' खास बाजार
कानपुर - 208 001

जहाँ हृदय में निर्भयता है और मस्तक
अन्याय के सामने नहीं झुकता है;
जहाँ ज्ञान उन्मुक्त है;
जहाँ संसार घरों की संकीर्ण दीवारों में
खण्डित और विभक्त नहीं हुआ है;
जहाँ शब्दों का उद्भव केवल सत्य के गहरे स्रोत से होता है।
जहाँ अथक उद्यम पूर्णता के आलिंगन हेतु भुजायें पसारता है;
जहाँ विवेक की निर्मल जल धारा
पुरातन रूढ़ियों के मरुस्थल में भटक नहीं गई है;
जहाँ मन तुम्हारे नेतृत्व में सदा उत्तरोत्तर
विस्तीर्ण होने वाले विचारों और कर्मों में रत रहता है;
प्रभु उस दिव्य स्वतंत्रता के प्रकाश में मेरा देश जागरित हो।

– टैगोर

प्रस्तुति : सुन्दर लाल गोयल, एडवोकेट

WHERE CULTURES MEET

— Kapil Dixit

Have you ever visited 'Trulsi Upvan', cultural cauldron of this industrial city. Located within the Motijheel campus, the beauty of Tulsi Upwan lies in its sculptural delights takiong shape in the form of various idols placed in the garden.

Upwan planned by the founder of the Manas Sangam, Badri Narayan Tiwari in December 1981, stands out as a model of excellence in Motijheel area.

During the pre-Indepence era, Kanpur's only claim to fame was its historical values.

Lively statues of Rama and Laxman, Sita and Sugriva are the main attraction in the upwan. All the idols, specially that of lord Rama embracing his brother Bharat, are based on there ferences from the holy book Ram Charit Manas.

The Upwan is a unique place for trourist attraction in the city. The late Indira Gandhi, in her inaugral message to the Manas Sangam, during the inauguration of Tulsi Upwan, had said, 'so long as there is water in river Ganga and India is inhabited, there shall be devotion towards Tulsi and his Manas."

"There is great need to spread the message of Tulsi das among the people so that the feelings of sacrifice could be enthused among them. The great acts of Lord Rama should also reach all sections of the society, "remarked Mr. Badri Narain Tiwari, founder of Manas Sangam Society.

Interestingly, the prime location of Motijheel area has helped Tusli Upwan to grow and attract a large numbers of visitors. It is said that tourists do visit the upwan before heading towards other parts of the city. As a matter of fast, the place is tailor made for litterateures and lovers.

A lively statue of Goswami Tulsi Das placed at the centre of Upwan is a unique example of Indian sculpture. Emotional scenes taken from Ramayan have been well presented here through the idols of Ram Katha's Character including Vashisth-Kevat Milan, ram Kevat Milan, Sabri Ram Sneh, Ram Jatau, Ram Charanpaduka Ka Vishwas and Ram Ban Gaman.

Mr. Tiwari says, the Upwan is an ideal place for devotees to experience religious and spiritual calm. The six idols with Prerak Prasang in spire the national spirit among the visitors.

According to Bhola Nath's 'Bhasha Vigyan' Tulsi Das was a pioneer among the litterateurs of the world. He was the only person who used more than 25,000 different words in his writings. While noted English literature like Milton and Shakespear used only 8000 and 15,000 words respectively in their books. Mr. Tiwari also informed that former governor Mr. CPN Singh had christened it as 'Tulsi Upwan' and former defence minister Mr. Mulayam Singh Yadav declared it as the best tourist place in the state. He further says, we can't imagine Kanpur without this place."

(The times of India)

क्या सचमुच रावण के दस सिर थे?

– डॉ0 न. बी. राजगोपालन

हमारे प्राचीन पुराणों के कुछ पात्र बहुत ही विचित्र लगते हैं और आज के वैज्ञानिक युग में उनके संबध में अविश्वास उत्पन्न होता है। रावण ऐसा ही पात्र है। कहा जाता है कि रावण के दस सिर थे। रामायण के श्रद्धालु पाठक इस पर संदेह नहीं करते, क्योकि तुलसीदास ने वाल्मीकि ने ऐसा लिखा है तो ऐसा ही रहा होगा। मगर किसी कम श्रद्धालु बुद्धिवादी के लिए सन्देह अवश्य उत्पन्न होता है।

एक शरीर पर दस सिर । किस क्रम से वे रहे होंगे। रामलीला में जो रावण की प्रतिमा रखी जाती है, उसमें देखा गया है कि कभी बीच के सिर के दायीं ओर पांच सिर और कभी बांयी ओर चार सिर रखे जाते है. तो कभी बायीं ओर पांच सिर और दायीं ओर चार। यानी तुलसी या वाल्मीकि ने यह नहीं लिखा है कि किस ओर कितने सिर थे?

एक गर्दन पर दस सिर कैसे लग रहे होंगे? वह गर्दन भी बहुत बड़ी रही होगी? लेकिन दशशिरा ही नहीं, रावण को ''दस कण्ठ'', ''दशग्रीव'', और ''दशकन्धर'' भी कहा जाता है। कण्ठ, ग्रीव, कन्धर शब्दों पर ध्यान देना है। यदि कण्ठ या ग्रीव भी दस रहे हों, तो वह दृश्य ऐसा होगा, जैसे एक पेड़ के तने पर चारों ओर दस शिखायें उठी हों।

रामायण के प्रथम कवि महर्षि वाल्मीकि है। अतः ऐसा लगता है कि इस पर विचार करना आवश्यक नहीं समझा और ''दशकन्धर'' कह कर आगे बढ़ गये। रामायण में दशरथ शब्द भी है। उसका अर्थ व्याख्याताओं ने बताया है 'दसों दिशाओं में जिसका रथ अप्रतिहत रूप मे चलता है। यानी अत्यन्त पराक्रमी ।'' दशरथ'' का यह अर्थ नहीं है कि उसके दशरथ थे। दस ही क्यों? वे चक्रवर्ती थे और उनके पास सहस्त्रों रथ होंगे। इसी प्रकार क्या ''दसग्रीव'' या ''दशकण्ठ'' का भी अर्थ नहीं बताया जा सकता यानी दसों दिशाओं मे जिसका सिर ऊंचा हो, अत्यन्त पराक्रमी आदि? दशकण्ठ का असली नाम ''रावण'' है। जिसकी व्याख्या स्वयं वाल्मीकि जी ने यों की है। रावणो लोकरावणः अर्थात (रावयति) ''तीनों लोकों को रुलाने वाला। ''रावणः शत्रु रावणः'' अर्थात ''पराक्रम से शत्रुओं को रुलाने वाला''। यह निर्विवाद है कि संस्कृत भाषा ने भी अन्य भाषाओं के अनेक शब्दों को आत्मसात कर लिया है। ग्रीक, चीन आदि भाषाओं से आये शब्द कालिदास की भाषा में भी ढूंढ निकाले गये है। बराहमिहिर के ग्रन्थ में ग्रीक भाषा के अनेक शब्द प्रयुक्त है, जो बाद में जाकर संस्कृत के अपने हो गये।

भारत में रामायण के रचना काल में और उससे पूर्व ही अनेक भाषाएं प्रचलित थीं। रामायण के बानर, राक्षस, मनुष्य आदि की भिन्न-भिन्न भाषाएं रही होंगी। वास्तव में वानर आदि नाम उस युग में भारत में निवास करने वाली भिन्न-भिन्न जातियों के नाम हैं। उन जातियों के भाषाओं के शब्द भी संस्कृत में आ गये है, इसमें आश्चर्य नहीं है। तेलगू के प्रसिद्ध भाषाविद डा. सीतापति ने मध्यप्रदेश की ''सवर'' नामक अर्द्धसभ्य आरण्यक जाति की भाषा का अध्ययन करके लिखा है कि ''गोदा'' शबर भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है ''विशाल'' और ''वरी'' का अर्थ ''नदी'' है। पर भाषा के शब्दों को संस्कृत में लेते समय उनका 'संस्कृतीकरण' कर दिया गया है, जैसे 'शेक्सपियर' को 'शकप्रिय', 'अलैक्जेन्डर', को 'अलक्षेन्द्र'। रामायण के अनेक पात्रों के नाम अन्य भाषाओं के शब्द या उनके स्वछन्द अनुवाद है। 'दसग्रीवा' 'शूर्पणखा', 'कुम्भकर्ण' 'सुग्रीव', आदि ऐसे ही शब्द है। इन शब्दों रूपों की व्याख्या बाद में अनेक प्रकार से कर दी गयी और मूल भाषा का अर्थ भुला दिया गया ।

दक्षिण भारत की एक आटविक जाति 'कुई' द्रविड़-परिवार के अंतर्गत है। इस जाति और बोली के सबंध में एक विद्धान ने कुछ रोचक बातें बतायी है।(देखिएः पी.टी. श्री अरुयंगार की ''हिस्ट्री आफ द तमिल्स)।

कुई, लोगों के गांवों में प्रवेश मार्ग पर एक लम्बी गोलाकार शिला रहती है, जिसे वे लोग 'निसन-पेण्णु' कहते

है। यह ग्रामरक्षिका देवी का प्रतीक है। उन लोगों का विश्वास है कि यदि कोई देवी की हानि कर दे तो ग्राम की भी हानि होगी। लंका नगर की रक्षा करने वाली लंकिणी और हनुमान का प्रसंग ऐसा ही है। कुछ लोग युद्ध पर जाते समय सिंह, बाघ, हाथी बराह, आदि जानवरों के चेहरे लगा लेते थे। आजकल कुछ विशेष उत्सवों के अवसर पर ऐसे चेहरे लगाकर नाचते है। रावण की सेना में राक्षस ऐसे ही आये थे।

पर ऐसे चेहरे लगाकर नाचते है। रावण की सेना में राक्षस ऐसे ही आये थें।

यश्चैव नानविध घोल रुपैः, व्याघोष्ट्र नागेन्द्र मृगाश्ववक्रेः।

भूतैवृतो भाति विवृत्रनंत्रेः सौ सौ सुराणा मपि दर्पहन्ता।। (रामायण, युद्ध सर्ग 59, श्लोक 24)

(जो नानाविध घोर रूपवाले बाघ, ऊंट, हाथी, हरिण, और घोड़े के चेहरे लगाये हुए और खुले नेत्रों वाले भूतों से घिरा हुआ हैं, वही देवताओं का भी गर्व मिटाने वाला रावण है।)

''दशग्रीव'' और ''दशास्य'' का रहस्य भी कुई बोली के परिशीन से खुल जाता है। यह ध्यान देने योग्य है कि वाल्मीकि ने 'दशग्रीव' शब्द का ही प्रयोग किया है, अन्य शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। वास्तव में दशग्रीव आदि शब्दों का प्रयोग कर दिया है।

सीतायाः वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान्। रावणो नाम भद्रं ते दशग्रीवः प्रतापवान्।। (रामायण, अरण्य सर्ग 48 श्लोक 2)

इसी प्रकार 'राक्षसेन्द्र प्रतापवान' का प्रयोग कई स्थलों पर मिलता है। रावण का प्रतापवान होना 'लोकरावण', 'शत्रुरावण' आदि शब्दों से भी प्रकट होता है।

कुई भाषा का शब्द है ''दशग्रीव'' ('दशग्रीव नहीं), जिसका अर्थ होता है पीड़ा देने वाला। ''रावण'' शब्द इसका संस्कृत -अनुवाद है। ग्रीव प्रत्ययवाले कुछ और शब्द ये है।

वेप - गीव = मारने वाला, गिराने वाला

ओब - गीव = लेने वाला

वण्डी - गीव = धोखा देने वाला

'दश' का अर्थ होता है 'पीड़ा'। इसी से बना एक दूसरा शब्द 'कुई' बोली में 'दशअसि' है। 'असि' प्रत्यय व्यक्ति वाचक संज्ञाओं के अंत में लगता है। 'दस-असि' का अर्थ है 'पीड़क'। संस्कृत में 'दशग्रीव' बना और 'दशासि' दशास्य बना।

वाल्मीकि ने कहीं रावण के दस सिर होना नहीं कहा है। यह अर्थ 'दशग्रीव' का नया अर्थ निकालने का परिणाम है।अतएव रावण के दस सिर नहीं थे।

('राष्ट्रीस सहारा' से साभार)

आज जब मानवता के वास्तविक मूल्य समाप्त होते जा रहे हैं, हमें पुरुषोत्तम राम का उदाहरण ध्यान में रखना चाहिए कि भारी कठिनाई के समय में भी उन्होंने अपने धर्म का पालन किया। वे एक आदर्श पुत्र, भाई, पति तथा राजा थे।

हम सब राम के प्रति अपनी श्रद्धा और सम्मान प्रकट करते हैं और वाल्मीकि, तुलसीदास तथा कम्बन जैसे महान् लेखकों को भी अपनी श्रद्धांजलि देते हैं, जिन्होंने भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय देवता के विषय में प्रसिद्ध ग्रंथों की रचना की।

प्रस्तुति : रंजीत सिंह **डॉ0 (श्रीमती) एवं अरादी (हंगरी)**

जीवन में जिसके प्यार नहीं

— सुश्री निखत बेगम

भारत की पौराणिक कथाओं के माध्यम से हमें अपनी संस्कृति, राष्ट्रीयता एवं गौरवशाली साहित्य के दर्शन होते हैं। एक पौराणिक कथा कच और देवयानी की भी है। आकर्षक व्यक्तित्व वाले, अनुशासन प्रिय और विद्धान कच देवताओं के गुरू आचार्य बृहस्पति के पुत्र थे। अत्यन्त सरल ह्रदय एवं समर्पण की भावना से ओत प्रोत देवयानी दानवों के गुरू शुक्राचार्य की पुत्री थीं। कच ने गुरू शुक्राचार्य से उन्हें शिष्य स्वीकार करने का विनम्र निवेदन किया और गुरू शुक्राचार्य ने कच को शिष्य के रुप में स्वीकार कर लिया। कच गुरु शुक्राचार्य के आश्रम में रहते हुए दानवों के छल को दूर करने के उद्देश्य से देवयानी से प्रेम करके छल को प्रेम से जीतकर असत्य पर सत्य की विजय प्राप्त करते है। देवयानी के जीवन में कच जीवन-रस बनकर आते हैं और जिनकी स्मृति उसके मानस पटल पर प्रतिक्षण अंकित रहती है। पौराणिक कथायें देवता और दानवों के संघर्ष से भरी पड़ी है ऐसे में कच और देवयानी का विशुद्ध प्रेम एक अनोखा संदेश देता है। परम विदुषी सुश्री निखत बेगम ने कच-देवयानी की कथा को छन्दों में ढ़ालकर साहित्य जगत को समृद्ध करने का स्तुत्य प्रयास किया है। प्रस्तुत है सुश्री निखत बेगम की नव प्रकाश्य कृति 'कच और देवयानी' के कतिपय अंश जिससे कच और देवयानी के अनूठे प्रेम की झलक मिलती है।

—सम्पादक

कच प्रतिदिन, सेवारत होकर । सेवा करते, तन्मय होकर।
दानव गुरु की, दुहिता से वे। एक भाव जगा, मित्रता किये।
प्रतिदिन फूलों औ– फल को ला। देवयानी को वह , सब थमा।
प्रारम्भ किया, संचय परिचय । नव प्रेम हुआ, ह्रदय में उदय।
दोनों ही , प्रतिदिन मिलते थे। नव-पुष्प ह्रदय में खिलते थे।
इस तरह प्रेम, पलते-पलते। परिपक्व हुआ बढ़ते-बढ़ते।
फल फूलों की, छवि शोभित थी। कच सुन्दरता, अवलोकित थी।
थी शोभा श्री, अति ही मुख पर पाते थे नयन, दर्शन सुखकर ।
अति मंगल-मुख, जस राजकुमार। भा गये अति, वह देवकुमार।
थे नयन भले, मुख चन्द खिले । जल में जैसे, दो कमल खिले।
आभूषण सुन्दर , सजे फबे। बन उसके हित, जस रच-रच के।
मधुबात लिये, मधुहास लिये। मधुरस का जैसे रास लिये।
देवयानी भी, सुलभ क्षण या। अनुराग भरा, प्रति कण-कण पा।
मन की हलचल, नापे प्रतिपल । मन-सरिता, कहती थी कल -कल।
मन कहे, "प्रकृति अनुकूल यहाँ खिलते हैं, मन के फूल यहाँ।
सुयोग्य यही, सुन्दर दर है। सौभाग्य भरा, सुअवसर है।
नव पल्लव, नव-अनुकूल समय । नव जीवन, नव समकूल मलय।
जीवन में, जिसके प्यार नहीं। जिये ये उसे, अधिकार नहीं।
मन में छवि, सुन्दर आकृति की। प्रतिबिम्बित होती , आवृति की।
नत नयन रीझ, वह अपने पर । सकुचायी कुछ, स्व सपने पर।

—महमूद मंजिल, 80, दरियाबाद,
इलाहाबाद – 3

विवाह के समय राम-सीता की आयु

– डॉ0 रमानाथ त्रिपाठी

दशरथ ने विश्वामित्र से कहा था कि मेरा राम तो अभी 16 वर्ष से भी कम (ऊन षोडश) का है, वह राक्षसों से युद्ध करने की क्षमता नहीं रखता। मारीच ने रावण को बताया था कि राम ने जब उसे सिद्धाश्रम मे दण्डित किया था तब वे 11 (ऊन द्वादश) वर्ष के थे। ऐसा दशरथ ने विश्वामित्र से कहा था। इस विरोधाभास के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि मारीच को क्या पता कि दशरथ ने विश्वामित्र से क्या कहा था। अतः ऊन षोडश (16) वर्षवाला कथन ही अधिक समीचीन हो सकता है।

सीता ने अरण्यकाण्ड (47-4) में रावण को और सुन्दर काण्ड (33-17) में हनुमान को बताया है कि वे राम के साथ अयोध्या में 12 वर्षो तक रहीं। सीता ने रावण को यह भी बताया कि वनवास के समय मेरे पति की उम्र 25 वर्ष और मेरी 18 वर्ष थी। तब तो विवाह के समय –

राम की उम्र 25–12= 13 वर्ष , सीता की उम्र 18–12= 6 वर्ष

ऊपर विवाह के समय राम की उम्र 16 वर्ष के लगभग बतायी गयी है।ये कथन मेल नहीं खाते।

सीता ने अनसूया को बताया था कि मेरे पति–संयोग वयको देखकर पिता जनक चिन्ता में पड़ गये थे। उन्होनें स्वयंवर की व्यवस्था की थी। कोई भी व्यक्ति धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने का प्रण पूरा न कर सका था। सम्भवतः इसके एक-दो वर्ष पश्चात राम मिथिला पहुंचे होंगे। यदि विवाह के समय सीता की उम्र 6 वर्ष की थी तो वे असफल स्वंयवर के समय 3 या 4 वर्ष की रही होंगी। यह उम्र पति–संयोग सुलभ कैसे हो सकती है ?

राम विवाह के पश्चात 12 वर्षों तक अयोध्या रहे, यह भी निर्भ्रान्त नहीं है। बालकाण्ड की समाप्ति पर कवि- कथन है कि राम ने सीता के साथ अनेक ऋतुओं तक विहार किया।

रामश्च सीतया सार्ध विजहार बहुनृतून । किन्तु अयोध्याकाण्ड के आरम्भ में दशरथ का निम्नांकित कथन भी विचारणीय है।

अबतक राम वेदों का अध्ययन करने, ब्रहमचर्य का पालन करने और गुरुजनों की सेवा करने के कारण दुर्बल होते चले आये हैं। भोग का समय आया तो वे वन के महान कष्टों में पड़ेंगे।

वनगमन के ही समय कौशल्या राम से कहती हैं, तुम 17 वर्ष के हो गये हो।

दशसप्त च वर्षाणि जातस्य तव राघव

दशरथ और कौशल्या के कथन से तो यहीं स्पष्ट होता है कि विवाह के पश्चात राम बहुत दिनों तक अयोध्या नहीं रहे। काव्यग्रन्थों के आंकड़ों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। ये गणित या इतिहास के आंकड़े नहीं हैं।

सम्पूर्ण वर्णनों का आकलन कर मैंने अनुमान किया है कि विवाह के समय राम की उम्र 16-17 वर्ष अवश्य रही होगी और सीता की 13-14 वर्ष। कुछ वर्षो के पश्चात ही उन्हें वनवास मिला होगा।

रत्नाकर (समुद्र) में अनेक रत्न हैं पर तुमको यदि एक ही डुबकी में रत्न न मिले, तो रत्नाकर रत्न से रहित मत समझो। इसी प्रकार यदि थोड़ी साधना करने से ईश्वर के दर्शन न हों तो निराश नहीं होना चाहिए। धैर्य धरकर साधना करते रहो कभी न कभी ईश्वर की कृपा अवश्य होगी।

प्रस्तुति : गोविन्द शुक्ल **(महात्मा के प्रवचन से)**

समाज में समरसता प्रवाहित हो सकती है

—डॉ० कमला कान्त पाण्डेय

मानस में सामजिक समरसता का अद्भुत तथा अद्वितीय उदाहरण है- निषादराज और राम का मिलन। स्मृतिशास्त्रों में केवट या निषाद, ब्रह्मण पिता शद्रा माता की सन्तान कहे गये। वर्ण व्यवस्था के अतिक्रमण से निषाद निम्न जाति के प्राणी कहे गये हैं। किन्तु मानस में मानवीय गौरव के अनुकूल निषाद राज का अंकन है। भारतीय साहित्य में निषादराज जैसा दूसरा पात्र नहीं है। निषाद राज, राम कथा के प्राण हैं।

राम वनवास के लिये प्रयाण करते हैं। गंगातट पर सीता तथा लक्ष्मण सहित पधारकर गंगा स्नान करते हैं। तभी निषाद समाचार पाकर बन्धुओं सहित भेंट समर्पित करने हेतु कन्द-मूल -कल आदि लाते हैं। निषाद, राजा राम से कहते हैं- 'देव धरनि धनु धानु तुम्हारा । मैं जनु नीचु सहित परिवारा ।'' हे देव यह पृथ्वी, धन तथा धाम सब आपका है। मैं परिवार सहित आपका नीच सेबक हूँ। राम ने स्वाभाविक स्नेह के वश होकर, उसे निकट बैठाकर कुशल क्षेम पूँछी। निषाद ने राम की रुचि के अनुकूल अशोक वृक्ष के नींचे कुश और कोमल पत्तों का विछावन सजाया। किन्तु राम को भूमि शयन करते देख, निषाद के मन मे विषाद उत्पन्न हुआ- 'सोवत प्रभुहि निहारि। भयउ प्रेम बरु हृदय विषादू।।

जब निषादराज को भारी विषाद हुआ, तो लक्ष्मण उसे सुपात्र मानकर, युक्ति और विवेक से समझाते हैं। रात्रि इसी समझाने में बीत जाती है। प्रातः सचिव सुमंत्र जो राम के सारथि थे, राम से आयोध्या लौटने के लिय अनुनय-विनय करते हैं। निषाद, रघुनाथ तथा सचिव का संवाद सुनकर परिवार सहित व्याकुल होते हैं। 'सुनि रघुनाथ सचिव संवादू। भयउ सपरिजन विकल निषादू।'' राम के हृदय में ही सहज स्नेह नहीं है, निषाद में भी राम के प्रति अतिशेय स्नेह जाग्रत हो गया है।

राम अब गंगापार जाना चाहते हैं। केवट से नाव लाने को कहते हैं, किन्तु वह नाव नहीं लाता है - 'मांगी नाव न केवटु आना।' केवट का कथन है कि - हे राम मैंने तुम्हारा भेद जान लिया है। तुम्हारे चरण कमलों की धूलि, मनुष्य बना देने वाली कोई जड़ी है। राम जड़-चेतन में मानवता जाग्रत करने वाले महापुरुष हैं। सामाजिक भेद-भाव को तोड़ कर संवेदनशील मान्यता की प्रतिष्ठा, राम का उद्देश्य हैं।

केवट की शंका है कि काष्ठ की जड़ नाव, कहीं राम के चरणों का स्पर्श कर जीवित जाग्रत हो गयी, तब क्या होगा? नौका ही उसकी जीविका का साधन है। जब अभिशप्त कठोर पाषाण सुन्दर नारी-अहिल्या बन सकती है, तब नाव तो काठ की है? केवट के प्रेम लपेटे वचनों को सुनकर करुणा के धाम, राम हंस पड़े।

कृपासिंधु राम मुस्कराकर बोले, भाई तू वही कर जिससे तेरी नाव न जाये। इस स्नेह वर्षा को देखकर यदि देवता आकाश से पुष्प वर्षा करें, तो क्या आश्चर्य है? गंगा पार करने के उपरान्त केवट से श्रीराम ने कहा- 'तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू।' यह सुनते ही केवट का मुंह सूख गया। केवट ने दीनतापूर्वक कहा कि, आपको वन का मार्ग दिखाऊँगा। आपके लिये पर्णकुटी बनाऊँगा। इस प्रकार आपकी सेवा करूंगा। प्रभु स्नेहवश होकर, स्वीकृत प्रदान करते हैं।

भरत, राम से मिलने चित्रकूट चलते हैं। निषादराज ने भरत को सेना के साथ आते देखा, शंकित होते हैं। तब निषाद राज ने अपने बंधु-बांधवों से कहा कि नौकाओं को डुबा दो। घाटों को रोक दो। जो निषाद अपनी नाव के रूपांतरण से भयभीत था। वह राम के स्नेह वश होकर आत्मघाती कृत्य करने का भी साहस करता है। राम के सहज स्नेह की प्रेरणा से, ऐसा सम्भव हुआ। चित्रकूट जाते हुए भरत की सेना में मुनि वशिष्ठ को देखकर, निषादराज ने अपना नाम बतला कर दंडवत-प्रणाम किया। वशिष्ठ ने भरत को बताया कि, ये निषादराज राम के प्रिय हैं। यह सुनकर भरत रथ त्याग कर, अनुराग उमंगित होकर केवट की ओर चले। निषादराज को दंडवत करते देखकर, भरत

ने उठाकर छाती से लगा लिया। हृदय में प्रेम समा नहीं रहा है। वह निषाद जिसे समाज और शास्त्र-लोकवेद-सभी निम्न कहते हैं। जिनकी छाया छूने पर स्मृतियों में स्नान का विधान है। उसी निषाद को भरत ने गले लगाकर सम्मान और स्नेह दिया- 'लोकवेद सब कहिहिं नीचा। जासु छांह छुई लेइअ सींचा।। जेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता ।।'

राम नाम का स्मरण करने से मूर्ख, पामर चाण्डाल, खस, यवन, कोल, और किरात जैसे कथित निम्न वर्गीय जन भी परम पावन होते हैं -

'स्वपच सबर खस जमन जड़ पाँवर कोल किरात। रामु कहत पावन परम होत भुवन विख्यात।।

मानस ने राम नाम स्मरण से सामाजिक समरसता की अवतारणा का कौशल प्रकट किया है।

चित्रकूट में मुनि वशिष्ठ से निषाद राज की पुनः भेंट होती है। निषाद दूर से ही दंड प्रणाम करते हैं। राम सखा को मुनि जानबूझ कर हृदय से लगाते हैं।

'प्रेम पुलिक केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू।। रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा।।

देवता इस मिलन का अवलोकन कर आकाश से पुष्प वर्षा करते हैं, तथा कहते हैं-

'एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं । बड़ वशिष्ठ सम को जग माहीं ।' जगत में निषाद के समान नीच कोई नहीं है। वशिष्ठ के समान कोई बड़ा नहीं है। मानस में यह प्रसंग समरसता का अद्वितीय उदाहरण है।

राम लंका विजय कर अयोध्या के मार्ग में गंगातट पर आते हैं। आनन्द मग्न होकर निषाद मूर्छित होकर भूमि पर गिरते हैं। राम निषाद का परम प्रेम देखकर गले लगा लेते हैं।

'प्रीति परम विलोकि रघुराई। हरषि उठाई लियों उर लाई।। लियों हृदयं लाइ कृपा निधान सुजान रायं रमापति।'

तुलसी का कथन है कि -'सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयों, सब प्रकार से नीच उस निषाद को राम ने भाई भरत की भांति गले लगाया।

उत्तर काण्ड में राम राजा बन गये। निषादराज को विदा करना था। राम ने मन-वचन-कर्म से धर्म अनुसरण करने को कहा। राम निषादराज से कहते हैं, कि तुम मेरे मित्र हो और भरत के समान भाई हो। अयोध्या सदा आते जाते रहना। निषाद स्नेह से विह्वल होकर, आनन्द और प्रीति से अश्रुपात करने लगा। धर्म के पालन करने का अभिप्राय केवट के स्वधर्म पालन का है। तुलसी की स्थापना है कि स्वधर्म का पालन कर, ईश्वर या सगुण राम को प्रभु स्वीकार कर, समाज में सरसता तथा समरसता प्रवाहित होती है या हो सकती है। यह सामाजिक समरसता, समाज में अविरोधी शक्तियों का ही सृजन नहीं करती, वरन् परस्पर प्रीति का मार्ग प्रशस्त करती है।

''हमेशा अपनी त्रुटियों और गलत प्रवृतियों के बारे में ही न सोचते रहें। तुम जो होने वाले हो, जो तुम्हारा आदर्श है उस पर ज्यादा ध्यान दो और इस श्रद्धा के साथ ही चूंकि वह तुम्हारा लक्ष्य है इसलिये वह आएगा और जरूर आएगा।

हमेशा त्रुटियों और गलत प्रवृत्तियों को देखते रहने से अवसाद आता है और श्रद्धा की हिम्मत टूटती है। अभी के अन्धेरे की ओर कम देखो, अपनी आँखें ज्यादातर आने वाले प्रकाश की ओर रखो। श्रद्धा, प्रसन्नता, अंतिम विजय में विश्वास वे चीजें हैं जो सहायता देती हैं और प्रगति को ज्यादा आसान और तेज बनाती हैं।''

प्रस्तुति : श्रीमती कामना तिवारी एम.ए. **– श्री अरविन्द**

राम भारत की माटी के अलौकिक रत्न हैं

– डा0 सुधाकर मिश्र

मर्यादापुरुषोत्तम राम भारतीय मिट्टी के अलौकित रत्न हैं। शक्ति, शील तथा सौन्दर्य ने उनके रुप में अद्वयविग्रह धारण किया था और आर्य मनीषा ने उनमें अपनी उदात्ततम छवि देखी थी। अपने समय मे वे अर्थविशारद अर्थात् सभी कार्यो को करने में कुशल, एकपत्नी व्रती, धर्मप्राण, महारथी, मृदु, जितेन्द्रिय, सर्वभूतहितरत, उत्तमयश सम्पन्न, सम्पूर्ण जीवों की शरण और परमगति माने जाते थे। प्रजा के लिए उनमें अनन्य स्नेह तथा ऋषियों -मुनियों के प्रति अपार श्रद्धा थी। अपने इन्हीं सद्गुणों के कारण वे आर्य संस्कृति के पुंजीभूत प्रकाश बने और सत्य, न्याय तथा त्याग की मूर्ति के रुप मे सम्मानित हुए। इस देश का सौन्दर्य सम्बन्धी चिन्तन, चाहे कर्म का हो या विचार का, रुप का हो या अरूप का, रामत्व में ही परिपूर्ण हुआ है। वे हमारे धर्म-कर्म की धुरी, आदर्श के शिखर और सदाचार के शलाकापुरुष हैं। 'न भूतो न भविष्यति' उनके चरित्र में हर युग की समस्याओं से जूझने की अपूर्व क्षमता विद्यमान है। यही कारण है कि अद्यतन परिस्थितियों में भी रामत्व अपनी सार्थकता बनाये हुए है। पतिव्रत-निर्भर सीता के चरित्र ने इस सार्थकता को और भी प्राणवान बना दिया है। राम के मर्यादा-मंजुल चरित्र को लोकोत्तर छवि देने में उनकी भूमिका वन्दनीय रही है। वस्तुतः राम और सीता मानवीय आदर्श के सर्वोत्तम रुप हैं।

भंजक (धर्मव्यवस्था भेत्तारम्), धर्मो का उच्छेदकर्त्ता (उच्छेत्तारं धर्माणाम्) और मायायुद्धपटु (मायासृष्टा रणाहवे) माना जाता था।

अपने बल के घमंड मे चूर- 'वीर्यमत्त', रावण यज्ञभूमि में प्रवेश कर बलपूर्वक सोमरस छीन लेता था, ऋषियों को खा जाता था और उनका रक्त पी लेता था –

तान् भक्षयित्वा तत्रस्थान् महर्षीन यज्ञमागतान्। वितृप्ती रुधिरैस्तेषां पुनः सम्प्रययौ महीन्।।

7-18-20 (वा0 रा0)

सुमाली के कहने पर उसने कुबेर पर आक्रमण करके उनसे लंकापुरी छीन ली और उसे अपनी राजधानी बनायी। लंका-विजय के बाद वह त्रैलोक्य-विजय के लिए चल पड़ा। उसकी पाशविक एवं मायावी महाशक्ति के संत्रास से सर्वत्र आंतक के बादल छा गयें समस्त भूमंडल में दो-चार राजाओं को छोड़कर कोई उसके सामने टिक नहीं सका। तत्कालीन आर्य नृपति– दुष्यंत, सुरथ, पुरूरवा, गय आदि उसका लोहा मानते थे। अयोध्या के राजा अनरण्य को उससे मुँह की खानी पड़ी थी और मान्धाता ने उसके समक्ष घुटने टेक दिये थे। महाराज दशरथ उससे युद्ध करने में अपने आपको असमर्थ समझते थे– नहिं शक्तोऽस्मि संग्रामे स्थातुं तस्य दुरात्मनः।

परन्तु राम की मर्यादाप्रिय शक्ति के सामने वह टिक नहीं सका।

उसकी मृत्यु के साथ-साथ जहाँ दुर्धर्ष आसुरी शक्ति का अंत हो गया, वहीं राम के रूप में एक अजेय शक्ति का उदय हुआ। 'रामोदय' रामरूपी उसी महाशक्ति के उदय की कथा है। एक महाशक्ति के पतन और दूसरी वे प्रकाश बिन्दु हैं, जिसके सामने देवत्व मद्धिम पड़ जाता है। जो उत्तम है अथवा जिसे उत्तम माना जा सकता है, वह सब राम में है और जिसे अपनाकर सामान्य से सामान्य नारी भी सुरत्व को सुगंधित कर देती है, वह सब सीता में। यदि राम विश्वास हैं तो सीता आस्था। आस्थारूपिणी सीता के हृदय में रामरूपी विश्वास का निवास है और रामरूपी विश्वास के हृदय में आस्था रूपिणी सीता का वास। सीता के इसी विश्वास ने उन्हें राम से दूर नहीं रहने दिया और राम की इसी आस्था ने उन्हें पुनः सीता से मिला दिया।

जीवन का सौन्दर्य हृदय एवं बुद्धि के समन्वय-सामंजस्य में सन्निहित है। जब भी ये-दोनों अपनी समाकारिता खो देते हैं, आदमी अशोभन का दास हो जाता है। राम के जीवन में हृदय एवं बुद्धि का बड़ा शोभन सामंजस्य

मिलता है। परन्तु रावण की बौद्धिकता उसके हृदय की ऐसी अनेक उज्जवल लहरियों को निगल गयी थी, जो मानवता की मूर्ति में सरसता का संचार करती हैं। रावण वीर था, ज्ञानी था और जैसा प्रसिद्ध है शिव का परम् भक्त भी था। अपनी वीरता के कारण उसने बीसबाहू की संज्ञा प्राप्त की थी। परन्तु स्वार्थ-संचालित होने के कारण उसकी शक्ति अहंवादिनी एवं परपीड़क हो गयी थी। उसका पथ शांति तथा न्याय का न होकर, अशांति और अन्याय का हो गया था। घृणा तथा आतंक उसके अस्त्र बन गये थे। अपनी जाति एवं अपनी संस्कृति के अतिरिक्त उसे कहीं भी उत्तमता दृष्टिगोचर नहीं होती थी। इसी कारण अन्य जातियों, संस्कृतियों और धर्मो के विरुद्ध उसकी गदा हमेशा उठी रहती थी।

उसके कठोर, नृशंस और कुत्सित कर्मो से देव-दानव ही नहीं, जगत के सम्पूर्ण प्राणी भयभीत रहा करते थे-

अस्य क्रूरैर्नृशंसैश्च कर्मभिर्लोक कुत्सितैः। सर्वे विभ्यति खल्वस्माल्लोकाः सामरदानवः।।

5-49-5 (वा0 रा0)

उसे यज्ञों का विध्वंसक (नैकयज्ञविलोप्तारम्) धर्मव्यवस्था- महाशक्ति के उदयकाल की इस कथा में कोई भी युग अपनी समस्याओं और उनके समाधान का साक्षात्कार कर सकता है। अतः मेरा अपना युग तो इसमें होगा ही- वह भी अपने अंधकार एवं प्रकाश के साथ।

अन्त में मैं महर्षि बाल्मीकि को अपनी प्रणामपूर्ण कृतज्ञता अर्पित करता हूँ। यदि उनके राम ने यह न कहा होता–

विदितश्चास्तु भद्रं ते योऽयं रणपरिश्रमः। सुतीर्णः सुहृदां वीर्यान्न त्वदर्थ मया कृतः।। 5।।
रक्षता तु मया वृत्तमपवादं च सर्वतः । प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यङ्ग परिमार्जता ।। 6 ।।
प्राप्तचारित्रसंदेहा मम प्रतिमुखे स्थिता । दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढ़ा ।। 7।।
तद्गच्छत्वानुजानेऽद्ययथेष्टंजनकात्मजे।एतांदशदिशोंभद्रेकार्यमस्तिनमेंत्वया।।8।।युद्धकाण्ड,।।5वाँसर्ग।।

–तो मैं राम एवं सीता के पुनर्मिलन की कथा लिखने के लिए शायद ही संप्रेरित हुआ होता। कथा के बीच-बीच में नारी -गरिमा का आख्यान, संभव हैं, उसी कथन की प्रतिक्रिया हो या राम-कथा की उदात्तता की देन हो या समस्त नारी जाति के प्रति मेरी अगाध श्रद्धा का परिणाम हो।

इस प्रसंग में कालिदास, भवभूति एवं तुलसीदास को प्रणाम न करके मैं मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहता।

('रामोदय' से)

धनवतिया, बरवाँ , भदोही

मुंशी प्रेमचन्द जी बड़े सरल और शान्त स्वभाव के थे। वे कभी किसी से झगड़े न थे। किन्तु एक बार दुर्भाग्यवश एक व्यक्ति से उनका मतभेद हो गया और वह आवश्यकता से अधिक बढ़ गया। बातों में कुछ तेजी आ गयी तो प्रेमचन्द जी को कहना पड़ा, 'मैं आपको एक संभ्रान्त व्यक्ति मानता था, परन्तु....'

बीच में ही बात काट कर उनके विरोधी ने कहा, 'मेरी भी आपके प्रति कुछ ऐसी ही धारणा थी।'

प्रेचन्द जी ने मुस्करा कर कहा, 'तो आपकी धारणा ही ठीक निकली, मैं ही भ्रम में था।'

प्रस्तुति : जयशंकर बाजपेयी

ओ ! तुलसी बाबा !!

— वाहिद अली 'वाहिद'

अवधपुरी में तना-तनी है, ओ! तुलसी बाबा!
चन्दन वन में नागफनी है, ओ! तुलसी बाबा!
वध का नाम न था जिस घर में, वो बधिकों की बस्ती है,
वो धरती क्यों रक्त सनी है, ओ! तुलसी बाबा!
मानस की चौपाई भूले, पढ़ते कुर्सी-चालिसा,
कथनी से हटके करनी है, ओ! तुलसी बाबा!
मर्यादा की लक्ष्मण रेखा, लाँघ रहे युग के रावण
गिद्धों की सत्ता अपनी है, ओ! तुलसी बाबा!
गाँधी गये राम-धुन गाते, सारे दर्शन साथ गये,
(नेता) सत्ता से धन की मंगनी है, ओ! तुलसी बाबा!
सुन्दर, सबल राम सा राजा, ढूँढ रहा हूँ भारत में,
मधु में ही नृप को हँफनी है, ओ! तुलसी बाबा!
रावण रथी, विरथ रघुवीरा का दर्शन मेरे मन में,
झूठ से सच की आज ठनी है औ तुलसी बाबा!
मानस मोती चुनके 'वाहिद' प्रेम-कोष में रखता है,
निर्धनता में वही धनी है, ओ! तुलसी बाबा!

6/437, विकास नगर
लखनऊ- 22

❏❏❏

मन्दिर में शंख और घड़ियाल बजे । मस्जिद में अजान के स्वर गूँज उठे । मन्दिरों की ओर हिन्दू और मस्जिदों की ओर मुसलमान बढ़ गयें । मस्जिद की मीनार और मन्दिर के गुम्बद ने एक दूसरे को देखा और वे दोनों ही व्यंग्य से मुस्करा उठे । मीनार बोली, "भैया, लोग कितने मूर्ख हैं! इन्हें इतना भी पता नहीं कि ईश्वर इन मिट्टी की दीवारों में नहीं, बल्कि स्वयं उन्हीं में विराजमान हैं ।'

गुम्बद ने कहा, 'धीरे बोलो बहन, ये लोग सुनेंगे, तो हम दोनों को तोड़ डालेंगे । क्या तुम जानती नहीं, इंसान कितना जिद्दी होता है? इसकी समझ में जो आ जाये सो ठीक है, बाकी सब गलत है ।'

'हाँ, भैया, तुम ठीक कहते हो, 'मीनार ने कहा, 'वाकई इंसान सच्चाई को सहन नहीं कर सकता ।'

प्रस्तुति : आचार्य राम प्रकाश मिश्र

फिर धनुष-वाण ले राम उठो !

— डॉ0 उर्मिलेश कुमार शंखधार

रावण-दल सीमा लाँघ रहा,
फिर धनुष-वाण ले राम उठो!
इन मरीचाी घुसपैठों के
षड़यंत्र न किंचित चल पायें,
फिर भेष बदल रावण न कभी
शांति की सिया को छल पायें;
निशिचर-विहीन हो फिर धरती
ले प्रलयंकर का नाम उठो!
जो शान्ति-विनय की भाषा को
कायरता समझा करते हैं,
दुर्बुद्ध-दुरभिमानी नर वे
रावण बनकर ही मरते हैं;
कर क्षार आज उनकी लंका,
फिर से अतुलित बलधाम उठो!
आतंक-तिमिर फैलाकर जो
आलोक चाहते जीवन में,
वे कायर तम में मिल जाते
धिक्कारे जाते जन-जन में;
उनके दुष्कर्मों का लेकर,
फिर आज घोर परिणाम उठो!

—'सुजन'

प्रोफेसर्स कॉलोनी
बदायूँ - 243601
(उ.प्र.)

त्यागपूर्वक भोग करो

–स्वामी विद्यानंद सरस्वती

संसार में दुःख को नकारा नहीं जा सकता किन्तु आनंदस्वरुप परमेश्वर की रची सृष्टि में दुःख हो, आनंद कहीं हो ही नही .... यह कैसे संभव है ? प्रत्येक प्राणी सुख जानकर ही उसमें प्रवृत्त होता और दुःख जानकर उससे निवृत्त होता है। यदि संसार में दुःख होता तो उसमें किसी की प्रवृत्ति न होती, किन्तु हम देखते हैं कि मनुष्य अधिक से अधिक काल तक संसार के पदार्थो का उपभोग करने के उद्देश्य से अपने आयुष्य को बढ़ाने , शरीर को स्वस्थ रखने तथा सुखोपभोग चिंतन में प्रवृत्त रहता है। मरणासन्न अवस्था को प्राप्त होने पर भी जैसे-जैसे कुछ काल और यहां बना रहने के लिए हाथ-पैर मारता है।''जीवेम शरद शतम्'' से संतुष्ट न होकर 'भूयश्च शरदः शतात् '' --- सौ वर्ष से भी अधिक जीते रहने की कामना करता है। दुख को सहते हुए भी मनुष्य मौत को भगाकर यहां जीना चाहता है। ऐसा क्यों है?

वस्तुतः संसार में सुख-दुख दोनों है, किन्तु दुख की तुलना में सुख कहीं अधिक है।'अकामः न कुतश्चनोनः' ---पूर्णकाम परमेश्वर ने अपने लिए नहीं, जीव के कल्याण के लिए-- उसके भोगापवर्ग के लिए सृष्टि की रचना की है। सुख भोग में भी है और अपवर्ग में भी। भोगरुप सुख में दुख का मिश्रण रहता है, जबकि अपवर्ग का सुख विशुद्ध आनन्दमय हैं, अतः अपवर्ग -मोक्ष की अपेक्षा से भोग हेय है और भोग की अपेक्षा से अपवर्ग श्रेयस्कर है।

ऐसा जानकर और ''स्वल्पाद् भूरिरक्षणम्'' के सिद्धान्त को मानकर भोग को अपवर्ग के साधन मात्र के रुप मे अपनाकर संसार में रहने वाले के लिए संसार दुखरुप नहीं रह जाता। दुख ही अत्यंत निवृत्ति 'हीन' है जो मोक्ष का अपर नाम है। इसका उपाय है विवेकख्याति ---- प्रकृति-पुरुष के भेद का साक्षात्कार ज्ञान। इस प्रकार दुख का कारण संसार नही, अपितु उसके यथार्थ स्वरुप को न समझना है।

भोग दो प्रकार का है--- भोग से भोग और त्याग से भोग। भोग से भोग वह है जो मनुष्य अपनी इंद्रियों से स्वयं करता है। ऐसे भोग की मर्यादा होती है। हम उतना ही खा सकते हैं जितना पेट में समा सके और पच सके। उससे अधिक ग्रहण करने पर वह आत्मसात् नहीं होगा। अनाधिकार चेष्टा करने पर रोगग्रस्त होकर जो पहले पच गया था उसे भी साथ ले जाएगा। पैसे वाला जिनती चाहे रोटी खरीद सकता है परंतु खा कितनी सकता हैं? जितनें चाहे मकान बनवा सकता है, किंतु रहेगा कितनों मे ? जितनी चाहे मोटरें खरीद सकता है किन्तु उसके काम कितनी आ सकेगी? चार-छह रोटियों से अधिक वह खा नहीं सकता, एक मकान से अधिक वह खा नहीं सकता, एक मकान से अधिक में रह नहीं सकता, एक से अधिक मोटरों में बैठ नहीं सकता,। भोग से भोग अमर्याद नहीं किया जा सकता।

त्याग का पर्याय दान है। दान से भोग की सीमा नहीं। सैकड़ों-हजारों-लाखों को खिलाया जा सकता है जितनों को चाहे वस्त्र दान किये जा सकते हैं। अपने सामर्थ्य के अनुसार जितने चाहे औषधालय, विद्यालय, धर्मशालाएं, कुएं आदि बनवाये जा सकते हैं। जिनसे लाखों लोग लाभ उठा सकते हैं। जैसे इन लोकोपकारक कार्यो की कोई सीमा नहीं, वैसे ही उनसे लाभान्वित होने वाले लोगों को सुखी देखकर प्राप्त होने वाले आनन्द की भी कोई सीमा नहीं। मनुष्य की समस्त प्रवृत्ति अधिकाधिक आनन्द-लाभ के लिए होती है। यह ध्रुव सत्य है कि दूसरों को खिलाने में जो आनन्द आता है वह स्वयं खाने की तुलना में कहीं अधिक होता है। इसलिए उपनिषद् कहती है – त्यागपूर्व भोग करो।

('त्यागवाद' से साभार)

हम किधर जा रहे हैं

– आचार्य दिवाकर शर्मा

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । समाज की उन्नति और अवनति का उस पर अवश्य प्रभाव पड़ता है । वह स्वयं को अच्छा बनाने का भरसक प्रयत्न करता है पर अधिकांश रुप में वह वैसा नहीं बन पाता जैसा हृदय से चाहता है । वह कई बार दिखता कुछ है और होता कुछ है । उसकी निष्ठा की भी यही स्थिति है । वह प्रदर्शन के लिए बहुत कुछ ज्ञान ध्यान की बातें करता हैं । पर वास्तव में इसके विपरीत होता है ।

इसके विपरीत कुछ लोग भीतर और बाहर से एक जैसा सीधा सादा सपाट जीवन जीते हैं । दोनो प्रकार के, अर्थात् दुरात्मा और महात्मा लोगों के विषय में संस्कृत में एक सुन्दर सुभाषित है–

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् । मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ।।

अर्थात् महात्मा मन, वाणी और कर्म से एक जैसे होते हैं जबकि दुरात्मा (दुष्ट) मन से कुछ, वाणी से कुछ और कर्म से कुछ भिन्न ही होते हैं ।

भक्ति भाव के विषय में भी स्थिति कुछ ऐसी ही है । आज के समय में निष्काम भाव से भजन करना तो असम्भव सा ही हो गया है, सकाम भाव से ही प्रायः मानव भजन में प्रवृत्त होता है । जबकि सन्त कबीरदास जी की इस विषय में बड़ी सटीक उक्ति है । उसे सुनकर हम अपने भीतर झाँकने का प्रयत्न करें–

जब तक भक्ति सकाम है तक तक निष्फल सेव । कह कबीर वे क्यों मिलें, निष्कामी निज देव ।।

अर्थात् हमारे प्रभु अकारणकरुण हैं तो हम कारण सहित भक्ति क्यों करें । अर्थात् किसी स्वार्थ को लेकर भक्ति करना निष्फल है ।

आजकल कुछ लोगों को ऐसा कहते सुनते प्रायः देखा जाता है कि हमको सत्संग में जाते हुए, भजन करते हुए गीता जी तथा मानस जी का पाठ करते हुए इतने दिन हो गये, किन्तु न तो हमें कोई चमत्कार दिखा और न हमारा कोई लाभ हुआ । और कुछ समय के पश्चात वे सत्संग और जप तप को छोड़ देते हैं । तथा इस विषय मे अनर्गल प्रलाप भी करने लगते है । अस्तु ।

इस विषय में जब सन्तजनों के श्रीचरणों में जिज्ञासा रखी तो समाधान मिला कि आज कुछ ऐसी परम्परा चल पड़ी है कि लोग ध्यान एकाग्र किये बिना सद्ग्रन्थों का अर्थ चिन्तन किये बिना जो पाठ एवं जप करते रहते हैं उसका इच्छित फल प्राप्त नहीं हो सकता ।

मनुष्य इस बात की ओर सचेष्ट हों कि हमारा मन स्थिर हो, ध्यान एकाग्र हो, अर्थ चिन्तन हो भाव की तन्मयता हो तथा तदनुसार आचरण हो तो निश्चय ही वांछित फल संभव है । यदि ऐसा न हो पाये तों विचार करें कि हमारा मन भजन में एकाग्र क्यों नहीं हो पा रहा है ।

साथ ही सन्त शिरोमणि प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गोस्वामी जी महाराज के इस आदेश का ध्यान करें–

कामिहिं नारि पियारि जिमि लोभिहिं प्रिय जिमि दाम । तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम ।।

अर्थात् जिस प्रकार कामी पुरुष नारी प्रिय लगती है और धन के लोभी व्यक्ति को रुपया प्रिय होता है उसी प्रकार क्या भगवान् श्री राम हमें प्रिय लगते हैं? यदि नहीं तो अवश्य हमारे भाव में, हमारी निष्ठा में, हमारे भजन में कमी है । दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी कह सकते हैं कि जिस प्रकार गीता जी, मानस जी

का पाठ, ध्यान, सत्संग स्वाध्याय के प्रति पूर्ण समर्पित होकर आदर एवं श्रद्धापूर्वक निष्काम भाव से निरन्तर भावमग्न रहें तो निश्चय ही हम पर वे अकारण करुण करुणावरुणालय श्रीसीताराम जी अवश्य कृपा करेंगे।

आज हमारी श्रद्धा औपचारिकता तक ही सीमित है। हम भजन तथा सद्ग्रन्थों के पाठ को एक औपचारिक क्रिया मानकर करते हैं। तभी तो हमारे घरों मे मानस जी और भागवत जी उतना सम्मान नहीं पाते जितना अपेक्षित है। पूज्य गुरुदेव प्रवचनों में प्रायः आदेश और उपदेश करते हैं इन्हें साकार ब्रह्म की भाँति अक्षराकार ब्रम्हा मानकार इनका सम्मान करो और अत्यन्त श्रद्धा से इनका पाठ करो तो निश्चय ही कल्याण होगा। दूसरी ओर हमारी स्थिति यह है कि कुछ अपवादों को छोड़कर हमारे घरों में मानस जी और भागवत जी को वैसा सम्मान प्राप्त नहीं है जैसा हमारे सिख भाइयों में 'गुरुग्रन्थसाहिब' के प्रति देखा जाता है। हमारे यहाँ इन ब्रह्मरूप ग्रन्थों को सामान्य स्थान पर रख दिया जाता है और विशेष अवसर पर तलाश किया जाता है और फिर ऐसे ही उपेक्षाभाव से रख दिया जाता है। तदनुसार आचरण तो दूर की बात है। पूज्यपाद गोस्वामी जी महाराज का हमारे आचरण के विषय में कितना सटीक कथन है–

सारदूल को स्वांग करि कूकर की करतूति । तुलसी तापर चाहिए कीरति विजय विभूति ।।

अर्थात् हम आडम्बर तो सिंह जैसा करते हैं किन्तु हमारे कार्य कूकर (श्वान) जैसे होते हैं। उस पर भी हम कीर्ति, विजय और विभूति (ऐश्वर्य) चाहते हैं । यह कैसे सम्भव है ?

देश के सुप्रसिद्ध समाजवादी नेता डॉ0 राममनोहर लोहिया ने उच्च शिक्षा जर्मनी में प्राप्त की था। 1933 में बर्लिन विश्वविद्यालय में रह कर गाँधी जी के 'नमक और सत्याग्रह' विषय पर अनुबंध पूरा किया और पी.एच.डी. की डिग्री ली।

उन्हें भारत लौटना था। परन्तु उस समय उनके पास मद्रास बन्दरगाह तक टिकट के पैसे थे और जाना चाहते थे कलकत्ता। मद्रास पहुँच कर तेईस वर्षीय मेधावी युवक लोहिया प्रसिद्ध पत्र 'हिन्दू' के कार्यालय में गये। सीधे सम्पादक के कक्ष में प्रवेश किया। यकायक बेधड़क अन्दर आने वाले युवक की ओर सम्पादक ने कौतूहल से देखा। लोहिया जी ने तत्काल ही कहा – "मैं जर्मनी से आ रहा हूँ, आपको एक लेख देना चाहता हूँ। 'कहाँ है लेख? 'कागज कलम दो, अभी लिख दूँगा।' लोहिया बोले। तब सम्पादक ने पूछा- 'ऐसा क्यों?' 'मुझे पैसे चाहिये, कलकत्ता जाना है। सीधी बात का प्रभाव भी सीधा ही होता है। सम्पादक ने चुपचाप पैड और पैन्सिल आगे बढ़ा दी। कागज पर लोहिया की लेखनी तेजी से चलने लगी और देखते ही देखते एक लेख पूरा हो गया। युवक की योग्यता से सम्पादक महोदय अत्यधिक प्रभावित हुए। लेख लिया और पारिश्रमिक दिया पच्चीस रुपये। लोहिया जी रात्रि में अपने एक मित्र के पास रुके और अगले दिन कलकत्ता प्रस्थान कर दिया।

प्रस्तुति : मधुसूदन द्विवेदी

नारी वंदनीय और पूज्यनीय है

– प्रो0 अवधेश प्रसाद पाण्डे
सचिव, मध्य प्रदेश तुलसी अकादेमी

भारत भूमि में जब-जब वैचारिक संकट के साथ-साथ लोक जीवन में पीड़ा पराकाष्ठा पर पहुँची और गहन अंधकार जन-जीवन को भयभीत करने लगा, तभी उस महातिमिर के विनाश के लिए कोई न कोई ज्योति पुंज प्रकट हुआ, जिसने तिमिराच्छन्न वातावरण को ज्ञान के प्रकाश में आलोकित कर मार्ग प्रशस्त किया। प्रातः स्मरणीय महाकवि संत तुलसीदास का प्रादुर्भाव ऐसे ही काल-खंड में हुआ, जब लोक जीवन में एक अवलम्बन की खोज थी। संत तुलसीदास जी ने रामचरितमानस एवं राम भक्ति पर केन्द्रित-अनेक रचनाओं का सृजन कर एक नव सांस्कृतिक पुनर्जागरण का शुभारंभ किया। जाति, सम्प्रदाय, ऊँच-नीच, छुआ-छूत, शासक-शोषित शोषक-शोषित अनेक वर्गो में विभाजित समाज को भक्ति की अविरल धारा प्रवाहित कर एक आशा का संचार करते हुए सभी प्राणियों में एक ही राम-तत्व के दर्शन कराये।

भगवान श्री राम पंचवटी की ओर सोने के माया-मृग का वध कर लक्ष्मण सहित आगे बढ़ते हैं। लक्ष्मण जीके हाथ में मृग-चर्म है। भगवान राम अनेक आनन्द के भावों में डूबे हुए सीता जी को मृग-चर्म का उपहार सौंपने के लिए आतुर हैं। सीता जी ने श्री राम से जीवन में इस मृग-चर्म के अतिरिक्त कभी कुछ माँगा नहीं था। जनकपुर अयोध्या आगमन और राजप्रसाद के प्रथम मिलन के अवसर पर भगवान राम ने कहा था- सीते! मेरे रघुकुल में हमारे पूज्य पिताजी तक अनेक रानियों को रखने की परिपाटी रही है, किन्तु आज मैं, यद्यपि आपके लिए वस्त्र आभूषण या कि पार्थिव उपहार लेकर मिलने नहीं आया, अपितु एक वचन उपहार के रुप में देना चाहता हूँ, वह, यह कि मेरे जीवन में सीते! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य स्त्री का प्रवेश किसी भी स्थिति में नहीं होगा, और मैं एक पत्नीव्रती रहूँगा। एक बार चित्रकूट में भी ऐसा प्रसंग उपस्थित हुआ, मानो, भगवान राम सीता को कोई उपहार देने की तैयारी कर रहे हैं, स्फटिक शिला में आसीन सीताजी को चित्रकूट के वनों के विविध पुष्पों को चुनकर उन्हें नख में शिख तक श्रृँगारित कर ही रहे थे-

एक बार चुन कुसुम सुहाए।
निज कर भूषण राम बनाए पहिराए सीता तिहिं सादर।।

लेकिन इसी बीच जयन्त द्वारा सीताजी के चरण में चोंच मार देने की घटना घट गई और आगे कुछ उपकृत करने का पटाक्षेप हो गया। अब पंचवटी में मर्यादा पुरूषोत्तम राम कंचनमृग का मृग छाल लिए हुए, सीता जी को उपहार देने का मृदुल भाव लिए हुए पंचवटी पहुँचे तो वहाँ एक हृदय विदारक दृश्य उपस्थित हो गया कि पर्णकुटी सीताजी के बिना सूनी थी-

हेमको हरिन हनि फिरे रघुकुल-मनि, लषन ललति कर लिये मृगछाल।
आश्रम आवत चले, सगुन न भाए भले, फरके बाम बाहु, लोचन विसाल।।
सरित जल मलिन, सरनि सूखे नलिन, अलि न गुंजत, कल कूजैं न मराल।
कोलिनि-कोल-किरात जहाँ तहाँ बिलखात, वन विलोकि जात खग-मृग भाल।।
समुझि सहमे सुठि, प्रिया तौ न आई उठि, तुलसी बिबरन परन-तृन-साल।
औरे सो सब समाजु, कुसल न देखौं आजु, गहबर हिय कहैं कोसल पाल ।।

अर्थात् इतने में ही रघुवंश मणि भगवान, राम कनक मृग को मारकर लौटे। लक्ष्मण जी अपने हाथ में उसकी मनोहर मृगछाल लिए हुए थे। आश्रम को आते समय उन्हें अच्छे शकुन नहीं हुए। उनकी वाम भुजा और विशाल नयन फड़क रहे थे। नदियों का जल मैला दिखाई देता था। कमल तालाबों में सूख रहे थे, भ्रमर गुंजार नहीं करते

थे और हंस मनोहर शब्द नहीं करते थे। किरात, कोल और कोलिनी जहाँ-तहाँ बिलख रहे थे, वन के पक्षी और मृग समूह की ओर देखा नहीं जाता था।

तुलसीदास जी कहते हैं- जब कोसल पाल प्रभु राम ने देखा कि प्राण प्रिया सीताजी स्वागत करने के लिए नहीं आई और पर्णकुटी भी विवरण (कान्तिहीन) जान पड़ती है तो वे सब रहस्य जानकर सहम गये और विह्वल हृदय से कहने लगे -

"आज सारा समाज और ही तरह का हो रहा है, मुझे कुशल नहीं जान पड़ती।"

राम को लगा कि वे जंगल में भटककर कहीं अन्यत्र तो नहीं पहुँच गये हैं, क्योकि वहाँ के वृक्ष न तो फूले हैं, और न फले हैं। भौरें , पक्षी और मृग तो मानो वहाँ कभी थे ही नहीं, इसके सिवा न वहाँ मुनि थे और न मुनिपत्नियाँ ही। पर्णकुटी भी उजड़ी पड़ी थी। भगवान पंचवटी को पहचान कर खड़े ही रह गये। वे कहने लगे - 'आज प्राण प्रिया प्रसन्नचित्त से जल लेकर नहीं उठी और न उसने कोई प्रिय वचन ही कहे, (और दिन की तरह) आज पत्तों के झरोखों से देखकर उसने आवाज भी नहीं दी।' इस प्रकार विरह-व्यथा से थकित देखकर उन्हें लक्ष्मण जी ने सहारा दिया, यथा-

आश्रम निरखि भूले, द्रुम न फले फूले, अलि-खग-मृग मानो कबहुं न रहे।
मुनि न मुनिबधूटी, ऊजरी परन कुटी, पंचवटी पहिचानि ठाढ़ेइ रहे।।
उठी न सलिल लिए, प्रेम प्रमुदित हिए, प्रिया न पुलकि प्रिय वचन कहे।
पल्लव-सालन हेरी, प्रान वल्लभा न टेरी, विरह बिथकि लखि लषन गहे।।

सीता की वियोग-व्यथा से पीड़ित राम व्याकुल अवस्था में प्राण-प्रिया को वन-वन ढूँढ रहे हैं। वे वृक्ष-द्रुम-लताओं, पशु-पक्षी कीट पतंगों तक से सीता जी का समाचार पूँछते हैं यथा -

'हे खग-मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृग-नैनी, हा! जानकी तोहि बिनु आजू '-

इत्यादि कहते हुए वियोग की असहनीय पीड़ा से अचेत हो रहे हैं।

यों तो सीता की खोज के लिए गिद्ध-राज जटायु, सुग्रीव, हनुमान, शबरी, स्वयंप्रभा, संपाती, विभीषण इत्यादि प्रमुख सहयोगी रहे हैं, किन्तु सीता जी का सर्वप्रथम समाचार देने के विषय में जब मैने अन्य ग्रंथों के पन्ने-पलटे तो यह जानकर आनन्द आया कि श्री सीताजी का सर्वप्रथम समाचार एक काले सर्पराज ने दिया। वनों में भटकतें हुए विरही राम भयानक नाग-देवता से ही पूँछने लगते हैं। ओ! वृक्ष के नए पत्ते के समान लप-लपाती जीभ वाले भुजंग! दुपहरिया फूल के समान लाल लोचन ! पवन अहारी! मैं तुमसे पूंछता हूँ - 'तुमने कोमलांगी शरद चन्द्रमुखी किसी स्त्री को कहीं जाते हुए तो नही देखा है —

भो-भो भुजंग तरू पल्लव लोल जिन्हा, बंधूक पुष्प वर शोभित पुस्कराक्ष।
प्रच्छामि ते पवन भोजन कोमलांगी, काचित्वया शरदचन्द्र मुखीन दृष्टा।। (हनुमन्नाटक 5/29)

सर्प ने कहा हे नाथ'! मैने इधर जाते हुए एक मुन्दरी को देखा है, जो अभी-अभी एक राक्षस ने उन्हें हरण कर लिया। यह सुनकर श्री राम बताए हुए मार्ग की ओर दौड़ पड़े, और उन्होंने पृथ्वी पर पड़ा हुआ श्री जानकी का चरण चिन्ह मार्ग में पाया। रघुनाथ ने अपने नेत्रों के अश्रु से उस चिन्ह की धूल को गीलाकर कर इस प्रकार शरीर में पोत लिया, जैसे शंकर जी विभूति लगाते हैं। आगे मार्ग में कहीं सीता जी के हृदय का हार मिला, कहीं कंगन मिला, कहीं चरणों का नुपूर मिला, (यह वे चिन्ह की भांति गिराती फेंकती गई थीं) और कहीं उत्तरीय वस्त्र मिला। *यथा*

फिरत प्रभु पूछत वन-द्रुम-बेली।
अहो बंधु, काहू अवलोकी, इहिं मग वधू अकेली?
अहो विंहग, अहां पनंग-नृप या कंदर के राई।
मेरी विपति मिटाओ, जनाकि देहु बताई।। — सूररामचरितावली/54

चंपक-प्रहुपबरन तन सुंदर, मनो चित्र अवरेखी
हो रघुनाथ, निसाचर के संग अबै जात हौं देखी।
यह सुनि धावत धरनि, चरन की प्रतिमा पथ में पाई।।
नैन-नीर रघुनाथ सानि सो, सिव ज्यौं गात चढ़ाई।
कहुं हिय-हार कहुं कर-कंकन, कहुं नूपुर, कहुं चीर।
'सूरदास' बन-बन अवलोकत, बिलख-बदन रधुवीर।।

एक ओर जनकपुर में सखियों के कहने पर भी मुनि गौतम की पत्नी अहिल्या की गति को याद करके (जो चरण स्पर्श करते ही देवी बनकर आकाश में उड़ गयी थी) सीता जी अपने हाथों से भगवान राम के चरण को नहीं छूतीं।रघुवंश विभूषण श्री राम जी सीताजी के इस अलौकिक प्रेम को जानकर मन ही मन हँसने लगे, यथा-

गौतम तिय गति सुरित करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिंहसे रघुबंस मनि प्रीति अलौकिक जानि।

उपरोक्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि सीताजी ने विनोद में ही सही, श्री राम के चरण-रज के स्पर्श से अहित्या की तरह आकाश में उड़ जाने के भयभीत होने से चरण स्पर्श नहीं किया, किन्तु श्री राम ने सीता जी के चरण, जिस पंचवटी के पर्णकुटीर में पड़े थे, उसकी सात प्रदक्षिणा कर खोज में निकले थे और धरती में चरण की प्रतिमा और सीता के चरण रज को आँसुओं से सानकर भभूति की भाँति शरीर में पोत लिया था। इससे यह भाव प्रतिध्वनित होता है कि महादेवियाँ अनादि काल से वंदनीय और पूज्यनीय रही हैं।

मुल्ला रमू जी संस्कृति भवन,
तृतीय तल, बाण गंगा, भोपाल (म. प्र.) - 462003

सुनि अति सुख पाये

—मुकुन्द लाल तिवारी

रघुबर छबिमन लेत चुराये।
नील कमल तन सुभग मनोहर शोभा निरखि अनंग लजाये।।
चालिस आठ चिन्ह पद पंकज नूपुर धुनि सुनि अति सुख पाये।
रतन जड़ित कर धौनी कटि में तालखि विद्युत गण शरमाये।।
शुचि आजानु भुजन में जननी रुचिर सुभग भूषण पहिराये।।
अधर अरुण फल चिबुक नासिका श्रवण कपोल मनोहर भाये।
भ्रकुटी बिकट भाल अति सुन्दर निरखिनैन जलजात लजाये।
द्विज मुकुन्द किम कहे रूप गुण आप प्रकट भये विधि न बनाये।।

जहाँ पत्थर बोलते हैं

– प्रस्तुति : दुर्गानारायण तिवारी

उत्तर प्रदेश की प्रमुख औद्योगिक नगरी कानपुर नगर जहाँ किसी को अपने से ही फुर्सत नहीं है, साहित्य संस्कृति और समाज के लिये विचार करना दूर की बात है यद्यपि कानपुर ने अनेक स्वनामधन्य व्यक्तित्व के अनमोल रतन पैदा किए, जिनका नाम साहित्य संस्कृति और समाज की सेवा लिए अमर रहेगा। इस क्रम में आज श्री बद्रीनारायण जी तिवारी का नाम बरबस ही सामने आता है। 'मानस संगम' संस्था के अधिष्ठाता श्री तिवारी जी का नाम आज देश के कोने -कोने में रहने वाले मानस प्रेमी जानते हैं।

कानपुर महानगर के प्रसिद्ध 'शिवाला' (श्री प्रयाग नारायण मंदिर) में स्थापित 'मानस संगम' में प्रतिवर्ष देश विदेश के प्रसिद्ध मानस वक्ता तथा साहित्यकारों का संगम होता है। साहित्य संस्कृति एवं कला का अनूठा संगम मानस के माध्यम से यही देखने को मिलता है।

कानपुर के सुरम्य स्थल मोतीझील में 'तुलसी उपवन' का निर्माण इस संस्था का एक महत्वपूर्ण कार्य है। आज 'तुलसी उपवन' कानपुर आये देश- विदेश के पर्यटकों कला और साहित्य के चितेरों तथ प्रेमियों के आकर्षण का मुख्य केन्द्र है। तुलसी उपवन के बीचों-बीच रामचरितमानस के रचयिता युग प्रवर्तक महाकवि गोस्वामी तुलसीदास की प्रतिमा स्थापित है। कमल के फूल के बीचो-बीच महाकवि की मूर्ति बनाई गयी हैं।

कमल के फूल के नीचे कई कोणीय शिला लेखों के घेरे में ग्यारह हजार शब्दों में तुलसी तथा मानस पर देश विदेश के मानस विद्वानों एवं श्रेष्ठ साहित्यकारों के हदयोद्‌गार अंकित हैं। जो कार्य पुस्तकों में भी नहीं हो सका हैं उसे मानस संगम द्वारा शिला लेखों पर अंकित कर दिया गया हैं। कमलासीन तुलसी की संगमरमरी प्रतिभा को केन्द्रीय स्वरुप दिया गया है। मानस के छह प्रसंगों ने जिन्हें प्रस्तर शिल्प के माध्यम से जीवन्तता प्रदान कर राष्ट्रीय एकता धारा को बल मिला है।

भारतीय गौरव – गरिमा के प्रासंगिक और अनुकरणीय प्रसंगों की मनोहारी झाँकियों, त्याग और आदर्श की दोहरी प्रतीक 'चरण पादुका' जिन्हें देकर श्री राम राज्य सिंहासन से युक्त हो गये और पाकर श्री भरत पूरी सेवा भावना और तटमयता से राज्य संचालन के दायित्व को निभा सके ये संगम प्रसंग तुलसी उपवन में साकार देखे जा सकते हैं।

'प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत शीश धरि लीन्हीं ।।

यहाँ पर एक ओर त्याग का सर्वोत्तम आदर्श देखते को मिलता है तो दूसरी और अन्याय के विरोध स्वरुप श्री राम का धनुष और तरकस भी दिखाई पड़ रहा है।

खैंचि सरासन श्रवण लागि, छोड़े सर इकतीस । रघुनायक सायक चले, मानहुँ काल फंणीस।।

इन पंक्तियों के शिला लेख के साथ ही खड़ा है भगवान श्री राम का धनुष और तरकस, जो अन्याय का विरोध करने की प्रेरणा के स्वाभाविक मानव- जीवन दर्शन का बोध कराता हैं। इसे देखकर स्वतः हृदय में अन्याय के विरूद्ध मर मिटने की भावना जागृत हो जाती हैं।

सुन्दर तथा मनोहरी पुप्पलताओं के बीचोबीच गुजरती छोटी नदी और उसके तट पर युग शक्ति तपी साधक, महामुनि वशिष्ठ और कोल- किरातों के प्रतिनिधि केवट का सहज मिलन जो अछूतों तथा पतितों को गले लगाकर प्रेम करने का सन्देश दे रहा है।

राम सखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुटत सनेह समेटा।।

प्रेम विह्वल होकर शबरी द्वारा भगवान श्रीराम को फल खिलाते हुये देखकर दर्शक पर जो छाप पड़ती है। वह समाज के लिये कम मूल्यवान नहीं हैं।

कन्दमूल फल अति सरस दिये राम कहुँ आनि। प्रेम सहित प्रभु खाये बारम्बार बखानि।।

सामाजिक सद्‌भावना और राष्ट्रीय एकता की ये भावना पूर्ण प्रस्तर प्रतिमायें भारतीय गौरव गाथाओं को दोहराते हुये नैतिक मूल्यों को जानने, समझने और जीने की प्रेरणा देती हैं।

भक्तवत्सल राम जटायु मिलन के हृदय स्पर्शी प्रसंग में भगवान श्री राघवेन्द्र द्वारा जटायु को अपनी गोद में लेकर उसकी वेदना को स्वयं स्वीकारते हुये कृपा पूर्वक उसे परम् शक्ति प्रदान करते हैं। यह मानवीय सम्वेदना का अनुपम तथा उत्कृष्ट चित्रण है। श्री राम जटायु से कहते हैं।

जल भरि नयन कहत रघुराई । तात कर्म निज ते गति पाई।।

कठोर संगमरमर को हृदय स्पर्शी प्रभाव छोड़ने का रुप और जीवन देने के लिए जयपुर के विख्यात वस्तुकारों का प्रदर्शन 'तुलसी उपवन' में ही देखने को मिलता है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम और केवट के मिलने के प्रसंग में बनी मूर्ति पूर्ण से अंश का अनुपम मिलन दर्शाता हैं।

मिलि केवटहि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहि भागा।।

श्री रामचरितमानस के इन स्थलों को मूर्तिरुप देकर साहित्य और संस्कृति का रचनात्मक स्वरुप साकार किया गया है। यह उपवन अपने राष्ट्रीय गौरव और सांस्कृतिक चेतना के साथ-साथ भाषा और साहित्य का मिला अनुपम उदाहरण बन गया हैं।

तुलसी उपवन में इटली में जन्में गुजरात में रहकर रामकथा पर अनुपम ग्रंथ हिन्दी में लिखने वाले प्रसिद्ध विद्वान हैं तेस्सीतोरी की प्रतिमा को भी स्थापना की गयी है। श्री तिवारी जी ने अनेक महान विभूतियों को भी इससे जोड़ दिया हैं। यहाँ पर आदर्श, त्याग और मानवीय संदर्भो की एक धारा विशेष से जुड़े मानस प्रसंगों के साथ राम कथा को साकार रुप प्रदान किया गया है।

मूर्ति शिल्प प्रसंग और परिवेश सब कुछ मिलाकर रामकथा के विशिष्ट मंच 'मानस संगम' ने भगवान श्री राम के आदर्शो की परंपरा के साथ पूरा न्याय किया है। यह समाज के गौरव बद्रीनारायण जी तिवारी की सूझबूझ योग्यता उदारता एवं सद्प्रयासों के प्रतिफल स्वरुप ही सम्भव हो सका है।

पीलिया खाल, एअरपोर्ट रोड, इंदौर

आनन्दपूर्ण मानसिक-स्थिति दिव्यता की स्थिति है, शुद्ध आनन्द का स्पन्दन, आत्मा का स्पन्दन है, जो अनिर्वचयनीय है। ऐसे आनन्द और उल्लास की अनुभूति का क्षण जीवन के क्षणों में अत्यन्त मूल्यवान और सार्थक माना जाता है । तैत्तरीयोपनिषद (अनुवाक् 6 मंत्र 1) के ऋषि कहते हैं कि आनन्द ब्रह्म है, ऐसा इसलिए कि आनन्द से ही ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं, आनन्द के द्वारा ही जीवित रहते हैं और प्रायाण करते समय आनन्द में ही समा जाते हैं।

(आर्य जीवन - दर्शन से)

प्रस्तुति : पप्पू मेहरोत्रा

प्रेम न हृदय समाय

–इफ्तिखार अहमद खाँ 'राना'

सीतापति का भक्त था, रावण अनुज सुजान।
रामचन्द्र पग पद्म में, धरें रहत नित ध्यान।।
राम नाम अंकित सदन, लाखे हरसे हनुमान।
विप्ररूप धरि उच्च स्वर, बोल कृपा निधान।।
सुनत विभीषण राम का, नाम मधुर स्वर गान।
आतुर आये द्वार पर, बिद्र देखि हरसान।।
कहयो विभीषण जोरि कर, अहो भाग्य ममं आज।
प्रातः काल दर्शन दियो, राम भक्त द्धिजराज।।
विलग भये दोऊ सन्त जब, घटा भाव अतिरेक।
बोले लंकापति अनुज, जोरि पाणि सविवेक।।
कीजै पावन धाम द्विज, छीजै श्रम तनु ताप।
दर्शन पाय द्विज आपके, मिटा सकल सन्ताप।।
परत चरण कवि बाहु गहि, लीन्हयों हृदय लगाय।
मिले परस्पर भक्त द्वय, प्रेम न हृदय समाय ।।
हुए प्रेम विहवल दोऊ, उपजी प्रीति अपार।
रामभक्ति रस स्रोत बलि, बही नयन जलधार।।
चले विभीषण संग लै, द्विजवर को गहि बाहु।
पहुँचे भीतर भवन है, उर में भरे उछाहु ।।

ए- 27 इन्दिरा नगर, आवास एवं विकास परिषद
कालोनी, रायबेरली (उ0 प्र0)

"माँ"

हम गूंगों को जिह्वा सौपा,
शब्दों का वरदान दिया,
आँखों को दी ज्योति अनूठी,
रूपरंग का ज्ञान दिया।
जब जब भटके हम रस्ते में,
सीधी सुधरी राह दिखाई,
जीवन भर दुःख झेल के उसने,
हम को सुख सम्मान दिया।
खुद भूखी प्यासी रहकर भी,
भूख मिटाती प्यास बुझाती,
नस नस में है रक्त उसी का,
जीवन का विज्ञान दिया।
हम वन वासी जैसे जीते थे,
मानव की तस्वीर बनाई,
मर जाने के बाद भी उसने,
जीने का निर्माण दिया।

–''गीताज'', बलरामपुर

ज्योति लिये जग आई

– ओम प्रकाश बरसैयाँ " ॐकार "

**ज्योति क्रान्ति लिये दमके, सुपिये प्रिय यामिनी का अँधियारा।
दीपक को शुचि श्री यश या, इस यामिनी को हम श्रेय दें सारा ।।
शीश सर्जी सहस्रों मणि की - लड़िया धरणीधर रुप सजाया।
चन्द्र-हँसी अति क्षीण बने, नवदीप-मयात् शशांक न आया।।
वासुकि ने वसुधा तल पै, वसुदान किया निजकोष निकाला।
दीप्ति न है दिन औरन में, बस दीप्ति मयी यह दीपक-माला।।
प्रीति लिये, सुप्रतीति लिये, नव-जीवन-ज्योति लिये जग आई।
ऋद्धि-समृद्धि, सुसिद्ध लिये, मन -वांछित आज मिले फल भाई ।।**

19, जवाहर चौक झासी।

राम -सीता का दाम्पत्य

– दुर्गाचरण मिश्र

गोस्वामी तुलसीदास ने राम-सीता के दाम्पत्य जीवन का अत्यन्त मर्यादित वर्णन किया है। उन्होनें राम के कर्तव्य निष्ठ मर्यादापूर्ण जीवन का ही अपने काव्य में अधिकता से चित्रण किया है। श्री राम चरित मानस में सामाजिक मर्यादाओं के कारण दाम्पत्य-जीवन का अत्यन्त संकुचित वर्णन मिलता है। विवाहोपरान्त राम-सीता का मिलन नहीं दिखाया गया। दोनों अलग अलग ही रहते हैं। यथा–

सेज रुचिर रचि राम उठाये। प्रेम समेत पंलग पौढ़ाये।।
सुन्दर बधुन्ह सासु लै सोई। अति कन्ह जनु सिरमनि उर गोई।।

राज्याभिषेक के बाद के दाम्पत्य-जीवन के वर्णन में गोस्वामी जी ने मर्यादा, कर्तव्य एवं सेवा भाव को ही प्रधानता दिया है।

पति अनुकूल सदा रह सीता। शोभाखानि सुशील विनीता।।
जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। विपुल सदा सेवा विधि गुनी।।
निज कर गृह परिचरजा करई । राम चन्द्र आयुस अनुसरई ।।

बनवास में गोस्वामी जी ने राम-सीता के दाम्पत्य प्रेम की मनोहर झांकी दिखाते हुए लिखा है–

एक बार चुनि कुसुम सुहाये। निजकर भूषण राम बनाये।।
सीतहि पहिराए अति आदर। बैठे फटिक शिला पर सुन्दर।।

इसी प्रकार जब राम खरदूषण-बध कर लौटते हैं, लक्ष्मण सीता को ले आते हैं। सीता का प्रेम उमड़ पड़ता है और दाम्पत्य-अनुराग का सहज रुप दिखाई देता है।

सीता चितव श्याम मृदु गाता । परम् प्रेम लोचन न अघाता।।

बन-गमन-मार्ग में ग्राम बन्धुओं से सीता का वार्तालाप अद्वितीय है। नारी की सहजता, शालीनता, और भाव भंगिमाओं का इतना मनोहर वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। ग्राम बंधुऐं पूछती है, सीस जटा, उर-बाहु विसाल, विलोचन लाल, तिरछी सी भौंहें। तून सरासन- बान धरे तुलसी वन-मारग में सुठि सोहैं।। सादर बारहिं बार सुभायँ चितै तुम्ह त्यों हमरो मनु मोहैं। पूँछत ग्राम बधू सिय सों, कहौ साँवरे से सखि रावरे! से सखि! रावरे को हैं।।

सीता उत्तर देती हैं –

तिन्हहिं विलोकि विलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बर बरनी ।।
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नाम लखन लघु देवर मोरे।।
बहुरि बदन विधु अंचल ढांकी। प्रिय तन चितई भौंह करि बांकी।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि।।

दाम्पत्य-जीवन का यह भाव चित्र सभी को मोह लेता है सभी नर -नारी प्रमुदित हो उठते हैं।

गोस्वामी जी ने कविता वली और गीतावली में दाम्पत्य-जीवन के मनोरम दृश्य चित्रित किए है। विवाह के समय का एक मर्मस्पशी चित्रण है -

राम को रुप निहारित जानकी, कंगन के नग की परछाहीं।
ताते सवै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारत नाहीं।।

कवितावली में सीता की सुकुमारता एवं राम की मनोदशा का ह्रदय स्पर्शी वर्णन मिलता है जो दाम्पत्य भाव का अनुपम चित्रण है।

पुरतें निकसी रघुवीर बधू धरि धीर दए मग में डग द्वै।

झलकी भरि भाल कनीं जलकी, पुट सूखि गए मधुराधर वै।।
फिरि बूझति हैं, चलनों अब केतकी, पर्नकुटी करि हौ कित है।
तिय की लखि आतुरता, पियकी अंखिया अति चारू चलीं जल च्वै।।

दाम्पत्य -प्रेम और समझ को दिखाते हुऐ तुलसीदास जी ने राम-सीता के भावों तथा एक दूसरे के कष्ट निवारण की अभिलाषा और तदनुरुप चेष्टा का उत्कृष्ट वर्णन किया है।

जल को गए लखनु, हैं लरिका, परिखौ, पिय! छांह घरीक है ठाढ़े।
पोंधि पसेउ बयारि करौं, अरु पाय पखारिहौ, भूभुरि-डाढ़े ।।
तुलसी रघुबीर प्रियाश्रम जानि कै, बैठि विलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकीं नाहको नेहु लख्यो, पुलको तनु, वारि बिलोचन बाढ़े ।।

सीता जी की बात मान कर कांटा निकालने के बहाने राम रुके रहते हैं ताकि सीता की थकान कुछ कम हो जाए। राम के अगाध प्रेम का अनुभव कर सीता प्रफुल्लित हो अश्रु विगल हो जाती है।

सीता राम के प्रति इतना पूज्य भाव रखती हैं कि वन-गमन में उनके चरण चिन्हों पर अपने पैर नहीं रखती हैं–

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता, धरित चरन मग चलति सभीता।

वाल्मीकि रामायण में प्रसंग आया है कि रावण अत्यंत सुन्दर, बलिष्ट और प्रतापी राजा था, परन्तु राम को सर्वस्व मानने वाली सीता ने अशोक बाटिका में राक्षसियों से साफ कह दिया- मै तो उसे बांए पैर से भी नहीं छुऊंगी।

चरणेनापि सत्येन न स्पृशेयं निशाचरम्। रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम ।।

रामचरितमानस में मर्मस्पशी दाम्पत्य-भाव उस समय दिखाई पड़ता है जब बन गमन के लिए सीता भी तैयार हो जाती हैं। मां कौशल्या और राम के समझाने का प्रभाव उन पर क्या पड़ा–

शीतल सिख दाद्रक भई कैसे। चकइहिं सरद चंद निशि जैसे।।

प्रिय के वियोग के समान दूसरा कोई दुख नहीं होता। उनके लिए बिना राम स्वर्ग भी नरक के समान है। सीता कहती हैं –

जहं लगि नाथ नेह अरु नाते। पय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।।
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं।।
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ।।

राम के बिना अयोध्या के सुख वैभव में भी वह सुखी नहीं रहेंगी। उनका कथन है-

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी।।
सबहिं भांति पिय सेवा करिहौं । मारग जनित सकल श्रम हरि हौं।।
को प्रभु संग मोहि चितवत हारा। सिंध बधुहि जिमि ससक सिआरा।
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू।।

इतना कह कर सीता व्यथित हो गई। उपर्युक्त कथन में सीता का गहरा दाम्पत्य भाव प्रकट होता है जो कि पावन, मधुर आदर्श और वांछनीय दाम्पत्य जीवन का स्वरुप है।

गीतावली में राम-सीता का वियोग पक्ष अधिक प्रकट हुआ है यद्यपि वन गमन में प्रेम भाव की सुन्दर झलकियां भी है जैसे -

फिर-फिर राम सीय तनु हेरत।
तृषित जानि जल लेन लखन गये,
भुज उठाइ ऊंचे चढ़ि टेरत ।।

सीता-हरण के बाद पंचवटी की क्या दशा होती है इसका मार्मिक वर्णन गीतावली के अरण्य काण्ड में मिलता है।

ऋष्यमूक पर्वत पर सीता के वस्त्राभूषण देखकर राम विगलित हो उठे -

भूषण वसन विलोकत सिय के।
प्रेम विवस मन, कंच पुलक तनु,
नीरज नयन नीर भरे पिय के ।।

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम का संदेश हनुमान द्वारा सीता के पास पहुँचाया -

कहेउ राम बियोग तब सीता। मो कहुँ सकल भए विपरीता।।
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू।।
तत्व प्रेम कर भ्रम अरू तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा।।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं।।

इन पंक्तियों में राम का सीता के प्रति उत्कट अनुराग परिलक्षित होता है। राम का संदेश सुनकर सीता आत्म विसुध हो गई।

लंका से वानस आकर हनुमान ने राम को सीता द्वारा भेजी चूड़ामणि देकर कहा-

नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनक कुमारी।।
मन क्रम वचन चरन अनुरागी। केहि अपराध नाथ हौं त्यागी।।
अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना।।
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा।।

राम के दर्शन की अभिलाषा सीता को प्राण-त्याग से रोकती है। उपर्युक्त संदेश में सीता की स्थिति का आभास होता है।

उपरोक्त विवेचन से राम-सीता के दाम्पत्य जीवन में संयोगावस्था से अधिक वियोगावस्था विस्तृत और विषम रूप से परिलक्षित होती है। राम-सीता के बीच प्रगाढ़ अनुराग और दाम्पत्य भाव विद्यमान है, जोकि वर्तमान समय में उदात्त जीवन मूल्यों और आदर्श प्रेम की प्रेरणा देने वाला है।

— सी-1, 248 इन्दिरा नगर, कानपुर - 26

नवनीत समान बनी हैं

— डॉ0 गशेशदत्त सारस्वत

हैं प्रकटी अवनीतल से, जगतीतल का अभिमान बनी हैं।
मन्थन से छवि-क्षीरधि के निकले नवनीत समान बनी हैं।
गौरव दे गुण गौरव को मधुसूदन-शील-निधान बनी हैं।
जीवन जानकी मंगल-कारक, पुण्य-प्रबोध-विहान बनी हैं।
जो जलजात विलोचनों से, जलजात-गुमान रही हर हैं।
हीन कलंक छपाकर सी, छवि को छविमान रही कर हैं।
जीवन-जायु संजीवन-जीवन, सिन्धु सुधा से रही भर हैं।
भूमि की मंगल जानकी मंगल-मूर्ति-इस-प्रतिभा-वर हैं।

सीतापुर, उ.प्र.



नहिं दरिद्र सम दुख जगमाहीं

—कालीचरण दीक्षित ''कवीश''

''आह में कराह में हँसी में खुशी में सब, मानस पढ़ा करें सुना करें जिया करें,''

एक दिन वह भी था जब भारत में सिद्ध –साधकों संतो ने कंचन-कामिनी से दूर रहने का उपदेश दिया था। आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य के पद्यांश (कथन) को देखियें – 'किमत्र हेयं कनकं च कान्ता।'

सद् गृहस्थों को भी कहते सुना– **''विद्या धनं सर्व धन प्रधानम्''**

पुराख्यानों, लोक-कथाओं में सुना कि कणादि ऋषि ने शालि-चावल के कणों को देखते हुए भी समाज मे सम्मान पाया।

मुनिवर्य दुर्वासा जैसे स्थितप्रज्ञ, जिन्होनें धन संग्रह कभी किया ही नहीं, उनका चलता-फिरता विश्व विद्यालय (शिक्षा संस्थान) था। उनके साथ सहस्रों की संख्या में शिष्य -मंडली रहती, जो पाया खा लिया। शिक्षा संस्थान के कुलपति होते हुए भी दुर्वासा जी ने धन सम्पत्ति संग्रह नहीं किया किन्तु आज उसी भारत वर्ष में आधुनिक विलासितापूर्ण वातावरण में भौतिक चकाचौंध, चमक-दमक और धन के आकर्षण ने भारतीय समाज को आक्रान्त कर दूषित बना दिया। धन की ओर सभी का झुकाव है। धन –लोलुप व्यक्ति विविध प्रकार के जघन्य अमानुषिक अपराध को भी करने पर तुला है। भौतिक समृद्धि भोगवाद में आकर्षित हो आँखं मूँदकर मिथ्या क्षणिक नश्वर भोग ऐश्वर्य की आपाधापी में दिग्भ्रमित हो वास्तविक लक्ष्य से, सत्मार्ग से भटक रहा है। निन्द्य कर्म भी कर रहा है, धन, लोभ, तृष्णा के कारण विमानवीकरण हो गया है। जो लोग पहले कहा करते थे– ''धन मिथ्या है– हाथ का मैल है'' उनका भी आचरण बदल गया है। वे भी भोग परायण हो गये है। उनकी भी मानसिकता , विचार बदल x ; k g z ''सर्वे गुणकाञ्चनमाश्रयन्ति''। ऐसी स्थिति में संत महाकवि तुलसीदास जी की चौपाई अर्धाली याद आने लगी - ''नहीं दरिद्र सम दुख जग माहीं।'' यह अक्षरशः सत्य हो रही है। उन्होनें जीवन के दीर्घानुभाव के आधार पर ठीक ही घोषणा की और लिखा – दीनता गरीबी के समान दूसरा दुःख नहीं। इन्हीं भावों से ओतप्रोत भर्तृहरि जी का कथन है ''न वन्धु मध्ये धन हीन जीवनं....

आज के संसार में पैसे का रैसा है। जर, जमीन, जोरू, तीन ही कलह की जड़ होती हैं। धन के विषय में कहावत प्रसिद्ध हो गयी '' बाप बड़ा न भैया सबसे बड़ा रुपया''। पहले चाहे वह व्यंग में कहा गया हो किन्तु अब तो यह प्रत्यक्ष कहावत चरितार्थ हो रही है। रुपया और रुपया वाला धनी ही बड़ा आदमी कहा जाने लगा। यहाँ तक धन की महिमा का गान करते हुए गृहस्थ कहने लगा– हे धन देव रुपया पैसा! - तुम्ही सब कुछ हो- ''पितु मातु सहायक स्वामि सखा तुम ही धन देव हमारे हो'' कोई तो रुपये की धन की और इंगित कर इबादत करते स्तुति करते हैं– हे रुपया! –''त्वमेव सर्वम् मम देव देव।'' हमने तो किसी किसी को कहते सुना वे प्रार्थना के स्वर में बोल –

''लक्ष्मी मैया यही प्रार्थना है बस आठों याम की। कम से कम तो एक लाटरी खोल दे मेरे नाम की ।।''

कवि विचारक तुलसी ने स्वयं दीनता का अनुभव किया था। उन्होंने ''हनुमान बाहुक'' रचना में लिखा -''टूकन को घर-घर डोलत कंगाल बोलि'' और यह भी लिखा - ''पालो तेरो टूक को'' एक स्थान पर यहाँ तक कह गये कि मैं घर -घर दर-दर दाँत काढ़ कर अपनी गरीबी अकिंचनता का रोना रोता रहा हूँ-'द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद्' । कवितावली में तो तुलसी ने यहाँ तक वर्णन कर दिया –

मातु पिता जग जाई तज्यों विधि हू न लिख्यों कछु भाल भलाई, नीच निरादर भाजन कादर कूकुर - टूकन लागि ललाई।।

कहने का अभ्रिपाय यह है कि कविवर गोस्वामी जी ने दारिद्रय दुःख की विभीषिका का सत्यानुभव किया। सोचा, इस पापी पेट के लिए लोग कैसे निन्दनीय कार्य करते हैं। उन्होंने महसूस किया कि – ''आगि बड़ बागि ते

बड़ी है आगि पेट की'' । वे जन्मकाल से अभावग्रस्त दीन रहे । उनकी दीनता उनके अन्तस्साक्ष्य, उनकी काव्य कृतियों में देखने को मिलती है । तभी तो वे लिखते हैं–

''मारग मारि महीसुर मारि कुमारग कोटिक कै वन लीयो ।''

गरीबी का वर्णन उन्होंने काशी की महामारी दुर्भिक्ष के प्रकरण में भी किया हैं–

''कहै एक एकन सौं कहाँ जाई का करी ।''

आज से सैकड़ों वर्ष पहले उन्होनें लिखा-

मातु पिता बालकन्हिं बुलावहिं । उदर भरई सोइ धर्म सिखावहिं ।। (मानसोक्ति)

वह आज भी भविष्य वाणी ठीक हो रही है । आज विद्या - बुद्धि अर्थ परक हो रही है । माता -पिता बालकों को आध्यात्मोन्मुख होने की प्रेरणा न देकर वरन् उनसे कहते हैं बेटा अर्थकारी विद्या पढ़ो, संपत्ति बढ़ाने वाली जीविकोपार्जन वाली विद्या पढों देश में भी चतुर्विद नारा दिया जा रहा हैं '' गरीबी हटाओ'' । इस समय पढ़ा लिखा सुशिक्षित स्नातक भी बेरोजगार है, उसे नौकरी नहीं मिल रही है, उसके योग्य उसे काम नहीं मिल पा रहा है । बेरोजगारी के कारण अर्थ -अनर्थ अकर्म -विकर्म हो रहे है ।'' आरत काह न करै कुकर्म'' सदुक्ति चरितार्थ हो रही है । भुखमरी , गरीबी, बेरोजगारी, शोषण का ताण्डव चीत्कार कर रहा है । निन्दनीय कर्म भी हो रहे हैं- ''बुभुक्षिता किम् न करोति पापं, '' अतः दरिद्रता अभाव से मुक्त होने हेतु ताप शाप से छुटकारा पाने हेतु कल्याणार्थ आह्वान करना पड़ता है- ''अदीना श्याम शरदः शतं'', इस सन्देश के सुप्रयासों से दारिद्रय को दूर करने हेतु आवश्यक साधन जुटाकर श्रम कर ऋद्धि-सिद्धि अन्नपूर्णादि दैवी शक्तियों की आराधना करते हुये पुरुषार्थ कर दीनता दरिद्रता को दूर करना चाहिए । तभी तो भारतीय संस्कृति में देवोत्थानी एकादशी एवं दीपावली आदि पर्वो पर देवोपासना लक्ष्मी, गणेश, शिव, शक्ति आदि की पूजा की जाती है । धरती माता की जगाते हुए दरिद्रता के दमनार्थ धनागम हेतु भगवान भगवती से प्रार्थना की जाती हे । देवस्तोत्र पाठ किया जाता है । भारतीयों का भावना रही- ''राष्ट्रे वयं जागृयाम् ।''

भारतीय संस्कृति में यह भी ध्यान रखा गया है कि बहुत अधिक धन -भोग न हो क्योंकि फालतू धन अधिकाधिक सम्पत्ति अनिष्ट का भी कारण हो सकता है, कलह विघटन विनाश का भी हेतु बन सकता है । अतः संयमित भोग हो, नियन्त्रित जीवन-चर्या हो, अधिक भोग अधिक धन से घातक परिणाम हो सकेत है । धन के दुरुपयोग से अनुचित भोग हानिकारक होते हैं तभी भागवत् पुराण में धनाधिक्य के दुर्गुण अधिक बताये गये हैं । धन का एक गुण दान करना, पर हित करना उत्तम कहा गया है । तुलसी ने भी दानार्थ धन को धन्य कहा- 'सो धन धन्य प्रथम गति जाकी ।''उन्होंने बताया धन दान करना श्रेष्ठ है । आज यह भी देखने में आता है कि धनाढ्य घमंडी भी हो जाता है, वह धन की सर्वोच्चता प्रतिपादित करने लगता है । चाँदी के टुकड़ों के बल पर वह प्रत्येक क्षेत्र में हावी हो रहा हैं ।कफन –खसौटी की वृत्ति बढ़ने लगी है । येन केन प्रकारेण बैंक बैंलेस बढ़ाने हेतु घूसखोरी, तस्कर व्यापार, जमाखोरी, मिलावट, मुनाफाखोरी, ब्लेकमेल, आदि द्वारा अर्थ–संचय हो रहा है । दरिद्रता, गरीबी सापेक्षिक शब्द हैं जैसे अरबपति की तुलना में करोड़पति गरीब है और लखपति के सामने हजारपति गरीब हे । अतः गरीबी की ठीक ठीक सीमा निर्धारण करना सम्भव नहीं है । साम्यवादी राष्ट्र भी पूंजीवादी पद्धति में धंसतें जा रहे है । वह भी धन को महदुपलब्धि बताने लगे है, चाहे वह उचिव साधनों से कमाया गया हो या अनुचित साधनों से । येन केन प्रकारण धन संग्रह किया जा रहा है, क्योंकि इस समय अर्थ प्रधान युग से व्यक्ति समझता है वह धनवान हो जाये तो उसे समाज में प्रतिष्ठा मिल ही जायेगी ।

भारत अध्यात्म से प्रभावित है, वह सदाचरण को महत्व देता है । कभी भारत जगद्गुरु रहा । धर्म और कृषि प्रधान यह देश है । भारत के अध्यात्म ज्ञान से प्रभावित पूंजीवादी देशों के युवक भी विदेशी से आकर हिप्पी बनकर यहाँ तीर्थाटन करने सत्संग करने लगे है । वे भोग से वितृष्णा प्रगट कर योग, सत्संग में रूचि ले रहे है । आर्यावत्–भारत–पेट पूर्ति, धन की लोलुपता का कभी कायल नही रहा । इसके सदैव शुभ संकल्प रहे । सत्याचरण

शुभाचार के महत्व का पोषक रहा। अर्थवादी लोभ न होकर सतत संयमक सन्तुलित धन के उपार्जन और नियंत्रि संयमित भोग में विश्वास रखा।"संतोष परमं सुखम्" का दृष्टिकोण रखा धर्म प्रधान, अध्यात्मिक इस देश दारिद्रय का दमन एवं पुरुषार्थ करने का प्रयास रहा। किन्तु मदान्ध नहीं होने दिया। अत्यधिक लोभ, प्रयास हो रहा। देश को सुसम्पन्न , समृद्धिशील बनाने का प्रयास होता रहा। किन्तु मदान्ध नहीं होने दिया। अत्यधिक लो मोह, अहं आदि को दोष कहा गया है। किन्तु संसार का अर्थ है सरकने वाला अर्थात् परिवर्तनशील अतः आज भी देखने मे आ रहा है कि धन की दरिद्रता के साथ-साथ बुद्धि -विवेक की भी दरिद्रता है, समवेदना का अभाव अर्थात् सहानुभूति का ह्रास है । **"जो काहू की देखहि विपती—सुखी भये मानहु जग नृपती"**

उक्ति चरितार्थ हो रही है। इन दुर्गुणों दोषों को दूर करने के लिए सच्चर्चा, सद् ग्रंथों के स्वाध्याय, सुशिक्षा की आवश्यकता है और इन विषम परिस्थितियों के मध्य समन्वय लाना होगा। निवृत्ति मूलक आध्यात्मिक परम्परा जहाँ " कर गत शैया, कर तल वास" का सन्देश संतोषी जीवन, संयमित जीवन बनाने की प्रेरणा दी गई हैं, जीवन सार्थक बनाने में जहाँ सत्संग, भगवदुपासना,साधना, सदाचार, कर्त्तव्य—पालन पर बल दिया गया है वहाँ जीवन— साफल्य हेतु एक उत्पादन अर्थ भी है, धन भी है। धन सब कुछ नहीं है। किन्तु बहुत कुछ है क्योंकि दैन्य -दीनता सबसे बड़ा पाप है। "टु बी वीक इज ग्रेट सिन" कमी अथवा दीनता चाहे भौतिक हो या भावनात्मक हो अथवा आध्यत्मिक, अभाव तो अभाव ही है। इसलिए अभावों को कमियों को दूर करना चाहिए, जो दैवी साधना पुरुषार्थ से दूर की जा सकती हैं। पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म—अर्थ—काम मोक्ष सभी आते है। गोस्वमी तुलसीदास ने धन का अभाव दीनता के कटु सत्य का अनुभव तो किया विवेक त्याग कर अर्थ के आश्रितों होने का समर्थन नहीं किया धन संचय कर भोग विलास में प्रवृत्त होने का समर्थन नहीं किया। बुभुक्षा का उल्लेख करते भी धन लिप्सा को प्रश्रय नहीं दिया। अनुचित कमाई के धन को कदापि अच्छा नहीं कहा। शुभ संकल्प शुभ प्रयास से दरिद्रता अंकिचनता दूर करना चाहिए। जिससे समाज में विघटन न हो परस्पर प्रेम बना रहे। "सर्वे भन्तु सुखिनः" का भाव रहे।

आत्मोत्थान सुख समृद्धि उत्कर्ष के लिये राम राज्य के आदर्श से प्रेरणा लेकर सभी को उन्नति करना चाहिए शासक शासित कर्तव्य पालन करें, ऐसा प्रयास हों किसी को बैल की जिन्दगी या कुत्ते की मौत न मरना पड़े। कहीं अपच, अधिकाधिक ऐशो आराम, भोग न आये, भुखमरी भी न आये, सभी सुखी रहें सबकी आवश्यकतायें पूरी हों तभी व्यक्ति का, समाज का और देश का कल्याण होगा।

— ताजूखेल, शाहजहांपुर

बृजभाषा

—आचार्य चैतन्य गोस्वामी

सहजई भाषी या भाषा को बीज मधुर उपजायै गयौ।।
रीझ खीझ के बात करे, मन मौमन सौ विद्यालय गयौ।।
आखर बीच मिठास है एसौ, जैसे बिन्दु में सिन्धु समाय गयौ।।
आज उठत या भाषा में ऐसे, जैसे चन्द्र कुमुदनी जगाय गयौ।।
मधुरन अधरन जुरी बृज भाषा, यामें माखन सों मृदु भाव भरयौ है।।
गोपिन ग्वालन संग केलि करी यह, याकी गलिन में भी स्वाद भरयौ है।
खेलत डोलत बोल सभी पल पल याते काम परयौ है।।
चाखौ है जाने मिठास जु जाकौ, झू मत ऐसे भौरा के हाथ पराग परयौ है।।

श्री षड्भुज महाप्रभु मन्दिर
श्री राधारमण मार्ग, वृन्दावन (मथुरा)

तुलसी का शाश्वत नवलेखन

– डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया

आज जिसे आधुनिक सभ्यता कहकर गौरव के साथ संबोधित किया जाता है। और जिसे बड़प्पन एवं बुद्धिजीविता का सबसे बड़ा समाज का गुण स्वीकार कर लिया गया है वह निश्चित रुप से पश्चिमी शिक्षा-सभ्यता की ही देन है। नयी पीढ़ी इसी फैशन-परस्ती की सभ्यता में तीव्रगति से बहती जा रही है......... जिसके दुष्परिणामों से आज का समाज एवं सम्पूर्ण जन-मानस त्रस्त अनुभव कर रहा है। पवित्र भारतीय भूमि एवं आदर्शो से आपूरित संस्कृति के मध्य जीवन बिताने वाले भारतीयों को इस अनपहचानी सभ्यता से बड़ा डर लग रहा है। कहा नही जा सकता कि यह कीचड़ भरी खरधारा सागर के किस अतल में ले जाकर सबकों डुबायेगी इसी प्रकार के अनास्थावादी, विश्रंखलित आचरणों के प्रति भारतीय मनीषियों ने सदा से लोगों को सावधान किया है। यदि समाज-संचालक उस चेतावनी से लाभ नहीं उठा पाते तो उससे बढ़कर दुर्भाग्य और हो ही क्या सकता है।

उन्हीं मनीषियों में से ही महासंत तुलसीदास थे जिन्होंने कलि-वर्णन के माध्यम से आज के जीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत कर दिया है। नवलेखन में यथार्थ अभिव्यक्ति की बातें जोर-शोर से कही जाती है। यह भी कहा जाता है कि आज का साहित्य जिए एवं भोगे गए क्षणों का साहित्य है। हमें देखना है कि संत तुलसीदास ने सैकड़ों वर्ष पूर्व जिस कलि का वर्णन किया था वह आज के जीवन से कितना अलग है। सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों में हमें आज तुलसीदास जी की बात सोलह आने सत्य प्रतीत होती है। यदि प्रारंभ की ही पंक्तियां ले तो-

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भये सदग्रन्थ, दंभिन्ह निज मति कल्पिकरि प्रगट किए बहु पंथ।

यही नही, वर्ण एवं आश्रम व्यवस्था, वैदिक रीतियों का तिरस्कार आधुनिकता का गुण कहा जाने लगा है।

आज हम देखते हैं कि स्वतंत्रता के नाम पर मनमानी और उच्छंटखलता है, दूसरों का धन अपरहण करने के लिए भ्रष्टाचार के अनेक रास्ते हैं, झूठ और फरेब का सहारा लेकर चलने वाले ही श्रेष्ठ बन गए हैं। मारग सोई जा कहु जोइ भावा।

पंडित सोई जो गाल बजावा। सोई सयान जो परधन हारी।......
जो कह झूठ मसखरी जाना। कलिजुग सोई गुनगंत बखाना।

तुलसी ने लिखा था कि कलिकाल में लोग नारीभक्त होंगे..... 'नारि विवसनर सकल गोसाई।' चरित्रहीनता के अनेक समाचार और घटनाएं रोज पढ़ने-देखने में आती हैं। संयमहीन नयी पीढ़ी इसके पीछे पागल दिखाई देती है। वेद, ब्राह्मण, गुरु-संत के विरोध में गौरव क़ी अनुभूति की जाती है। चरित्र हीनता ने नर-नारियों को अपने-अपने मार्ग से विरत कर दिया है। परिणामतः-

सौभागिनी विभूषणं हीना। विधवन के श्रृंगार नवीना।
ब्रहमज्ञान बिनु नारिनर करहिं न दूसर बात। कौड़ी लागि मौह बस कहहि विप्र -गुरु घात।
बादहिं शुद्र द्विजन्ह सन हम तुमसे कुछ छाटि। जानै ब्रह्म सो विप्रवर आंखि देखावहिं डाटि।

इस प्रकार का जीवन आज का है। लगता है कि तुलसी आज भी कहीं बैठें हुए वर्तमान स्थितियों को बारीकी से देखकर ही इसे लिख रहे हैं। क्या हम इसे यथार्थवादी नवलेखन की सीमा से बाहर कर सकते हैं क्या हमें यह स्वीकारना होगा कि तुलसीदास जैसे मनीषियों की दूर-दृष्टि की शक्ति का ही परिणाम है कि आज के समाज का चित्रण चार सौ पूर्व ही कर गये और उनकी इस चेतावनी का लाभ नही उठा सके। जिस समाज में कभी विद्वान ब्राहम्ण पूज्य माने जाते थे वही पूजने वालो को विवश होकर पूज रहे हैं। वर्णशंकरता बढ़ती जा रही है। साधु-सन्यांसी कहे जाने वाले लोग दाने-दाने को मोहताज है। चरित्रहीनता के इस युग में नारियों का सतीत्व खतरे

में है। माता-पिता की उपेक्षा कर आज की पीढ़ी ससुराल में ही सुख का अनुभव करती है। जो बालक पहिले माता-पिता की छत्रछाया में सुख का अनुभव करते थे वे आज उनसे दूरी बनाकर जीवन बिता रहे हैं। राज्य-संचालन करने वाले सदाचारी नही रहे ......

ससुरारि पियारी लगी जबसे। रिपु रुप कुटुम्ब भये तबते।
नृप पाथ परायन धर्म नहीं । करि दंड बिड़म्ब प्रजा नितही ।

अनुजा-तनुजा की सीमायें भी चरित्रहीनता ने लांघ ली है। इसीलिए न विचार है न शांति है। सभी लोग बिना श्रम के मुफ्त में काम चला लेना चाहते हैं।

कालिकाल बिहाल भये मनुजा। नहिं मानइ कोउं अनुजा-तनुजा।
नहि तोष विचार न सीतलता। जब जाति कुजति भये मंगता।

आए दिन पड़ने वाले अकाल, काल के गाल में समा जाने वाले सैकड़ों निरीह प्राणी मानों हर दिन की सामान्य बातें हो गयी है। गुण-दोष को समझने वाला कोई नहीं। प्रतिभा का दर-दर अनादर हो रहा है....

कविवृन्द उदार दुनी न सुनी। गुन दूषन बात न कोपि गुनी।
कलि बारहिंबार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।
देव न बरषहिं धरनी, बये न जामहिं धान।
तन पोषक नारि नरा सगरे। पर निदंक तै जग मो बगरे।

ये और ऐसी ही अनेक बाते हैं जो आज समाज में घटित हो रही है। लगता है कि संत तुलसी को इन सब का पूर्वाभास था जिन्हें उन्होंने चेतावनी के रुप में पहिले ही प्रस्तुत किया था। आज के अनेक साहित्यकार, जिनमें न तो वैसी प्रतिभा है और न ही दूर दृष्टि ...... केवल यथार्थ और सत्य-तथ्य की बातें करते है। हमें विचार करना होगा कि तुलसी की कलिवर्णन की ऐसी कौन सी बाते हैं जो हमें आज के समाज में दिखाई नहीं पड़ती। हमें यह भी देखना होगा कि वह कौन सी शक्ति है जिसके बल पर तुलसी ने 400 वर्ष पूर्व से सभी बातें लिख डाली जो आज अक्षरशः सत्य है और तब हमें स्वीकारना होगा कि आज का लेखन क्षण-सत्य का नवलेखन हो सकता है किन्तु तुलसी का लेखन शाश्वत नवलेखन है जो कभी भी पुराना नहीं होगा।

हम अभी भी सावधान होकर तुलसी के आदर्शो से मानव-कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। यदि हम इतना ही समझ सकें तो बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

12, एम0 आई0 जी0 हाउसिंग बोर्ड कालोनी,
छतरपुर (म0 प्र0)

"शासन जो असत्य के आधार पर चलता है, समाज जो विषमता को लेकर चलता है और धर्म केवल कर्मकाण्ड में सीमित है, उसे बदलने के लिये बड़ी कड़वी दवा चाहिये। रामचरितमानस रसायन भी है और कड़वी दवा भी है। यदि आपके हृदय में निरन्तर रावण जी रहा है तो रामकथा आप सुनें या न सुनें रावण-कथा अवश्य सुनें। उसके अतिरिक्त कोई कथा आपको भायेगी नहीं, अच्छी लगेगी नहीं। वास्तव में हमारे भीतर, मनुष्य के भीतर, जो एक पशु है जिसे राक्षस कहते हैं वह तो निरन्तर बढ़ता जा रहा है, वह तो निरन्तर जीता है और हम बात राम की करते हैं।"

—महीयसी महादेवी वर्मा

प्रस्तुति : हरिहर नाथ त्रिपाठी

नव मारीच

—डॉ0 ओंकार नाथ त्रिपाठी

रामायण के मारीच !
अच्छा हुआ तुम राम के वाणों से मुक्त हो गये।
सदा के लिए सुप्त हो गये-
इस समय के मारीचों से कहीं
तुम्हारी मुलाकात हो पाती
तो सच मानो तुम्हारी आफत हो जाती
तुमने लगाया था एक मुखौटा
अब तो लोग सिद्धहस्त हैं बदलने में अपना चौखटा
बि तो सीता, लक्ष्मण, राम सभी छले जाते हैं।
अब पंचवटी में नव मारीच पाले जाते हैं।

— 63-ए राय रामचरनदास रोड,
इलाहाबाद,

अन्तर जोति जरति हइ

— 'तृषित' अग्निहोत्री

जा दिन दीनानाथ ढरति हइ ।
सुदिन आपु रूपहि चलि आवति,
दुरदिनु गरत गरति हइ ।।
गरु अरि भीर, धीर चहि गरुअरि,
हरुअरि ते न सरति हइ।
पजरनि जेठ, झरनि सावन की,
कन-कन लइ निखरति हइ ।।
औरन लागि, अ' न सुखु त्यागति,
तेहि जस जग उचरति हइ ।
बोलत बोल अमोल अमिय के-नीचे
सबु निसरति हइ ।।
झूठेहि साँचु, साँचु कहि झूठेहि,
बिरथहि भरमु भरति हइ।
सतगुरु मिलति, कुहासो नासति,
अन्तर जोति जरति हइ ।।
व्याकुल जीव तृषित-विषयन जब
रामहि राम रति हइ।
तादिन कृपा कोर भाधव तेहि
वेगि उवारि धरति हइ।

खसौस 24/402, हरदोई

'कवि कामना'

— राम अवतार दीक्षित (षट्रस)

है बहुत प्रतिबंध बंधन इस धरा पर
स्वॉस लेने को मुझे उन्मुक्त सा आकाश दे दो।
जो न पूरी हो सके बलिदानियों के रक्त मे है।
देश की आराधना को यह चिरन्तन प्यास दे दो।
हिन्द की सत्ता सभाले वर्ष दसियों वर्ष बीते।
कर्ण धारों को प्रभो हिन्दुत्व का विश्वास दे दो
व्यक्त है स्वच्छन्द क्यों ? अव्यक्त तम से घिर रहा है।
जो उभय का तम हरे फिर एक तुलसीदास दे दो,

ग्रा. सदरिया पुर पो. विलग्राम
जनपद - हरदोई (उ.प्र.)

'यूँ कमाल करि देत है'

— गोवर्धन गुप्त 'सुमन'

रसना ने जाकी भूले नाम रसपान कियो, ऐसे मूढ़
हू को जो निहाल करि देत हैं,
काटि भव जाल योग-क्षेम शीश धारि लेत, राम
विधि बाम को विहाल करि देत हैं,
साधक को सिद्धि देत-सिद्धि को प्रसिद्धि देत, पुनि
दै समृद्धि माला-माल करि देत हैं,
श्याम रुप छाँड़ि धनु बान तानि लेत, भक्त मान
राखिबे को यूं कमाल करि देत हैं।

मछरिया रोड, नौबस्ता
कानपुर

राज कि रहई नीति बिनु जाने

– कैप्टन कामता प्रसाद दुबे सम्पादक 'यौधेय' पत्रिका

कमल लोचन कलाकोष कोदण्ड धर कल्याण राशि कौशलाधीश श्रीराम भारतीय संस्कृति के प्राणधन हैं। कुशल सेनापति कुशल समाज शास्त्री महामानव श्रीराम के राम रुप का वर्णन न करके पुरुषोतम राजाराम के रुप एवं गुणों का कुछ दर्शन कराने का प्रयास पाठकों की कृपा से सफलता पाने हेतु किया जा रहा है। राम जो वनवास पाने पर भी प्रसन्न रहे तथा राज्य जाने पर भी दुःखी नहीं हुए सदा एक रस रहे, अपने इसी गुण से लोकप्रिय एवं लोक कष्टहारी बने।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकस्तथा। न मम्ले वनवास दुःखत।।

राम मुकुट को कार्यभार का प्रतीक मानकर सब के सुख के लिए समर्पित होकर सबको मान देकर खुद मान की आकांक्षा न रखकर ही राम राज्य को एक आदर्श राज्य बना सके। कुटुम्ब एवं प्रजा तो दूर स्वयं दशानन जेसे शत्रु की भी भलाई चाहते थे एवं दूत से इसी प्रकार वार्ता की अपेक्षा की ।

काज हमार तासु हित होई । रिपु सन करहु बतकही सोई ।।

साम, दाम, दण्ड, भेद, की नीति के साथ प्रयोग हेतु संधि का प्रस्ताव, विभीषण तथा सुग्रीव को राज्यार्पण, प्रधान गुप्तचर के रुप में विभीषण की नियुक्ति तथा दण्ड (न्याय) के रुप में योग्यता के अनुरूप ही अत्यन्त विश्वसनीय हनुमान के रहते हुए ही सुग्रीव से ही सैन्य संचालन कराना कुशल राज्य तंत्र के अप्रतिम उदाहरण है। राम राज्य का वैभव निम्नवत वर्णित है।

वैर न कोई काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।

बाजार रुचिर न वनई वरनत वस्तु विनगथ पाइए। जहां भूपि रमानिवास तहकी सम्पदा किमि गाइए।

बैठे बजाज सराफ वनिक अनेक मनहू कुवेर ते। सब सुखी सब सच्चरित सुन्दर नारि नर सिसु जरठ जे ।।

यथा राजा तथा प्रजा की उक्ति का सटीक उदाहरण राम राज्य। सब सत चरित्र थे। इसलिये अपनी आवश्यकता भर वस्तु लेते थे। अतः अभाव नही था। सब कर्मठ थे अतः उत्पादन संतुलित था। इस पर न्यास पालक अचल अनिकेत राजा को पाकर समाज धन्य हो गया।

यह तो रही संक्षिप्त चर्चा राज्य वैभव की । वह वैभव कैसे और किस शासन कला से आया? स्वयं श्री राम ने 14 वर्ष तक राज्य से दूर जाते हुए श्री भरत को शासन की देख-रेख करने हेतु चित्रकूट में प्रथम नीति शिक्षा का पाठ पढ़ाया था।

श्री राम ने बताया कि राजा का चरित्र एवं त्याग प्रजा के सुख का समानुपाती होता है। सर्व जन सुखाय राजनीति के कुछ सूत्र इस प्रकार सुझाव गए ।

वाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड श्लोक 11 से राम (भरत से)

(1) क्या पुरोहित, विद्वान एवं देवताओं का सम्मान होता है।(2) क्या परमाणु अस्त्र वैज्ञानिकों एवं अर्थ शस्त्रियों को सम्मान देता है। (3) क्या तुमने अपने ही समान योग्य शास्त्रज्ञ, जितेन्द्रिय, कुलीन एवं इशारों से ही मन की बातों को समझ लेने वालों को मंत्री बनाया हैं? (4) अच्छी मन्त्रणा ही राज्य के विजय का मूल है वह भी तब जब यह मन्त्रणा गुप्त रखी जाए। (5) तुम अधिक सोते तो नहीं हो। रात के पिछले पहर जागकर योजनांए बनातें हो न ? (6) तुम महत्वपूर्ण मामलों पर अकेले तो नही विचार करते । कोई भी मन्त्रणा 2 व्यक्तियों तक गुप्त रहती हैं, तीसरा व्यक्ति आते ही गोपनीयता भंग हो जाती है। कार्यान्वयन से पहले गोपनीयता भंग होने से कार्य में असफलता मिल सकती है। (7) लाभदायक योजनाओं की शुरुआत में विलंब तो नहीं करते हो ? (8) जो साम, दाम में योग्य राजनीतिज्ञ और अपने सहयोगियों को फोड़ लेने वाले साहसी शत्रु को शीघ्र ही नहीं मार डालता वह

...के हाथों मारा जाता है। (9) क्या तुमने सदा संतुष्ट रहने वाले वीर और धैर्यवान व्यक्ति को ही अपना सेनापति ...या है और क्या वह पवित्र, कुलीन और तुम्हारा स्वामिभक्त है। (10) क्या तुमने सैनिकों के शौर्य और ...मिभक्ति की परीक्षा कर ली है और क्या सैनिक तुमसे सत्कार पाते हैं। (11) सैनिक को वेतन भत्ता समय पर ...दे देते हो? ऐसा न करने से अनर्थ की आशंका बनी रहती है। (12) क्या उत्तम कुल के मंत्री रखे गए हैं और ...वे तुम्हारे लिए बलिदान कर सकते हैं। (13) राजदूत विद्वान, योग्य, कुलीन और निर्देशों के अनुसार ही बात ...ने वाला है न ? (14) कम से कम 3 गुप्तचरों द्वारा :

सेनापति , द्वारपाल, अन्तःपुर के अध्यक्ष, कारागार अध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, सचिव, प्रशासनिक अधिकारी, ...तवाली (पुलिस अध्यक्ष), अभियन्ता, धर्माध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दुर्ग अध्यक्ष, न्यायपाल, सीमापाल तथा वन रक्षकों ...दृष्टि रखते हो ? तथा शत्रुपक्ष के उपरोक्त को मिलाने के अतिरिक्त मंत्री, युवराज पुरोहित को तोड़ने का प्रयास ...ते हो ? (15) निकले हुए विरोधियों के वापस आने पर उन्हें दुर्बल समझकर तुम उनकी उपेक्षा तो नहीं करते ? क्या तुम नास्तिकों की संगत तो नहीं करते जो बुद्धि को भ्रमाने में दक्ष होते हैं तथ अज्ञानी होते हुए भी अपने बहुत बड़ा पंडित मानते हैं। उनका ज्ञान वेद विरोधी एवं दूषित होता है तथा ज्ञान विहीन तर्क प्रस्तुत करते हैं। ...7) सीमाएं सुरक्षित एवं सिचाई की उपयुक्त व्यवस्था है न ? (18) कृषि एवं गोपालन में लगे वैश्य सुखी एवं ...न्न है न ? कृषक और पशुपालक वैश्य है।

कश्चित् ते दयिता सर्वे कृषि गोरक्ष जीविनः । वार्तयं संश्चितस्वाव लोकोयं सुधमेघते।।

पशुधन पर्याप्त मात्रा में हैं न ? (19) क्या तुम अपनी स्त्री को संतुष्ट रखते हो? उससे कोई गुप्त बात तो नहीं ... देते हो?(20) क्या तुम पूर्वान्ह में प्रतिदिन जनता से मिलते हो।(21) कर्मचारी अधिक भयभीत अथवा ...धिक निडर तो नहीं है। इनके साथ मध्य मार्ग ही उत्तम है। (22) क्या आमदनी खर्च से अधिक है। क्या आय ...मात्रों द्वारा तो नहीं हड़पी जाती है।(23) दण्डित करने से पहले पूरा विचार तो किया जाता है? (24) क्या सूचना ... प्रमाण के बावजूद घूस के चक्कर में चोर छोड़ दिये जाते है ? (25) धनी और निर्धन के बीच न्याय करने में ...पक्षता तो होती है? (26) निरपराध दण्ड दिए जाने पर दण्डित की आंखों में आंसू राजपुत्र और पशुओं का नाश ... डालते है। (27) वृद्धों , बालकों एवं वैद्यों का सम्मान करते हो न? (28) अर्थ से धर्म की धर्म से अर्थ की ...थवा काम से दोनो की हानि तो नही करते हो? (29) राज के चौदह दोषों :– (1) नास्तिकता, (2) असत्य भाषण, ...) क्रोध, (4) प्रमाद, (5) निद्रा, (6) सत्संग न करना, (7) आलस्य, (8) इन्द्रियों के वश में होना, (9) राज्य के ...षय में अकेले विचार करना, (10) मूर्खो से सलाह लेना, (11) निश्चित योजनाओं का समय से प्रारम्भ न करना, ...2) गुप्त मंत्रणा को प्रकट कर देना, (13) मंगल कार्य का आरंभ न करना, (14) सभी शत्रुओं पर एक साथ ...क्रमण करने से बचते हो न ?

(30) क्या तुम–

दशवर्ग – आखेट, जुआ, दिन में सोना, गाना, बजाना, नाचना, मद्यपान, स्त्री अशक्ति, जलक्रीड़ा और व्यर्थ ...बचते हो।

पंचदुर्ग – जल, थल, नभ, पर्वत और मानस्थल की रक्षा की जानकारी रखते हो?

चतुवर्ग – साम, दाम, दण्ड, भेद का पालन करते हो।

सप्तांग – राजा, मंत्री राष्ट्र किला, खजाना, सेना, मित्रवर्ग का ज्ञान रखते हो ?

अष्टदोष – चुगली, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, दोषदर्शन, अर्थदूषण, वाणी की कठोरता,दण्ड कठोरता से बचते हो।

अष्टवर्ग – खेती, व्यापार, दुर्ग निर्माण, पशुपालन, खनिज खोदना, राजाओं से कर लेना, निर्जन को आबाद ...रना का अनुगमन करते हो ?

त्रिवर्ग – धर्म, अर्थ, काम के गुण दोष जानते हो ?

विधाएं त्रयी – वार्ता-दण्ड-नीत का पालन करते हो ?

छः गुण – संधि, विग्रह, वान (आक्रमण) आसन (घात लगाना) द्वैषीभाव (दुरंगी नीति) समाश्रय (शरण) का सद् उपयोग करते हो ?

दैवी आपत्ति – बाढ़, अकाल, आग, महामारी से प्रजा की रक्षा का उपाय पूर्व से ही करते हो ?

मानवीय भय – राजा से भय, कर्मचारी भय, शत्रु भय में से त्याज्य त्याग एवं अनुकरणीय का अनुकरण कर इनकी महत्ता को पहचानते हो ? (31) अन्य मंत्रियों से अलग -अलग एवं सामूहिक मंत्रणा करते हो ? (32) तुम अच्छी वस्तुओं का उपयोग अकेले ही तो नहीं कर लेते । इसकी आशा करने वाले आश्रितों को भी देते हो न?

इस प्रकार प्रश्नों के सहारे प्राप्त उपदेशों के चरण पादुका को राज्य प्रतीक मानकर भरत ने राम राज्य चलाया तथा श्रीराम ने भी वनवास से लौटने पर इसी प्रकार राज्य कर सबको सुखी किया । सबके सत्चरित्र होने के कारण निजी, राजकीय एवं प्राकृतिक संसाधनों का सदुप्रयोग एवं समान वितरण हुआ । नैतिक बल इतना रहा कि मात्र सांकेतिक निन्दा पर महारानी का निर्वासन हुआ ।

सबके सच्चरित्र होने में राजा, मध्यस्थ , प्रजा सभी शामिल होते हैं कर्तव्यों का महत्व अधिक होने से उत्पादन, वितरण, न्यायशिक्षा सुरक्षा समस्त व्यवस्थांए अच्छी होती है । जिससे राष्ट्र मजबूत एकता बद्ध एवं अनुशासित होता है ।

आज के प्रसंग में भी यह एक महत्वपूर्ण सत्र है । समान कार्य समान पदों के कर्मचारियों एवं नागरिकों के जीवन स्तर पर एक समान रहने से भ्रष्टाचार रुकता है । शासन उन पर नजर रखे जो अनुचित लाभ कमाकर अपने स्तर से अधिक सुख सुविधायें बना लेते हैं । ऐसे विभाग की जानकारी करके भ्रष्ट आचरण रोकने से जहां भ्रष्टाचार में प्रतिद्वन्द्विता रुकती है । वहीं ईमानदार कर्मचारी प्रोत्साहित होते है ।

शोषण, न्याय में विलम्ब असमान वितरण, असुरक्षा इत्यादि से प्रजा पीड़ित होती है जिसका अभिशाप राजतंत्र पर पड़ता है – जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ।।

जहां राजतंत्र सजग रहता है अपने वितरण,न्याय, निमंत्रण इत्यादि के कार्य आचार पर दृष्टि रखता है । रक्षा, विज्ञान, कृषि एवं उद्योगों को प्रोत्साहन देता है वहां जनता सुखी रहती है और शासन दीर्घजीवी हो जाता है :-

जो प्रतिपालइ उहइ नरेसू ।

रामराज्य के सभी सूत्र आज की परिस्थिति में और अधिक मूल्यवान एवं परिणाम दायक है । बस आवश्यकता है इन्हें लागू करने के लिए अटूट विश्वास एवं दृढ़ निश्चय की । कोनउ सिद्धि कि विन विश्वासा ।

रामराज्य के सभी सूत्रों को मात्र पौराणिक कथा न मानकर जीवन में उतारने से अवश्य ही लाभ होगा क्योंकि आज भी विश्व का बहुमत ईमानदार एवं शांतिप्रिय है । अब समय है कि प्रजा का शोषण कर शासन के आसपास चटुकारिता करने वालों के बजाय कर्मठ एवं ईमानदार कर्मचारियों को श्रेष्ठता एवं प्रोत्साहन प्राप्त हो । श्रीराम ने सबसे बाद में प्रणाम करने वाले हनुमान को ही मुद्रिका प्रदान की थी ।

पाछे पवन तनय सिरनावा । जानि काज प्रभु निकट बुलावा ।
परसा सीस सरोरुह पानी । कर मुद्रिका दीन जन जानी ।
''सुचि सुशील सेवक सुमति कहु प्रिय काहि न लाग''

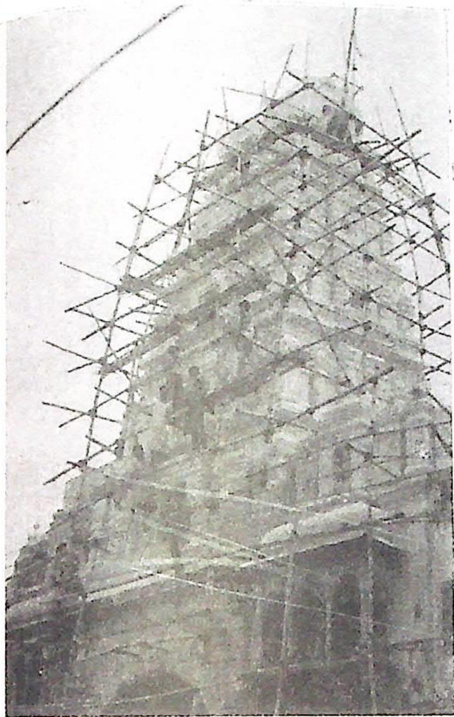
□□□

श्री हनुमानजी की मूर्ति-स्थापना-महावीर जी के मन के समान वेग वाले और शक्तिशाली हैं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि उनका दर्शन लोगों को गली-गली में हो । मुहल्ले-मुहल्ले में हनुमान जी की मूर्ति स्थापित करके लोगों को दिखलायी जाय । जगह-जगह अखाड़े हों, जहाँ ये मूर्तियाँ हों ।

प्रस्तुति : राजेश शुक्ला — **महामना मदनमोहन मालवीय**

140 वर्ष प्राचीन गोपुरम्

जीर्णोद्धार पूर्व



जीर्णोद्धार पश्चात





गोपुरम् के जीर्णोद्धार का शुभारम्भ करते हुये बहुभाषाविद् महामहिम आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री (राज्यपाल–उ.प्र.) साथ में मानस संगम के संयोजक पं. बद्रीनारायण तिवारी एवं मंदिर प्रबन्धक विजयनारायण तिवारी (मुकुल)



मानस संगम के वार्षिक समारोह की एक झलक



मन्दिर के संदर्भ में श्री एच.डी. देवगौड़ा (पूर्वप्रधानमंत्री) को बताते हुये मन्दिर प्रबन्धक मुकुल तिवारी।

परमविदुषी डॉ0 महादेवी वर्मा, साथ में संयोजक डॉ0 बद्रीनारायण तिवारी एवं सहयोगीगण



पूर्वराष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह को गुरुमुखी में श्रीरामचरित मानस भेंट करते हुये
मानस संगम के संयोजक पं. बद्रीनारायण तिवारी,
मध्य में डॉ० प्रताप नारायण टण्डन एवं सुरेन्द्र प्रताप सिंह



मानस संगम समारोह में भारत भारती सम्मान से सम्मानित डॉ० लक्ष्मी शंकर मिश्र 'निशंक'
बगल में न्यायमूर्ति प्रेम शंकर गुप्ता, न्यायमूर्ति श्री अयोध्या नाथ दीक्षित एवं
सम्पादक प्रवर श्री अच्युतानन्द मिश्र



सुप्रसिद्ध भजन गायक श्री अनूप जलोटा भावपूर्ण मुद्रा में कार्यक्रम प्रस्तुत करते हुए



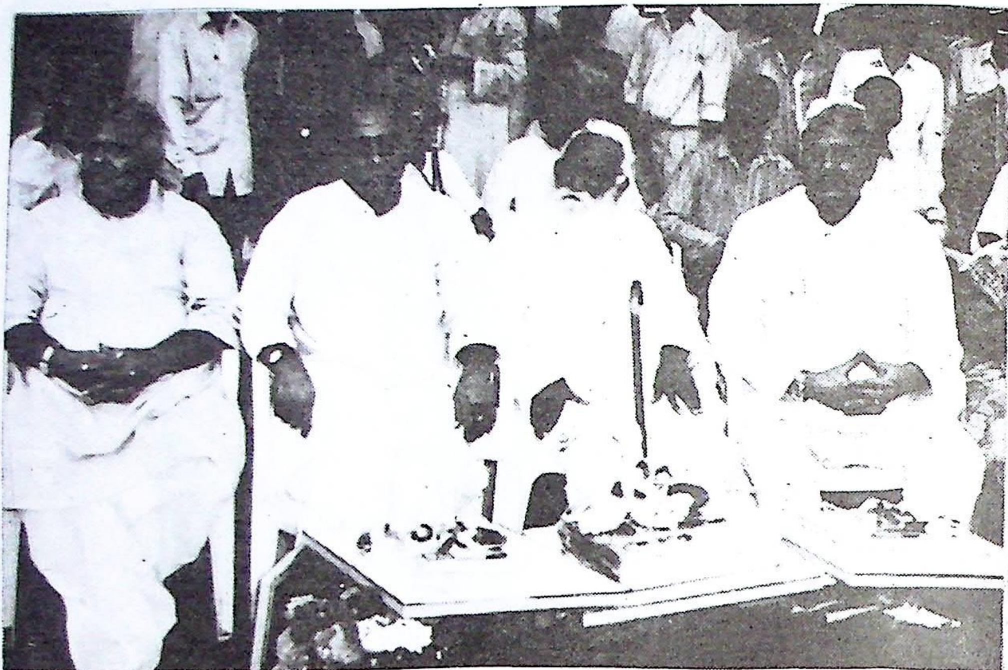
मानस संगम के संस्थापक पं. बद्रीनारायण तिवारी के सम्मान में आयोजित नई दिल्ली के समारोह में बाएँ से डॉक्टर बद्री नारायण तिवारी, डॉ0 कर्ण सिंह श्री आदोनेल स्मेकल (राजदूत : एवं हिन्दी विज्ञान चेकोस्लोवाकिया) एवं डॉ0 विद्यानिवास मिश्र



तुलसी जयंती में पुस्तक का लोकार्पण करते हुए महामहिम श्री मोतीलाल वोरा
(राज्यपाल उ०प्र०) संयोजक बद्री नारायण तिवारी



तुलसी जयन्ती समारोह में महामहिम श्री मोती लाल वोरा (राज्यपाल - उ०प्र०)
बाएं पद्मश्री गोपाल दास नीरज एवं डॉ० धर्मपाल जी (कुलपति गुरुकुल काँगड़ी वि.वि.)



मानस संगम समारोह में मध्य वरिष्ठ चिन्तक एवं तपोनिष्ठ श्रद्धेय श्री नानाजी देशमुख
बायें श्री शरण बिहारी गोस्वामी (उपाध्यक्ष-हिन्दी संस्थान उ.प्र.) एवं
श्री नरेन्द्र सिंह गौर (मंत्री - उ0प्र0), श्री राधेश्याम गुप्ता (मंत्री - उ0प्र0)



मारीशस के पूर्व प्रधान मंत्री सर शिवसागर रामगुलाम को माल्यार्पण कर स्वागत करते
मानस संगम के संस्थापक/संयोजक डॉ0 बद्रीनारायण तिवारी



पं0 श्रीनारायण चतुर्वेदी जन्मशती समारोह में मानस संगम के प्रेरणाश्रोत -
डॉ0 विद्या निवास मिश्र, पद्मश्री डॉ0 लक्ष्मी नारायण दुबे,
पद्म विभूषण श्री लक्ष्मी शंकर व्यास एवं श्री लक्ष्मी शंकर मिश्र ''निशंक''



पं. श्री नारायण चतुर्वेदी जन्मशती समारोह का दीप प्रज्जवलन करते हुये
श्री नरेन्द्र मोहन गुप्त (सांसद), बद्रीनारायण तिवारी संयोजक



मानस संगम समारोह में जनता का अभिवादन करते हुये दूरदर्शन धारावाहिक रामायण के निर्माता निर्देशक श्री रामानन्द सागर साथ में डॉ० बद्रीनारायण तिवारी



मानस संगम समारोह में प्रसिद्ध फिल एवं रामायण निर्माता श्री रामानन्द सागर को श्री रामचरितमानस भेंट करते हुए पद्मश्री शांतिलाल जैन एवं बद्री नारायण तिवारी (संयोजक)



मानस संगम के 29वें समारोह 1997 में भक्तिप्रिय जनता को सम्बोधित करते हुए दूरदर्शन धारावाहिक जय हनुमान के निर्माता निर्देशक एवं अभिनेता श्री संजय खान



''तुलसी उपवन'' मोतीझील में हिन्दी विद्वान डॉ0 वारानिन्कोव की मूर्ति शिलान्यास में उ.प्र. के पूर्व राज्यपाल श्री बी. सत्यनारायण रेड्डी साथ में श्री श्रीप्रकाश जायसवाल एवं संयोजक



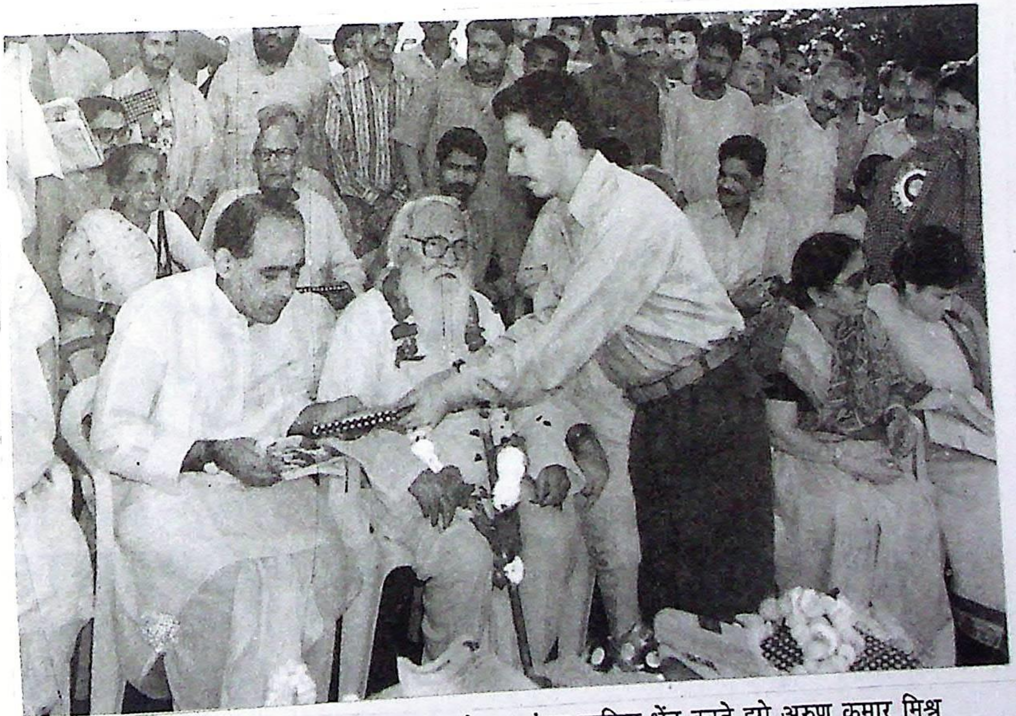
उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन समारोह में पूर्व रक्षामंत्री श्री मुलायम सिंह यादव डॉ0 बद्रीनारायण तिवारी एवं पूर्व न्यायमूर्ति प्रेमशंकर गुप्त जी।



ऐतिहासिक वटवृक्ष के नीचे आयोजित शहीद उपवन के लोकार्पण समारोह में मुख्यअतिथि डॉ. गिरिजा व्यास (सूचना प्रसारण मंत्री - भारत), मध्य में श्री जीतेन्द्र प्रसाद जी (सलाहकार - प्रधानमंत्री), सः महेन्द्र सिंह (नगर प्रमुख) श्री बद्रीनारायण तिवारी (संयोजक) पीछे खड़े हैं, श्री नरेन्द्र मोहन गुप्त (सांसद) श्री रंजीत सिंह



पुस्तक का लोकार्पण करती हुईं श्रीमती सरला सिंह (नगर प्रमुख)
साथ में बद्री नारायण तिवारी (संयोजक)



उ.प्र. के न्यायमंत्री श्री राधेश्याम गुप्त को मानसंगम साहित्य भेंट करते हुए अरुण कुमार मिश्र
मध्य में तनोनिष्ठ श्री नानाजी देशमुख, श्रीमती प्रभा द्विवेदी (मंत्री-उ.प्र.) श्रीमती सरला सिंह (नगर प्रमुख)



चेतना से भावुक जटायु का वरण हो

– डॉ0 नरेश कात्यायन

दूसरों की पीड़ा हमें पीड़ित न कर पाये, चेतना हमारी, जैसे संज्ञा शून्य हो गयी।
स्वार्थ की विभीषिका से एकाकार हो गये कि, त्याग की परम्परा निढाल होके सो गयी।
कोई कर्मनाश-हमसे हमारी अस्मिता को, स्वच्छ करने का धोखा देकर के धो गयी।
संस्कृति जटायु वाली- 'परहित प्राणोत्सर्ग', राम-राज्य लाते-लाते जाने कहाँ खो गयी।
दूसरों की हानि पर लगते ठहाके यहाँ, दनुजों के पास आज मानवों का वेश है।
कौन भला लोक-हेतु सीना खोल के है खड़ा, कौन यहाँ मानवीय अर्थ में 'नरेश' है।
किसी की पुकार पर कोई नही दौड़ता है, लगता है देश यह पत्थरों का देश है।
विश्व के निमित्त , एक मार्ग है प्रदीप्त अभी, जिसका प्रदर्शक जटायु है, खगेश है।।
रावणी प्रवृत्तियों से त्रस्त हो समाज जब, कहीं-कहीं सभ्यता-सुमुखि का हरण हो।
करूण पुकार गूँजने लगे मनुष्यता की, जब-जब पौरूष का दानवीकरण हो।
स्वार्थ-ग्रस्त सकल समाज बने दृष्टिहीन, त्याग भावना का असामयिक क्षरण हो।
तब-तब, देश के सपूतों, मेरी कामना हैं, चेतना से भावुक जटायु का वरण हो।।

201, राजकीय कॉलोनी
सेक्टर - 21 इंदिरा नगर, लखनऊ – 16

"प्रभु ने लिया मनुज अवतार"

– 'बेताब' केवलारवी

"बहाकर प्रेम सुधारस धार, प्रभु ने लिया मनुज अवतार।
प्रेम भगति में बंधे है, स्वामी, निगुर्ण-सगुण, वो अंतरयामी।
सुर, नर मुनि और अदना गिलेहरी, बानर, भालू, केवट, शबरी।
जनन की सुनकर करूण पुकार, प्रभु ने लिया मनुज अवतार।
रामलला कण कण के वासी, स्वामी वो सबके अविनाशी।
राम रमैया जग के खिवैया, दूजा न कोई पार करैया।
भू का सकल मिटाने भार, प्रभु ने लिया मनुज अवतार।
पापहरन हरि नाम करन को, अपने जनन की लाज रखन को।
भव बाधा 'बेताब' मिटाने, हरि जनन् को सुख पहुँचाने।
मनमें उपजा प्रेम अपार, प्रभु ने लिया मनुज अवतार"

केवलारी, जिला सिबनी (म0प्र0)

राम की विजय यात्रा

– राम नारायण उपाध्याय

विश्वामित्र जब राजा दशरथ के पास राक्षसों से यज्ञ की रक्षा के लिए राम लक्ष्मण को मांगने पहुंचे तो राजा दशरथ ने कहा था "मेरा राम अभी सिर्फ 15 वर्ष का है वह राक्षसों से कैसे लड़ सकता है।''

इस पर विश्वामित्र नाराज हो उठे तब वशिष्ठ के समझाने पर राजा दशरथ ने विश्वामित्र के साथ राम–लक्ष्मण को वन में जाने की अनुमति दे दी। वन मे सबसे पहले विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को दिव्य अस्त्र-शस्त्रों की विद्या प्रदान की। और सहायता से राम लक्ष्मण ने राक्षसों का वध करके ऋषियों के यज्ञ अनुष्ठानों को सानंद संपन्न कराया। उसके पश्चात् विश्वमित्र ने कहा 'हे राम'' यहां से नजदीक ही मिथिला में एक और यज्ञ हो रहा हैं " ध नुष यज्ञ'' । उसे भी देख लेना चाहिये।

राम लक्ष्मण सहज जिज्ञासावश मिथिला पहुंचे। वहां विश्वामित्र ने राजा जनक से राम लक्ष्मण का परिचय कराते हुये कहा "ये रघुवंश के तेजस्वी राजा दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण हैं और आपका धनुष देखना चाहते हैं।

राजा जनक ने तत्काल एक पेटी में रक्खे विशालकाय शिवधनुष को सभाकक्ष में बुलवाया। राम ने पेटी को खोलकर उसमें रखे विशालकाय धनुष को देखा और उसे पलमात्र में उठाकर अपने दोनों हाथों से झुकाते हुए तोड़कर फेंक दिया। धनुष के टूटने की महान गर्जना हुई एवं बिजली टूटने जैसा प्रकाश हुआ और चारों ओर हर्ष की लहर छा गई। राजा जनक ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कि जो भी इस धनुष को तोड़ेगा उसके साथ अपनी भूमिजा बेटी सीता का विवाह रचा देगें। तत्काल अयोध्या राजा दशरथ के पास यह समाचार भेजा कि आप बारात लेकर आइए। राम और सीता का विवाह होने जा रहा हैं बारात में सारी अयोध्या उमड़ पड़ी और राजा जनक ने अपने भाई की बेटियों सहित चारों कन्याओं को दशरथ के चारों बेटों के साथ एक ही समय एक ही लग्न मण्डप में ब्याह दिया।

यह पहला उदाहरण था कि जब दूल्हा बिना जाने, बिना बुलाए नंगे पाव लग्न स्थल तक पहुँचा और उसका विवाह गुरु वशिष्ठ के द्वारा नहीं विश्वामित्र के द्वारा सम्पन्न कराया गया। राम जब पूर्ण युवा हुए तो दशरथ ने उनका युवराज पद पर अभिषेक करने की बात कही। तब कैकेयी ने कभी दिये गये राजा दशरथ के दो वचनों को भुनाते हुए अपने बेटे भरत के लिए युवराज पद और राम को 14 वर्ष का वनवास दिला दिया । राम पिता के वचनों के खातिर क्षण मात्र में तिनके की तरह राज्य का परित्याग कर प्रसन्नता पूर्वक वन की राह चल दिये। सीता और लक्ष्मण ने भी उनका साथ निभाया।

राम और सीता ने लक्ष्मण सहित पूरे तेरह वर्ष वनों –पर्वतों की नंगे पाव खाक छानते हुए गुह, शबर, रीक्ष, वानर और गरुड़ जैसी वन्य जातियों से निभाते हुये, सानंद बिता दिये। उसके बाद वनवास के चौदहवें वर्ष में रावण द्वारा सीता का हरण कर लिया गया। पूरे एक वर्ष तक सीता लंका की अशोक वाटिका में रावण के द्वारा कैद करके रखी गयी। जब राम को सीता के लंका में रखे जाने का पता चला तो उन्होंने वन्य जातियों की सहायता से रावण से महाभंयकर युद्ध किया और इस युद्ध में रावण को सेना सहित मारकर वे सीता और लक्ष्मण सहित विजयोल्लास के साथ अयोध्या लौटे। वहां उनका भव्य स्वागत हुआ। और रामराज्य की आदर्श व्यवस्था को साकार बनाने में जुट गये।

एक दिन जब राज और सीता अपने एकांत कक्ष में बीते दिनों की मधुर याद में खोए हुए थे तभी बातें करते-करते थककर सीता को नींद आने लगी और वह राम की बांह का सिरहाना लेकर सो गई। तभी एक दूत आया और उसने जैसे कोई दूध में जहर घोले ऐसे एक धोबी के द्वारा दूसरे के घर में रखी गई सीता को अपने घर में रखने का आरोप राम को सुना दिया। राम का यह आदेश था कि मुझे, कही भी होऊं प्रजा के मन की जानकारी मिलती

रहना चाहिए। एक क्षण में राम की आंखों में धरती औंधी होकर सीधी हो गई। उन्होंने पल मात्र में अपना निश्चय कर लिया और लक्ष्मण को बुलाकर कहा "भैया राजा राम सीता के निर्वासन की आज्ञा देता है।" सीता को लोकापवाद से बचाने के लिए राम ने सीता का परित्याग का जहर स्वयं पीते हुए सीता को जो ऊंचाई दी वह मानव इतिहास की अकेली घटना है।

उसके बाद पूरे सोलह वर्ष तक सीता वाल्मीकि के आश्रम में रही। परित्याग के समय चूंकि वह गर्भावस्था में थी। अतएव रघुवंश की रक्षा के लिए उसने सारा अपमान स्वयं पीकर लवकुश को शिक्षा और संस्कार देकर परवरिश की। वाल्मीकि त्रिकालदृष्टा ऋषि थे उनमें राजा के द्वारा छोड़ी गई स्त्री को संरक्षण देने की तेजस्विता थी। उन्होनें सीता को गंगा की तरह पवित्र घोषित करते हुए बेटी की तरह अपने आश्रम में रखा।

सीता रोज शाम वाल्मीकि को रघुवंश की कीर्ति गाथा सुनाया करती थीं। जैसे बाप बेटी की बात सुने ऐसे ध्यान पूर्वक वाल्मीकि सारी बातें सुनते थे।

सीता की इसी व्यथा को लेकर एक दिन कभी देख क्रौंच विरह की करुण घटना को प्रतीक के रुप में लेकर, वाल्मीकि ने राम सीता की व्यथा को रामायण की कथा के रुप में लिपिबद्ध कर दिया। और फिर उसे राम के ही बेटे लवकुश को कंठाग्र कराके शास्त्रोक्त विधि से ताल और लय के साथ गान करते हुए समूचे भारत में जन-जन के मन तक पहुँचा दिया।

एक दिन राम जब अपने महल में बैठे थे तक उन्होंने अयोध्या के चौराहे पर अपनी ही तरह दो तेजस्वी बालकों को रघुवंश की कीर्ति कथा सुनाते देखा। उन्होंने तुरन्त उन्हें बुलाकर सम्मान सहित आसन दिया और फिर अपने समस्त परिवार के साथ अपनी ही व्यथा कथा को सुना। कथा सुनकर वे अपने को रोक नहीं सके और स्वयं सीता को लिवाने वाल्मीकि आश्रम जा पहुँचे। सीता को पता था राम मेरे बिना रह नहीं सकते । वे एक टक उनकी राह देख रही थी। अपने जीवन सर्वस्व को सामने पाकर उसके मन का सारा अवसाद मिट गया। राम ने कहा,"सीते मैं तुम्हारे बिना रह नहीं सकता। अयोध्या मेरे लिए खंडहर वत है।" तुम चलकर अयोध्या को धन्य करो।

सीता कुछ नही बोली, अपलक अपने प्रभु की ओर देखती रही। उसने सोचा राम से मिलने का ऐसा पवित्र क्षण, ऐसा शांत एकांत वातावरण फिर कुछ मिलने वाला नहीं । अतएव उसने राम की ओर एकटक देखते हुए राम की आंखों में आंखें डालकर उनके प्राणों में अपने प्राण मिलाते हुए देह विसर्जित कर दी।

इसके पश्चात् राम का जीवन शून्य हो उठा। उन्होंने अपना दायित्व निभाने के लिये सीता के बिना शून्य में निहारते नंगी धरती पर बांह का सिरहाना लेकर सोते निरन्तर कर्म करते हुए पूरे बारह वर्ष आदर्श रामराज्य की स्थापना की। यह रामराज्य समूचे विश्व में अपने ढंग की आदर्श राज्य व्यवस्था थी। राम के जीवन के सबसे सुखी दिन वे वनवास के तेरह वर्ष थे जिसे उन्होंने सीता और लक्ष्मण के साथ बिताये थे।

राम के संबंध में दुर्वासा ने दशरथ को बता दिया था कि हे राजन आपका बेटा यह राम बहुत यशस्वी होगा। लेकिन बहुत अभागा भी। इसके भाग्य में दुख ही दुख लिखा है। इसे सब कुछ और सब कोई को त्यागना पड़ेगा। राम के जीवन में या तो वन या घर में सबके साथ रहकर भी नितांत अकेलापन बदा था। सबसे पहले वे विश्वामित्र के साथ वन में गये। फिर उन्होंने सीता के निष्कासन के समय और फिर सीता के भी प्राणोत्सर्ग करने पर पूरे बारह वर्ष उन्होंने भयंकर एकांतिक दुख दर्द और असह्य वेदना में बिताये थे।

सीता के चले जाने के बाद एक दिन अत्यंत व्यथित मन से उन्होंने लक्ष्मण से कहा था– "लक्ष्मण सीता ने कितना सहा, लेकिन लोग सीता को भी भूल गये।" जब सीता भी चली गई, लक्ष्मण भी चले गये तो राम के जीवन में कोई रस नहीं रहा गया । और उन्होंने इस एकाकी जीवन से ऊबकर सरयू में अपनी देह विसर्जित कर दी। उस समय उन्हें ऐसा लगा होगा मानों प्राणवल्लभा सीता स्वयं लहरों की जयमाल लिये उनका वरण करने आगे बढ़ रही हैं उन्होंने सिर झुकाया होगा और राम तथा सीता एक जुट हो उठे होंगे। इन्हीं सीता सहित राम के चरणों में आज भी जन मन श्रद्धा से प्रणाम करते आया है।

अग्नि परीक्षा दे देकर

प्रमोद शंकर शुक्ल 'प्रमोद'

सुख में पली दुखों संग खेली, बचपन भूल गयी।
अग्नि परीक्षा दे दे कर, वैदेही ऊब गयी।।
राजमहल को त्याग पती संग, कानन बीच रही।
बन से हरण दुखों में प्रतिपल, लंका बीच रही।
युग युग से नारी संदेहों से क्यों घिरी रही।
जन्में जिसने पुरुष सदा से, वह क्यों दुखी रही।।
पुनि पुनि ले क्यों अग्नि परीक्षा त्यागी सदा गयी।

गर्भावस्था में तिकता बन, बन में शरण गही।
बाल्मीकि आश्रम दाता की, दुहिता बनी रही।
ममता का ऋण दे रघुकुल के, कुल से उऋण हुयी।
मिला पुनः संयोग, परीक्षा, को क्यों बात कही।।
दिया परीक्षा संयोगों में कंचन नहीं हुई।

जब पौरूष का रूप, मूक दर्शक ही बना रहा।
मर्यादा की परिभाषा, बस गढ़ता पुरूष रहा।
नारी देती रही परीक्षा, लेता पुरूष रहा।
कौरव की नगरी में, द्रोपदी ने परिहास सहा ।।
मर्यादा विहीन पुरूषों की मति ही भ्रष्ट हुई।

मर्यादा के आदर्शो से, नारी व्यथित रही।
पुरूषों के गर्वित घमंड में , प्रतिपल घुटन रही।
मीरा ने दी विकट परीक्षा, पी विष जाम गयी।
निर्दोषी थी किन्तु अहिल्या, पत्थर बनी जिई।।
जल समाधि के पटाक्षेप में प्रतिध्वनि गूँज गई।

सुरजूपुर, रायबरेली

ट्रैवलर्स चेक

– डॉ के0 जी0 बालकृष्ण पिल्लै

राम
जब
नव विवाहित किशोरी पत्नी
और अनुज सहित
महल से निकल पड़े थे
तब उन्होंने
कुछ ट्रैवलर्स चेक
अपने पास रख लिए थे
वे थे–
तपस्वी साधुओं के प्रति
अनन्य श्रद्धा
सत्य-धर्म में
अटूट निष्ठा
दीन दुखियों के प्रति
असीम करुणा
अत्याचारियों का दमन करने का
अदम्य साहस
सर्वोपरि
कंटकाकीर्ण जीवन -पथ को
शुभ रेणु पूर्ण बनाने की
कष्ट – सहिष्णुता।

–गीता भवन
टी.सी. 5/1797, पेरुकटा
तिरुअनन्तपुरम्-695 005 (केरल)

नमन करौं किनको

– नरेश कौशल

जिन राजापुर में जन्म लियो,
उप-नाम राम बोला जिनको।
भये तुलसीपात से तुलसीदास,
गुरु कृपा से राम मिलो बिनको

जीवन भर रामहिं जपत रहे,
वे राम ने दूर भये छिनको।
जगती भर में नवज्योति जगी,
उन छाँड़िके नमन करौ किनको।

– मिश्रा कॉलोनी, गंगाघाट, उन्नाव



श्री राम ने नैमिष में ही क्यों किया था अश्वमेध यज्ञ

— राजेश मिश्र/भगवती तिवारी

भगवान श्रीराम अपने राज्य दायित्वों का निर्वाह कर रहे थे। एक दिन उन्हें विचार आया कि मैंने रावण का वध किया है। रावण तो ब्राह्मण था मैने उसका वध किया है। यद्यपि वह अपने कार्यो से राक्षसी प्रवृत्ति का था लेकिन था तो ब्राह्मण ही। मैंने उसका वध भी लोक कल्याण के लिये किया परन्तु ऐसा न हो कि भविष्य में क्षत्रियो द्वारा ब्राह्मणों का वध किया जाने लगे। यदि ऐसा हुआ तो निश्चय ही अनर्थ हो जायेगा। मैंने एक ब्राह्मण का वध किया है। मुझे ब्रह्म हत्या का तो पाप लगा ही है। अतएव मुझे इसका प्रायश्चित भी करना चाहिए। इस प्रकार क्लेश रहित कार्य करने वाले श्रीराम ने भरत और लक्ष्मण जी को बुलाकर राजसूय यज्ञ करने का विचार किया। कि मेरी राय में धर्मसेतु (राजसूय) यज्ञ अक्षय एवं अविनाशी फल देने वाला है तथा वह धर्म का पोषक एवं समस्त पापों का नाश करने वाला है।

श्रीरामचन्द्र जी के वचनों को सुनकर श्री भरत जी बोले अमित पराक्रमी महाबाहों आप में उत्तम धर्म प्रतिष्ठित है। यह सारी पृथ्वी भी आप पर ही आधारित है तथा आप में ही यश की प्रतिष्ठा है। महाबली रघुनन्दन जैसे पिता को पुत्र देखते हैं, उसी प्रकार सभी राजाओं का आप के प्रति भाव हैं। फिर आप ऐसा यज्ञ कैसे कर सकते हैं, जिसमें भूमण्डल के समस्त राजवंशों का विनाश दिखायी देता है।

श्री राम जी और भरत के इस प्रकार बातचीत करने पर लक्ष्मण ने रघुकुल नन्दन श्री राम से शुभबात कही। हे रधुनन्दन।

अश्वमेघ नामक महान यज्ञ समस्त पापों को दूर करने वाला परम पावन एवं दुष्कर है। अतः इसका अनुष्ठान आप पसन्द करें।

महात्मा इन्द्र से सम्बन्धित अश्वमेध यज्ञ वृतान्त का वर्णन करते हुए श्री लक्ष्मण जी ने बताया कि जब इन्द्र को ब्रह्म हत्या लगी थी, तब से अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान करने से ही पवित्र हुये थे बहुत समय की बात है, जब देवता और असुर परस्पर मिलकर रहते थे, उन दिनों वृत्त नाम से प्रसिद्ध एक बहुत बड़ा असुर रहता था। वह सौ योजन चौड़ा और तीन सौ योजन ऊँचा था। वह तीनों लोकों को आत्मीय समझकर प्यार करता था सबको स्नेह भरी दृष्टि से देखता था।

उसे धर्म का यथार्थ ज्ञान था। वह कृतज्ञ और स्थितप्रज्ञ था।एक समय वृत्तासुर ने परम उत्तम तप करने का विचार किया। क्योंकि तप ही परम कल्याण का साधन है। इसका सारा सुख तो मोहमात्र ही है। उसने अपने पुत्र मधुरेश्वर को राजा बना दिया और देवताओं को ताप देता हुआ वह कठोर तपस्या करने लगा।

वृत्तासुर के तपस्या में लग जाने पर इन्द्र बड़े दुखी मन से श्री नारायण के पास गये और बताया कि तपस्यारत वृत्तासुर ने समस्त लोक जीत लिये, जब यह असुर बलवान हो गया है, अतः अब उस पर मैं शासन नहीं कर सकतां सुरेश्वर यदि वह इसी प्रकार तपस्या करता रहा तो जब तक ये तीनों लोक रहेंगे तब तक हम सब देवताओं को उसके अधीन रहना पड़ेगा।

सहस्त्र नेत्रधारी इन्द्र तथा सम्पूर्ण देवताओं की यह प्रार्थना सुनकर भगवान विष्णु ने इन्द्र आदि देवताओं से इस प्रकार कहा देवताओं तुम्हारी इस प्रार्थना के पहले से ही मैं महामना वृत्तासुर के स्नेह में बँधा हुआ हूँ। इसलिये तुम्हारा प्रिय करने के उद्देश्य से मैं उसका वध नहीं करूंगा।परन्तु तुम सबके उत्तम सुख की व्यवस्था करना हमारा आवश्यक कर्तव्य है। इसलिये ऐसा उपाय बतलाउंगा जिससे देवराज इन्द्र उसका वध कर सकेंगे। हे देवताओं एवं

इन्द्र मैं अपने स्वरूप भूत तेज को तीन भागों में विभक्त करुँगा, जिससे इन्द्र निःसन्देह वृत्तासुर का वध कर डालेंगे।

मेरे तीनों अंशों में से एक इन्द्र में प्रवेश करे, दूसरा बज्र में व्याप्त हो जाये और तीसरा भूतल को चला जावे, तब इन्द्र वृत्तासुर का वध कर सकेंगे। भगवान विष्णु के ऐसा कहने पर देवता बोले, दैत्यविनाशन आप जो कहते है, ठीक ऐसी ही बात है। तत्पश्चात् इन्द्र आदि सभी देवता उस वन में गये जहां वृत्तासुर तपस्या कर रहा था।

"वृत्तासुर नैमिषारण्य में ही तपस्या कर रहा था।" – (स्कन्द पुराणानुसार) उन देवताओं ने देखा असुरश्रेष्ठ वृत्तासुर अपने तेज से सब ओर व्याप्त हो रहा है और ऐसी तपस्या कर रहा है मानों उसके द्वारा तीनों लोकों को पी जायेगा और आकाश को भी दग्ध कर डालेगा।

उस असुर श्रेष्ठ वृत्त को देखते ही देवता लोग घबरा गये और सोचने लगे । हम कैसे इसका वध करेंगे और किस उपाय से हमारी पराजय नहीं होने पावेगी। वे लोग इस प्रकार सोच ही रहे थे कि सहस्त्र नेत्रधारी इन्द्र दोनों हाथों से वज्र उठाकर वृत्तासुर के मस्तक पर दे मारा। उसकी चोट से वृत्तासुर का मस्तक कटकर गिरा तब सारा संसार भयभीत हो उठा। वृत्तासुर का वध करना उचित नहीं था। अतः उसके कारण देवराज इन्द्र बहुत चिन्तित हुये और तुरंत ही सब लोकों के अंत में लोकालोक पर्वतों से पावर्ती अन्धकार प्रदेश में चले गये। उन्हें ब्रह्महत्या लग गयी थी वे उनके अंगों पर टूट पड़ी। इससे इन्द्र को मन में बड़ा दुख हुआ। देवताओं का शत्रु मारा गया। इसलिये अग्नि आदि सब देवता त्रिभुवन के स्वामी भगवान विष्णु की बारम्बार स्तुति पूजा करने लगे। परन्तु ब्रह्म हत्या इन्द्र को कष्ट दे रही है। अतः हे नारायण आप उनके उद्धार का कोई उपाय बताइये।

देवताओं की बात सुनकर भगवान विष्णु बोले इन्द्र मेरा ही भजन करें। मैं उन व्रजधारी इन्द्र को पवित्र कर दूंगा। पवित्र अश्वमेघ यज्ञ के द्वारा मुझे यज्ञ पुरुष की आराधना करके पाकशासन इन्द्र पुनः देवेन्द्र पद को प्राप्त कर लेंगे और उन्हें किसी से भय नहीं रहेगा। लक्ष्मण जी ने सविस्तार कथा का वर्णन करते हुए बताया कि देवताओं को भय देने वाले महापराक्रमी वृत्तासुर के मारे जाने पर ब्रह्म हत्या से घिरे हुये वृत्तनाशक इन्द्र को बहुत देर तक होश नहीं आया।

लोकों की अन्तिम सीमा का आश्रय ले, वे सर्प के समान लोटते हुये कुछ काल तक वहां अचेत और संज्ञा शून्य होकर पड़े रहे । तदन्तर बृहस्पति जी को साथ ले ऋषियों सहित सब देवता उस स्थान पर गये जहां इन्द्र छिपे थे।वे इन्द्र को ब्रह्म हत्या से आवेष्टि देख उन्हीं देवश्वर को आगे करके अश्वमेघ यज्ञ करने लगे।

तत्पश्चात जब वह यज्ञ समाप्त हुआ तब ब्रह्म हत्या के दोष से इन्द्र को मुक्ति मिली थी।

''इन्द्र को आवेष्टित कर यज्ञ भूमि नैमिषारण्य ही थी।'' तत्पश्चात स्वयं श्रीराम ने राजाइन्द्र का एक स्त्री एवं एक पुरुष के दोष से मुक्ति के सम्बन्ध में अश्वमेघ यज्ञ की महानता की कथा लक्ष्मण जी एवं भरत जी को सुनायी।

अनन्तर भगवान श्रीराम ने अश्वमेघ यज्ञ हेतु तैयारी का आदेश देते हुए श्री लक्ष्मण जी से कहा कि मैं अश्वमेघ यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों में अग्रगण्य एवं सर्वश्रेष्ठ वशिष्ठ वामदेव, जाबालि और कश्यप आदि को बुलाकर उनसे सलाह लेकर शुभ लक्षणों से सम्पन्न घोड़ा छोड़ूंगा, एवं यह यज्ञ उसी स्थान पर सम्पन्न करूंगा जहां स्वयं इन्द्र ने अवश्मेध यज्ञ किया था। तत्पश्चात सभी आवश्यक तैयारियां हो जाने पर महाबली नरश्रेष्ठ श्रीराभ ने सेवकों समेत सभी नरेशों के ठहरने एवं खान पान की व्यवस्था करवायी। तदन्तर शत्रुघ्न सहित भरत ने नैमिषारण्य को प्रस्थान किया। इस प्रकार सब सामग्री को भरत से भेजकर श्रीराम ने उत्तम लक्षणों से युक्त कृष्णसागर भृम के समान काले रंग वाले एक घोड़े को छोड़ा।

ऋतिज्यों सहित लक्ष्मण को उस अश्व की रक्षा करने के लिए नियुक्त कर श्री रघुनाथ जी सेना के साथ नैमिषारण्य आये। यहां बने हुये अद्भुत यज्ञ मण्डप को देखकर महाबाहु भगवान श्री राम को अतीव प्रसन्नता हुयी और वे बोले बहुत सुन्दर है।

नैमिषारण्य में निवास करते ‌ ‌ ‌य श्री राम चन्द्र जी के पास भूमण्डल के सभी नरेश भाँति-भाँति के उपहार ले आये। इस प्रकार अश्वमेघ यज्ञ कार्य नैमिषारण्य में प्रारम्भ हुआ।

('गुड इंडिया' से) ❑❑❑

धार लो मुद्रिका राम गुण-ग्राम की

– कृष्ण कुमार अवस्थी 'श्याम'

जन्म से मृत्यु तक के सदाचार की एक आदर्श जीवन-कथा राम की।
कलि-कलुष नाशिनी, ताप-त्रय हारिणी, बहती गंगा सदा इसमें हरि नाम की।
वह न पैदा हुआ कौशिल्या गेह में, प्रेम के पुञ्ज से झट प्रकट हो गया।
जैसे पश्चिम में दिनकर बिखरें किरन, लोग पूरब में कहते कि वह सो गया।
इस तरह से हुये राम शिशु रुप में देखकर के विकलता नृपति वाम की।।
हार को हार सा मान कर के सदा, वह विजय की धरोहर लुटाता रहा।
दूसरों की खुशी देखकर के विंहस, पर्व आनन्द का वह मनाता रहा।।
सीख ली उसने बचपन से अद्भुत विद्या योगियों से सहजयोग निष्काम की।
संग अनुजों के जाते जो आखेट में, साथ चलती रही उनकी अवधारणा।
खुद जिओ और जीने का अधिकार दो, इस कसौटी पे चलती रही साधना।।
साधते लक्ष्य को हिंस्र पशुओं पे ही और देते रहे गीत परम-धाम की।
देखकर के सिया उर विमोहित हुआ, तोड़ पाये न बन्धन मगर रीति के ।
डगमगाये कदम कुछ बढ़े, फिर रुके, थाम लो डोर रघुवंश की नीति की।।
दुदुम्भी बज उठी राम के कृत्य पर और लौटी सिसकती कला काम की।।
भीलनी के चखे बेर जूठे मुदित, गिद्ध का पितृ -तर्पण किया।
अंक हनुमत लगाकर प्रफुल्लित हुये, शत्रु के बन्धु को लंक अर्पण किया।।
इसलिये छोड़ तंद्रा उठो हे सखे, धार लो मुद्रिका राम -गुण ग्राम की।

524, चक दौलताबाद
रायबरेली - 229001

शिवमय रामनाम

–राधाचरण गुप्त 'चरण'

राम नाम महामंत्र, शिव डर धारौ सदा,
नाम जप के प्रताप शिव शक्तिमान हैं।
राम-नाम देख उर, उतरौ गले तैं नाहिं,
नील-कण्ठ कर गये कालकूट पान हैं।।
शंका मन मान सती, दक्ष-यज्ञ जारौ तन,
नाम मर्म उमा पायौ हर-हिय थान हैं।
राम मय शिव जान, शिवमय राम नाम,
'चरन' सो ध्यावै, गावैं, पावैं, पावैं गूढ़ ज्ञान हैं।।

–77, आर्यनगर, औरैया



रामकथा का मणि दीप हमारे हाथ में रहेगा

– डॉ० क्षमा शंकर पाण्डेय

रामकथा मानवीय विजय यात्रा का वह उद्घोष है, जिसके निनाद में मानवता युगो-युगों से अपना विश्राम और समाधान पाती रही है। नित्य नवता के गुण से संयुक्त इस कथा की सबसे बड़ी शक्ति ही यही है कि अपने तमाम मिथकीय रचाव के बाद भी इसमें बहुत कुछ ऐसा है जो सहज ही अनुकरणीय एवम् विश्वसनीय है। रामकथा के राम हमेशा जैसे मानव के साथ उसके सुख-दुख आँसू सपने शेष में शामिल होते हैं।राम की यही छवि ही सब के हृदय में रमती है। यह रामकथा की अमरता का ही प्रमाण है कि विभिन्नकालखण्डों में मानव की प्रायः हर विषय यात्रा का पाथेय बनती रही है। कोई भी कथा जब अपनी पुनर्नता शक्ति के द्वारा हमारे समकालीन विमर्शो में सम्मिलित होती है। और मार्ग संधान में सहायक बनती है तो अनायास ही वह हमारे लिए अत्यंत मूल्यवान हो जाती है। इस रूप में रामकथा का सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य निश्चय ही बहुत अधिक है।

हमारे समकालीन विमर्श का एक महत्वपूर्ण विमर्श है दलित विमर्श । ज्ञान विज्ञान के प्रसार का परिणाम यह हुआ है कि वे लोग जो सत्ता और शोषकों के हाथों लगातार वंचित और दलित होते रहे हैं वे अब उन चेहरों और हाथों को पहचानने लगे हैं साथ ही पहचानने लगे हैं उसे समूचे षडयंत्र और मुखौटे को जिनकी आड़ में अब तक उन्हे साजिशन दलित और दमित बनाये रखा गया है। फलतः शोषण के उन तमाम संस्थानों के विरुद्ध अब आक्रोश फूट रहा है। राम कथा अपनी सीमाओं में हमारे इस विमर्श में भी भागीदारी करती है। सच तो यह कि वनवासी राम और उनका आचरण ही रामत्व और रामकथा का मूल है। घटनाक्रम पर विचार करते हुए हम पाते हैं कि राम जब वन के लिए प्रस्थान करते हैं तो उनका पहला मिलन होता है निषादराज से। निषाद वे लोग हैं जो तारण हार होकर भी प्रतिष्ठा न पाने के लिए अभिशप्त हैं यथा –

'मा निषाद प्रतिष्ठा त्वां....

राम निषादराज को न केवल मित्र बनाते हैं बल्कि उसे गले लगाकर प्रतिष्ठा देते हैं।वन यात्रा में गीध, शबर, वानर, भालु प्रभृति तमाम ऐसी जातियां है जो तत्कालीन सत्ता और समाज के द्वारा नर की संज्ञा की हकदार नहीं है। ये शिकार कुशल, शिल्प कुशल जातियां सत्ता का भक्ष्य बनने को अभिशप्त थीं। वर्ना बालि जैसा महाबली जिस समूह में रहा हो वह जाति भी आसुरी सत्ता भक्ष्य बने तो बात चौंकाने वाली थी। सच तो यह था कि रावण ने बालि को मित्र बनाकर उसे भी अपने शोषण तंत्र का पुर्जा बना लिया था। राम अपने आचरण और कर्तव्य द्वारा इस समूची शोषक सत्ता का विरोध करते हुए न केवल उसका अंत करते हैं बल्कि हाशिए पर पड़ी दलित जातियों को पहचान देते हुए उन्हें समाज की मुख्य धारा में शामिल करते हैं। उन दलितों और दमितों तथा शोषितों को अपने साथ लेते हैं। रावण जैसे प्रौद्योगिक और ज्ञान सम्पन्न सत्ता को चुनौती देते हुए राम ने महसूस कर लिया था कि वे लोग जो सत्ताधारी और सुविधाभोगी हैं वे हमारी लड़ाई में काम नही आने वाले । यहाँ तो वे काम आयेंगे जो अधिकारों से वंचित हैं यथा सुग्रीव और विभीषण, वे लोग काम आयेंगे जो अपनी तमाम प्रतिभा और दक्षता के बाद समाज के स्वरुप निर्धारकों द्वारा नर से वानर की कोटि में ढकेल दिये गए हैं। अपनी इस चिंतन धारा को अमली जामा पहनाते हुए राम ने न केवल उन्हें संगठित किया बल्कि उनमें अत्याचार और अन्याय से टकरानें का माद्दा भी भर दिया । गोस्वामी जी ने राम के इस कार्य के बारे में लिखा-

'प्रभु तरु तर, कपि डार पर, तेहिं कियो आपु समान।''

आशय यह कि राम कथा अपने रचाव में दलितों, शोषितों और दमितों को सम्यक् अधिकार दिए जाने की पक्ष धर है। दलित विमर्श में सम्मिलित होते हुए रामकथा कुछ बड़े ही महत्वपूर्ण और उपयोगी संदेश हमारे अपने समय के लिए देते है। मसलन सत्ता शक्ति एवं शोषण के साम्राज्य का आतंक वंचितों पीड़ितों, त्यक्तों और शोषितों को

संगठित करके समाप्त किया जा सकता है। एकल स्तर पर किये जाने वाले प्रयास मूल्यवान होकर भी उतने फलदायी नहीं होते। जैसे एकल स्तर पर किए गए परशुराम और अगस्त के प्रयास। इस तरह रामकथा दलितों के पक्ष की वकालत करते हुए हमारे सामने आती है। दलितों को राम भरत सम 'प्रेम करते हैं। जो वंचित है' उन्हें उनका अधिकार दिलाते हैं और उन्हें सम्मान पूर्वक जीने का रास्ता दिखाते हैं। यह राम का ही प्रताप है कि वशिष्ठ जैसा कर्मनिष्ठ और तपोनिष्ठ ब्राह्मण भी निषादराज को गले लगाने को विवश हो जाता है। राम द्वारा मिले आत्म बल और आत्म विश्वास के बूते रावण से विभीषण बालि से सुग्रीव और रावण से गीधराज जटायु सत्य और न्याय के पक्ष में जूझते हुए दिखायी पड़ते हैं। इस तरह राम ने अपनी वाणी से भले ही दलितों के बारे में कुछ न कहा हो पर अपने आचरण और व्यवहार के द्वारा यह संदेश अवश्य दिया कि दलितों और वंचितों को गले लगाकर समाज के मुख्य धारा में शामिल किए बगैर किसी भी किस्म की चुनौती का सफलता पूर्वक सामना नहीं किया जा सकता। वैसे भी महापुरुषों का आचरण ही पथ निर्धारक होता है। ऐसी स्थिति में राम कथा हमारे समय के महत्वपूर्ण विमर्श दलित में अपना वैचारिक एवम् व्यवहारिक दोनों ही तरह का हस्तक्षेप करती है। इस रुप में रामकथा हमारे लिए आज मार्ग दर्शक है।

अपने समूचे विस्तार मे राम कथा बहु आयामी है। मानव और उसकी नियति से गहरा साक्षात्कार करते हुए राम कथा ने विभिन्न क्षितिजों का संस्पर्श किया है। वह अपने स्वरुप में संकेतात्मक रुप से ही सही विभिन्न सवालों और बहसों में शमिल होती है।

मानव ने अपनी सुख सुविधा के लिए निरंतर प्रकृति और पर्यावरण को दोहन क्रिया है। आसुरी कृत्यों के बारे में चर्चा करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा कि -

''सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनि'

इस सीदन के प्रक्रिया में जौ चौथा घटक है वह है धरनीं'। क्या सभ्यता के विकास के साथ ही साथ मनुष्य ने लगातार धरती को दोहन करते हुए उसके स्वरुप को विकृत नहीं किया ? रावण जिस विकसित प्रौद्योगिक का स्वामी था उसमें पर्यावरण का असंतुलित होना बहुत सहज था। इसलिये रावण के काल में पर्यावरण का संकट नहीं था यह नहीं माना जा सकता। दंडकारण्य या सिद्धाश्रम में जब सैन्य स्कन्धावार विकसित किए जा रहे थे तब वनों की कटाई हो ही रही होगी। यज्ञ कर्ता ऋषियों से और आश्रमवासियों से विग्रह का कारण वस्तुतः इस कार्य द्वारा पड़ने वाली उनकी शांति में बाधा ही था। जब आश्रमवासियों का शांत जीवन विक्षुब्ध होने लगा तो टकराहट हुई। असल में दोनों जीवन पद्धतियों का जो भेद था वह यही कि एक का प्रकृति और पर्यावरण के साथ रिश्ता मात्र भोग का था, वह प्रकृति को मात्र संसाधन और वस्तु समझता था, जब कि दूसरी पद्धति प्रकृति से आत्मीय रिश्ता रखते हुए उसे समृद्ध करने के प्रति सजग एवम् सचेत थी। वस्तुतः हर विकसित प्रौद्योगिकी प्रकृति और पर्यावरण के मूल्य पर ही समृद्ध होती है, इससें भी ऊपर जब भोगवादी दृष्टि प्रधान होती है, तो हम हर अनुमति संसाधन का उपभोग करना चाहते हैं, इसके विपरीत त्याग प्रधान जीवन दृष्टि को उतना ही ग्रहण करने की अनुमति है जितने में सामान्य जीवन यापन हो सके। मानव और मानवता के बचाने का संघर्ष ही वस्तुतः राम-रावण का युद्ध है क्योंकि मानव या कि कहें नर रावण को भक्ष्य थे और नारियाँ, भोग्य। ऐसी जीवन दृष्टि के विरुद्ध संघर्ष करते हुए राम अकारण ही यज्ञ प्रधान आश्रम वाली जीवन पद्धति की पक्षधरता नहीं करते बल्कि वे पर्यावरण को बचाने की दिशा में भी सचेत हैं। यह निर्विवाद है कि यज्ञानुष्ठान पर्यावरण को समृद्ध करता है। आश्रम बराबर प्रकृति के सुरम्य आँचल में ही होते थे, फलतः आश्रमों को सुरक्षित करने का अभियान प्रकारांतर से प्रकृति और पर्यावरण को सुरक्षित करने का अभियान था। राम और रावण के राज्य का एक अंतर यह भी है कि रावण के यहाँ सारी प्राकृतिक शक्तियाँ बंदी हैं जब कि राम के यहाँ सभी उन्मुक्त। इस तरह रामकथा प्रायोगिक रुप से पर्यावरणीय विमर्श में सम्मिलित दिखती हैं।

समग्रतः रामकथा का घटनाक्रम इस बात का साक्ष्य प्रस्तुत करता है कि वह अपने काल के विमर्शो में तों सक्रिय

भागीदारी करती ही है, मानवीय विकास के भावी युगों में भी अपनी भूमिका का निर्वाह करती है। संभवतः इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि रामकथा का समूचा रचाव और ताना-बाना मानवीय नियति से साक्षात्कार करते हुए बुना गया है। इसलिए विश्वासपूर्वक यह कहा जा सकता है रामकथा हमारे आज के समकालीन विमर्शों में सम्मिलित होकर मानवता के अस्तित्व और उसकी अजेयता का उद्घोष करती हुई वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ में भी अक्षय आलोक स्तम्भ की तरह पथ निर्देश कर रही है। इस संदर्भ में मैं पूरी तरह आश्वस्त हूँ कि जब तक रामकथा का मणि दीप हमारे हाथ में रहेगा किसी भी किस्म का अंधेरा प्रगति की ओर बढ़ते कदमों को नहीं रोक सकता।

वरिष्ठ प्रवक्ता हिन्दी विभाग
श्रीमती इंदिरा गांधी राजकीय महाविद्यालय
लालगंज, मीरजापुर - 231211

कमल नयन श्रीराम

—तुलसी पत्र 'अशोक'

सुनत सीय कर दुखु परम, स्वयम सुखन के धाम।
भरि आय अति ढेर जल, कमल नयन श्री राम।।
मम आश्रित तनु, मनु, वचन, सो मोरो हुइ जाहि।
सोंचि सकय का सपन महुँ, घेरे विपति कि ताहि।।
अस सुनि तब हनुमंत कहि, महा विपति प्रभु सोय।
जब तुम्हार सुमिरन भजन, सुनहु स्वामि नहि होय।।
सुनु असुरन की [illegible] क्या, प्रभुवर माया तीत।
कृपया माता जानकी, लाव शत्रु कहुँ जीत।।
सुनहु तात हनुमंत कपि, तुम समान उपकारि।
नाहि काहु संसार महुँ, सुर, नर मुनि तनु धारि।।
सुनु कपि एहि उपकार प्रति, काह करों हित तोर।
कहुँ सनमुख जस तोरु मन, हुइ न सकत मन मोर।।
सुनहु तात तुम सन उरिन, स्वयमु कवन विधि नाहि।
देखहु अतिहिं विचार करि, पुनि पुनि निज उर माहि।।
बार बार हनुमान कहुँ, निरखे देव कृपाल।
सजल नयन अरु पुलक तन, श्री रघु दीन दयाल।।

—351, शफीपुर प्रथम
लालबंगला, कानपुर

दशरथ-जन्म

–डॉ0 गणेश शंकर शुक्ल "बन्धु"

हुआ अज - इन्दुमती का व्याह, चतुर्दिक् फैला अति उत्साह।
शौर्य में अज नित बढ़ते गये, प्रात दिनकर में चढ़ते गये।।
सरल सीधे अतिही मृदुभाष, राज्य का बहु क्षेत्रीय विकास।
हो रहा जीवन सरस व्यतीत, राज्य में साम-गान संगीत ।।
सभी पापी रहते भयभीत, युद्ध में सका न कोई जीत।
प्रियंवद समझ दीप्त नक्षत्र, दिये अज को सम्मोहन अस्त्र ।।
शीघ्र ही आया पावन दिवस, दिव्य शुभ कर्मो का फल सुयश।
प्रसव-पीड़ा की पीड़ा घोर, सहन कर, रानी भाव- विभोर।।
महल में बालक जन्मा एक, हुये सफलीकृत पुण्य अनेक ।
मृदुल कोमल बालक का गात, सरोवर में सुकुलित जलजात।।
कान्ति की दम सौ किरण समान, न खोजे मिलता था उपमान ।
देख मुख की श्री, श्री बलिहार, लुटाया अपना सारा प्यार ।।
हुये संस्कार सभी सम्पन्न, स्वजन, पुरवासी सभी प्रसन्न ।
पधारे विद्वज्जन गुण -धाम, रखा बालक का दशरथ नाम ।।
उरों में था आमोद प्रमोद, भर गयी इन्दुमती की गोद।
हुये उत्सव के सारे यत्न, लुटाये अशन, वसन, बहुरत्न।।
समय के साथ-साथ नवजात, बढ़ी शिशु की शोभा अवदात।
पालने में ही सुत के पाँव, दिखाते भावी पूर्ण प्रभाव ।।
खुशी का छाया था उन्माद, द्वितीया जैसा बढ़ता चाँद ।
देख कर सभी मनाते मोद, किलकिते थे जननी की गोद।।
घुटुरुओं-बल चलने का चाव , मचलने से जुड़ गया लगाव।
कुसुम से कोमल उनके पाँव, सन्तुलन का था अभी अभाव।।
और कुछ बढ़े, बोलने लगे, खेल में वस्तु तोड़ने लगे ।
काष्ठ के अश्व-पीठ पर बैठ, दारु की खड्ग, रहे थे ऐंठ।।
मुकुट से शोभित दिव्य ललाट, लग रहे थे कोई सम्राट।
साथ के शिशुओं से समवेत, युद्ध में चले विजय के हेत।।
हुआ पढ़ने से उन्हें लगाव, बढ़ा खड़िया पाटी से चाव।
भाव मन के वे गढ़ने लगे, बिन पढ़े, सब कुछ पढ़ने लगे।।
देख कर बालक का यह चाव, नृपति के मन में उपजा भाव।
हुआ पाटी-पूजन संस्कार, महल में फैला मोद अपार।।
पिता की मनोकामना यही, पिता की सतत साधना यही।
बने संतति सक्षम आरोग्य, पिता से पुत्र अधिक हो योग्य ।।

– 124/3, सी -गोविन्द नगर कानपुर - 208006

मानस जन कल्याण हेतु कृत संकल्प है

– डॉ0 रोहिताश्व अस्थाना

भक्ति काल को कदाचित इसीलिए हिन्दी साहित्य का स्वर्णकाल कहते हैं क्योंकि इस काल में ''रामचरित मानस''जैसे विश्व प्रसिद्ध प्रबन्धकाल की रचना प्रातः स्मरणीय गोस्वामी जी द्वारा की गयी। मै तो यहाँ तक कहना चाहूँगा कि अकेला 'मानस'ही किसी भी भाषा के साहित्य की अपेक्षा हिन्दी को अधिक गौरव प्रदान करने में समर्थ है। निःसंदेह मानस में वेद, पुराण, शास्त्र रामायण एवं अन्य धर्म ग्रन्थों का अमृत निचोड़ कर अवधी के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। मानसकार ने आरम्भ में ही कह दिया है कि –

''नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्, रामायणे निगदितं क्वाचेदन्य तोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा–भाषा निबन्ध मति मञ्जुलमातनोति ।।''

अर्थात् अनेक पुराण, वेद और शास्त्र से समस्त तथा जो रामायण में वर्णित है और कुछ अन्यत्र से भी उपलब्ध श्री रघुनाथ जी की कथा को तुलसीदास अपने अन्तःकरण के सुख के लिए अत्यन्त मनोहर भाषा रचना में विस्तृत करते है! तुलसीदास जी द्वारा स्वान्तः प्रस्तुत इस प्रबन्ध में ऐसा कुछ अप्रतिम था कि वह बहुजन हिताय बहुजन सुखाय ग्रंथ बन गया।

गोस्वामी जी का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ जब भारतवासी विदेशी आक्रान्ताओं के अत्याचारों से पीड़ित होकर प्रतीक्षारत थी जो उनके कष्टों को दूर कर सके! मानस कार ने ऐसे समय उनकी व्यथा का अनुभव करते हुए भगवान राम को अवतार के रुप में प्रस्तुत किया! 'मानस' में उन्होंने राम के सौन्दर्य, शील एवं शान्ति से समन्वित स्वरुप को प्रस्तुत किया। उन्होंने परतन्त्रता से पीड़ित मानव जाति के समक्ष स्पष्ट किया कि –

जब जब होहि धरम की हानी-बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।
तब तब प्रभु धरि मनुज सरीरा-हरहि कृपा निधि सज्जन पीरा।।''

इसी विश्वास के सहारे जनता ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम को भगवान के अवतार के रुप में दिलों में बसा लिया! उन्हें यह विश्वास हो गया कि भगवान राम ही उन्हें अत्याचारियों से उबार सकते हैं।

गोस्वामी जी ने 'राम चरित मानस' के प्रत्येक पात्र को उसके आदर्श के रुप में प्रस्तुत किया है। एक ओर राजा दशरथ अपने वचन के इतने पक्के हैं कि उसकी रक्षा के लिए कैकेयी के कहने पर राम को वनवास दे दिया और उनके वियोग में अपने प्राण त्याग दिए! राम इतने आदर्श पुत्र हैं कि पिता की उचित अनुचित आज्ञा पर सोच विचार न करते हुए तुरन्त वन जाने को तैयार हो जाते हैं। जगज्जननी सीता ने भी पति के साथ वन में जाकर अपना पतिव्रत धर्म निभाने का संकल्प लिया। राम ने भी अत्याचारी बालि को मारकर सुग्रीव को तथा रावण को मारकर विभीषण को वहाँ के सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। शबरी जैसी अज्ञानी-अन्ध भक्त को भी राम का वरद् हस्त प्राप्त हुआ? वह अपने आराध्यदेव राम के आगमन पर उन्हें जूठे बेर इसलिए खिलाती है कि वह नहीं चाहती कि प्रभु को कोई खट्ठा बेर पहुंच जाए! मानस के सभी पात्र किसी न किसी रूप में जनता के समक्ष आदर्श एवं अनुकरणीय स्वरुप प्रस्तुत करते हैं। गोस्वामी जी ने जन-जन को समझ में आने वाली अवधी भाषा का प्रयोग करके इस ग्रंथ को सर्वसुलभ व सर्वग्राह्य बना दिया है। इसीलिए गरीब रिक्शेवाले और मजदूर से लेकर किसान और अपढ़ लोग भी गांव की चौपालों और गलियारों में मानस की दो चार चौपाइयाँ अपने वार्तालाप के बीच मंत्र अथवा सूक्ति के रुप में उद्धत करते रहते हैं। वस्तुतः मानस की प्रत्येक चौपाई मंत्र बन गई है! गोस्वामी जी की गुरु भक्ति देखिए

''वन्दउं गुरु पद पदुम परागा, सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।
अमिअ मूरिमय चूरन चारू, समन सकल भवरुज परिवारू ।।'

गोस्वामी जी ने निरभिमानिता की शिक्षा भी 'मानस' में दी है- इतने महान सन्त और कुशल कवि होते हुए भी घोषित करते हैं कि

"कवित विवेक एक नहि मोरे, सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे ।।"

वस्तुतः गोस्वामी जी की यही लघुता उनकी महानता बन जाती है !

रामचरितमानस की लोकप्रियता एवं हिन्दी में उसकी महत्ता का एक कारण उसमें प्रयुक्त सरल एवं ग्राह्य भाषा भी है। कामायनी या 'रामचन्द्रिका' को आम आदमी नही समझ सकता जबकि 'रामचरितमानस' सभी लोग पढ़ समझ तथा जीवन में उतार सकते है! हिन्दी के प्रचार-प्रसार एवं विस्तार में राम चरित मानस महत्वपूर्ण भूमिका असंदिग्ध है। गीता प्रेस गोरखपुर के प्रकाशक के मतानुसार श्री रामचरित मानस का स्थान हिन्दी साहित्य में ही नही, जगत के साहित्य में निराला है। इसके जोड़ का ऐसा ही सर्वाङ्ग सुन्दर उत्तम काव्य के लक्षणों से युक्त साहित्य के सभी रसों का आस्वादन कराने वाला 'काव्य कला की दृष्टि से भी सर्वोच्च कोटि का तथा आदर्श गार्हस्थ जीवन, आदर्श राजधर्म, आदर्श पारिवारिक जीवन, आदर्श पातिव्रत धर्म, आदर्श भातृधर्म के साथ-साथ सर्वोच्च भक्ति, ज्ञान, त्याग, वैराग्य, तथा सदाचार की शिक्षा देने वाला स्त्री- पुरूष, बालक वृद्ध और युवा सबके लिए समान उपयोगी एवं सर्वोपरि सगुण-साकार भगवान की आदर्श मानव लीला तथा उनके गुण, प्रभाव, रहस्य तथा प्रेम के महान तत्व को अत्यन्त सरल, रोचक एवं ओजस्वी शब्दों में व्यक्त करने वाला कोई दूसरा ग्रंथ हिन्दी भाषा में ही नहीं, कदाचित संसार की किसी भाषा में आज तक नही लिखा गया। यही कारण है कि जितने चाव से गरीब, अमीर, शिक्षित-अशिक्षित, गृहस्थ सन्यासी स्त्री पुरूष बालक-वृद्ध -सभी श्रेणी को नहीं पढ़ने तथा भक्ति ज्ञान, नीति सदाचार का जितना प्रचार जनता में इस ग्रंथ से हुआ है, उतना कदाचित और किसी ग्रन्थ से नहीं हुआ।"

निस्संदेह हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार एवं विस्तार में तो 'मानस' का महत्व पूर्ण योगदान है ही, आज की विषय परिस्थितियों में भी 'रामचरित मानस' की प्रासंगकिता और अधिक बढ़ गयी है।

आज जबकि नैतिक मूल्यों का निरंतर पतन होता जा रहा है, राजनीति के क्षेत्र में भी प्रदूषण फैल रहा है, आदमी आदमी के खून का प्यासा हो रहा है, दुख और अशांति का सर्वज्ञ बोल बाला है, हिंसा और आतंकवाद की ज्वाला में समस्त जग जल रहा है विज्ञान की शक्ति का दुरूप्रयोग हो रहा है, 'रामचरित मानस' के पठन-पाठन अध्ययन पारायण से अलौकिक आनन्द एवं शन्ति की प्राप्ति की जा सकती है।

जिस प्रकार से गंगा सभी के पापों को दूरकर उनके हित चिन्तन में अविरल प्रवाहित होती रहती है- उसी प्रकार रामचरित मानस जन-जन के कल्याण के लिए कृत संकल्प है। मानसकार के शब्दो में -

"कीरति भनिति भूति भलि सोई , सुरसरि सम सब कह हित होई ।।"

निकट - बावन चुंगी - हरदोई (उ. प्र.), पिन – 241001

आजकल के नेता श्रीराम तथा रामराज्य से विमुख हैं। प्रभु राम ने कभी भी शास्त्रविहित मार्ग का परित्याग नहीं किया। मार्ग विमुख कभी भी सुखी नहीं हो सकता क्योंकि शास्त्रानुसार शास्त्र ही लोचन है। जिसके पास शास्त्र या विद्या नहीं है वे अन्धे हैं।

– आचार्य त्रिनाथ शर्मा

प्रस्तुति : राजकुमार त्रिपाठी

रामरूप हो राम में

— कन्हैया लाल बाजपेयी

जियो राम हित मरो राम हित, काम सभी हो राम में,
जग तन सब न्योछावर हो यह केवल राम के नाम में,
मिथ्या जग सत दीखता, जैसे रस्सी सांप ,
मृग तृष्णा जल देखत - है मिथ्या की भांप
तत्व ज्ञान से जान यह - हो भवसागर मुक्त
जागृत होय प्रभु में - जो माया में सुषुप्त।
अग्नि वायु जल नभ पृथ्वी है - जो है सो सब राम में
राम से तन मन जग सारा है अन्य न हो धाम में
राम से जग जग राम में - रामहिं जग के हेतु
राम छोड़ कुछ अन्य नहिं — अहम् भाव दुख सेतु
अहं भाव पृथकत्व है - राम से होय दूर
अहं भाव अज्ञान है माया मल से पूर
कर्म सभी हों धर्म सभी हों - केवल राम के राम में
फल की कामना त्याग कर्म सब - राम के हित निष्काम में
माया ईश स्व जानि धरि - ज्ञान भक्ति वैराग्य
श्रद्धा प्रेम विश्वास दृढ़ - जागै भक्त का भाग्य
सीय राम मय जगत सब - हो वे दृष्टि जो एक
पूर्ण समर्पण भाव हो - भवतर होवे नेक
मानव तन को सफल करो बस - राम रूप हो राम में
कहें "कन्हैयालाल" हो जागृत - सत्य भाव से राम में,

बिन्दकी (दपसौरा) फतेहपुर

मधुर मनुहार तुलसी

— कु0 भारती सेंगर 'वाणी'

दृष्टि व्यापक, सार्वभौमिक, काव्य का विस्तार तुलसी। पथ प्रदर्शक, लोक हितकारी, सरस उद्‌गार तुलसी।।
राम के पावन चरित की, सप्त सोपानी कथा हो। या सुभति सद्‌आचरण, दायक विमल सुभसंहिता हो।।
कौन सम्बोधन तुम्हें दूं, लोकनायक या रचयिता। लेखनी से की प्रवाहित, पतित तारणि ज्ञान सरिता।।
भक्ति निर्मल खोलती है, चेतना के द्वारा तुलसी। और तुम उस भक्ति की, कोमल मधुर मनुहार तुलसी।।
स्वान्त सुख की कल्पना में, रच दिया मानस अनूठा। किंतु लौकिक साधना का, कब कहां अध्याय छूटा।
निम्न के घर द्वार से, प्रासाद तक चिन्तन तुम्हारा।झांक कर जनगण हृदय में, कर समन्वय युग निखारा।
छू लिए तुमने सभी, मानस हृदय के तार तुलसी। काव्य कविता कामिनी के, तुम अमित श्रृंगार तुलसी।
विश्व के साहित्य तल पर, सत्य में तुलसी सुमन है। मंजरी कविता भ्रमर, श्रीराम, का अनुरक्त मन है।।
प्रेम, भय, उत्साह, करुणा, क्रोध,सारे भाव भाषित । शब्द-सौष्ठव उक्ति अनुपम,लोक मर्यादा सुवासित।।
तुम नही हो दास, तुम हो प्रभु हृदय के हार तुलसी। तुम नही मानव कदाचित हो अमर अवतार तुलसी।
हे महामानव तुम्हें ना, युग कई विस्मृत करेंगे। हर हृदय हर घर नगर में दास तुलसी ही रहेंगे।
सन्त तुमको भावभीनी शब्द श्रद्धांजलि समर्पित। गीत अर्पित प्रीत अर्पित, भावमय संगीत अर्पित।
निज कलम की वन्दना को, तुम करो स्वीकार तुलसी। हर बरस हर क्षण करेगा, याद यह संसार तुलसी।।

देव आश्रम,अंतपुरी कुसमरा मैनपुरी (उ0प्र0)

तुलसी की नारी भावना

– डॉ. आशा सिन्हा

महाकवि तुलसीदास भक्ति काल के प्रभा पुञ्ज नक्षत्र थे। दिव्य प्रेम को भक्ति कहते है। राम के विमल व्यक्तित्व में तुलसी की अपूर्व भक्ति थी। तुलसी दास राम भक्ति शास्त्र के वरेण्य कवि थे तुलसी की काव्य कला पर यह कथन दृष्टव्य है– **''सूर-सूर तुलसी शशि उडगन केशव दास अब के कवि खद्योत सम जहँ-तहँ करत प्रकाश''**

इतना ही नही खड़ी बोली के वरेण्य कवि पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'' ने कहा।

''कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी-तुलसी की कला''

प्रस्तुत निबंध में मुझे तुलसी की नारी भावना पर विवेचना करना है। तुलसी ने स्वयं कहा-

''जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखि तिन तैसी''

कवि शिरोमणि तुलसीदास को नारी के प्रति पूर्वाग्रह था। साहित्य विज्ञान की तरह आवेष्टन के प्रति प्रतिक्रिया है। कलाकार वाहय जीवन से प्रेरणा ग्रहण करता है और वे सारी भावनाएँ उनके मानस में उमड़ती-धुमड़ती है और कविता के रुप में प्रस्फुटित होती है। इसी को लक्ष्य कर जयशंकर प्रसाद ने कहा है–

''जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छायी, दुर्दिन में आँसु बनकर वह आज बरसने आयी''

तुलसी की विमल कृति ''रामचरितमानस'' हिन्दी साहित्य का माईलस्टोन है। वस्तुतः विश्व साहित्य में ''रामचरितमानस'' मिल्टन के पैराडाइज लास्ट और शेक्सपियर के ''ओथोले'' से भी श्रेष्ठ रचना हे। रामायण के प्रथम श्लोक में नाना पुराण निगमागम के द्वारा कवि ने यह स्वीकार किया है कि अनेक पुराणों के अध्ययन के आधार पर इस मानस की रचना की है। कवि तुलसी के युग में या उससे पूर्व भी समाज में नारी की उपेक्षा की जा रही थी सुप्रसिद्ध ग्रन्थ बाईबिल का कहना है कि मूल पाषाण की जड़ नारी हैं। आदि कवि होमर ने अपनी पुस्तक 'इलियट' में यह प्रतिपादित किया है कि नारी विनाश का कारण है।

एक लैटिन विद्वान ने यहा तक कहा है कि Women is the Confusion of man जब मैं लोक कथाओं का परिदर्शन करती हो तो वहाँ भी अनैतिकता, कुटिलता, दुर्बलता, मिथ्याभाषण धोखे बाजी का प्रतीक नारी को ही माना गया है। कथा सरिता सागर में ऐसी अनेक कथाएं मिलती है। इस कारण ही प्रसिद्ध नाटक कार और कवि शेक्सपियर ने नारी को 'छलना' कहा है। Frailty thy name is women .

तुलसी के हृदय में पूर्वाग्रह था। बचपन में माँ का आँचल उन्हें नही मिला। युवावस्था के प्रांगण में प्रवेश करने पर उनकी शादी रत्नावली से होती है। रत्नावली को कवि द्वारा अटूट स्नेह और प्यार मिला। नियति का चक्र, जब वह पीहर जाती है तो कवि रत्नावली के पीछे खींचे चला जाता है। रत्नावली कवि को फटकारती है-

''अस्थि चर्म मय देह मम तामें ऐसी प्रीति ज्यों होति श्री राम संग त्यो होती भवभीति'' नारी का सौन्दर्य किस प्रकार प्रेमी को आकर्षित करता है। इसके सम्बन्ध में तुलसी ने स्वयं कहा है–''कामी नारी पियारि जिमि वैसी ही मोहि सियराम'' इस उपमा से यह सिद्ध होता है कि तुलसी स्वयं कामी थे। क्योंकि कामी को प्यारी नारी कैसी लगती है इसकी अनुभूति कवि को कैसे हुयी? महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' विरचित तुलसी दास खण्ड काव्य में भी रत्नावली ने तुलसी को कहा है।

''धिक् आये तुम यो अनाहूत, धो दियो श्रेष्ठ कुल धर्म धूत, राम के नही काम के सूत कहलाये''

नारी की प्रताड़ना से तुलसी का भावना का विपर्यय हुआ जिसे मनोविज्ञान की भाषा में ... सवलिमेशन कहते है। नारी के कथन से कवि के हृदय पर जो परिवर्तन हुआ उससे तुलसी दास ने ऐसी रचना की। आजकल के नेता श्रीराम तथा रामराज्य से विमुख है प्रभु राम ने कभी भी शास्त्रविहित मार्ग का परित्याग नहीं किया। शास्त्रमार्ग विमुख कभी भी सुखी नही हो सकता क्योंकि शास्त्रानुसार शास्त्र ही लोचन है।जिसके पास शास्त्र यह विद्या नही है वे अन्धे हैं।



श्री तुलसीदासाय नमः

— डॉ0 मिर्जा हसन नासिर

जन्म लेते ही वह बोला शब्द राम। और जीवन भर जपा फिर राम नाम।।
रामबोला नाम उसका हो गया । राम के ही ध्यान में वह खो गया।।
हो गया हुलसी का भी जीवन सफल। मिल गया इच्छित ही रत्ना को भी फल।।
ज्योति अन्तर्मन मे शुचि फैली अनूप । जिससे 'तुलसी' का निखर आया स्वरूप ।।
ज्ञान पाया मथ के निगमागम सभी। फिर थमी न लेखनी दम भर कभी।।
ग्रंथ सुन्दरतम् रचे नासिर अनेक। जिनको पढ़ कर बढ़ता है विवेक ।।
फिर रचा 'मानस' नहीं जिसकी मिसाल। सत्य शिव सुन्दर गगन - जैसा विशाल।।
ज्ञान सागर जिसमें है लहरा रहा। भक्ति–रस चहुँ ओर जो छलका रहा।।
हरि कथा अनुपम जो सीता राम की । शत्रुघन, लक्ष्मण, भरत अभिराम की ।।
भाव हैं अनमोल सुन्दरतम् कला। पढ़ने वालों का सतत् होता भला।।
राम भक्तों में रहा जो श्रेष्ठतम। शारदा का पुत्र भी सर्वोत्तम ।।
काम तुलसी दास ऐसा कर गया। झोलियां खुशियों से सबकी भर गया।
जिसके सुमिरन से ही बेड़ा पार है। उसको 'नासिर' का नमन शतबार है।।

— 408 रीजेन्सी अवध,
चौक लखनऊ 226003

रत्नों का आकर मानस है

— डॉ0 जगदीश शरण बिलगइयाँ 'मधुप'

मानस के भावों का मानस, अब उमड़ पड़ा जन-मानस में।
नमिता, समता का शीतपवन, है प्रवह मान लगता वश में।
सद्भाव विचारों की सुरसरि, हमें सब लाएं भागीरथ बन।
भारत में जन, प्रतिभारत हों, संकल्प-विकल्प रहित, शिव-मन।
रत्नों का आकर 'मानस' है, इस मानस में आकण्ठ डूब ।
अभिषेक करे मानवता का , तीनो तापों को हरें खूब ।

— संस्थापक
चामुण्डा महाशक्ति पीठम्,
दतिया (म.प्र.)

तुलसी की विश्व दृष्टि

– डॉ0 श्रीनिवास शर्मा

भारत में प्रबन्ध काल की दो परम्परायें मिलती है- अभिजात वर्ग (विशिष्ट) केन्द्रित तथा व्यापक फलक पर आधारित लोककाव्य ।'रामचरितमानस' निर्विवाद रूप से लोक काव्य है। 'मानस कार्य ' की चिन्ता का केन्द्र 'भव' है 'जग' है और जगत के समस्त प्राणी । तुलसी के राम मनुष्य को दैहिक दैविक तथा भौतिक तापों से मुक्त करने का प्रयास करते है।

'मानस' में तुलसी दास के चार रूप देखने को मिलते है- (क) भक्त तुलसी (ख) दार्शनिक तुलसी (ग) व्यक्ति तुलसी तथा (घ) समाज व्यवस्थापक तुलसी ।

दुनिया के सभी महान (विशेष कर धार्मिक) ग्रन्थों में ईश्वर के साथ शैतान की भी परिकल्पना है। अर्थात पाप पुण्य अच्छायी-बुराई। शैतान पाप का, बुराई का प्रतीक है। वह ईश्वर से तो बड़ा नही, परन्तु उसका स्थान ईश्वर के समकक्ष अवश्य है। अभिप्राय यह कि संसार पाप, पुण्यमय है । पाप,पुण्य, अच्छाई, बुराई, सापेक्ष है ।

रावण बुराई का, पाप का तथा साथ ही तमोगुण प्रदान समाज-व्यवस्था और मूल्यों का प्रतीक है। राम का रामत्व रावणत्व के विनाश में है। 'मानस 'में दो धाराओं के बीच टक्कर है- नियतिवाद- पुरूषार्थवाद। नियति का चक्र राम को तोड़ना चाहता है पर राम टूटते नही पुरूषार्थ के बल पर नियति को परास्त करते हैं यही राम का रामत्व है।

'रामचरित मानस' के पाठक 'मानस'दो रूपों में देखते है- काव्य तथा धर्म शास्त्र के रूप में ।

अशिक्षित या कम पढ़े लिखे लोगों तथा धार्मिकों आस्तिकों के लिए वह 'धर्मशास्त्र' है। शिक्षितों, साहित्य-रसिक, साहित्य चिन्तकों के लिए 'मानस' काव्य है।दोनों रूपों में 'मानस' अपनी श्रेष्ठता तथा अद्वितीयता प्रमाणित कर चुका है।

साहित्य चिन्तक जिसे 'महत् काव्य के आयाम' कहते है- 'मानस' उस कसौटी पर खरा उतरता है। दशरथ पुत्र राम का 'ईश्वर' होना तुलसीदास का निजी मामला है। 'मानस' मे कहीं भी राम अपने को 'ईश्वर' नही कहते। यहाँ तुलसी दास हैं जो बार-बार पाठकों को उनके 'ईश्वर' होने का आभास कराते चलते है।फिर भी 'नर लीला' को विशेष महत्व देते है। लोक,जन या भव के लिए 'नरलीला' ही काम्य है।'नरलीला' का सम्बन्ध राम के आचरण से है। राम का आचरण, उनका पुरूषार्थ ही उन्हें 'रामत्व' प्रदान करता है।

'मानस' चरित काल भी है, क्योंकि वह आचरण प्रधान काव्य है। और फिर तुलसीदास ने 'भरत' के चरित्र की 'मानस' में अवतारणा क्योंकी ? यह प्रश्न गहरे विमर्श का है जिस पर पंडितों का उतना ध्यान नहीं किया। 'भरत' का चरित्र कही भी किसी रूप में राम से उन्नीस नही है। तय है कि 'मानस का प्रतिपाद्य' राम का ईश्वरत्व नहीं, लौकिकता के धरातल पर राम के लोकरक्षक - लोकरजंक स्वरूप को लोक के समक्ष उपस्थित करना है। तुलसी के प्रिय काव्य-नायक राम के बाद भरत हैं। भरत के चरित्र की अवतारणा सोद्देश्य है।भरत के चरित्र निर्माण में महाकाव्य तथा मानव जीवन सम्बंधी तुलसी के उदान्त विचारों का पता लगता है। पता चलता है कि महाकवि की दृष्टि 'पराक्रम','पुरूषार्थ' के साथ ही शील, करूणा, मर्यादा सौंदर्य पर उतनी ही केन्द्रित है ।

आधुनिक युग में 'रामचरितमानस' जैसे प्रबन्ध काव्य का महत्व और बढ़ा है। 'मानस' कोरा प्रबन्ध काव्य नही, वह 'जीवन मूल्यों की अमर प्राणवत्ता' का महाकाव्य है। महाकाव्य की रचना तो अन्य देशों में भी हुयी है पर उनके साथ जीवन मूल्यों का कोई सम्बन्ध नहीं । अधिक से अधिक वे वीरगाथात्मक महाकाव्य है जिसमें उनके काव्य नायक का शौर्य प्रदर्शन हैं।

तुलसी मनुष्य-जीवन को देवताओं के लिए दुर्लभ बताते है। देवताओं का अमूर्त अस्तित्व है। यह लोक और

मनुष्य प्रत्यय हैं, इसलिये मूर्त है। तुलसी मनुष्य जीवन को अधिक से अधिक सार्थक बनाना चाहते है, क्योंकि 'मानुष जनम नही बारम्बारा' ।

आधुनिक युग व्यक्तित्व के विघटन का युग है। उपभोक्तावादी समाज भोगवादी होता है। भोगवाद उद्याम कामवासना मनुष्य को पशु बनाती है। मनुष्य आत्मकेन्द्रित तथा अहंवादी हो जाता है। ऐसे समाज का पतन अनिवार्य है। तुलसी बार-बार मनुष्य को सावधान करते है। तुलसी ऐसे समाज की कल्पना करते है जो श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, शील-सौन्दर्य मंडित हो। अराजकता पर लगाम जरूरी है। बेलगाम समाज अराजक हो जाता है और उसका पतन हो जाता है। मध्यकालीन भारतीय समाज ऐसा ही था। अकबर ने एक व्यवस्था देने की कोशिश की थी। परन्तु उसका कोई ठोस परिणाम न निकला।

धर्म और नीति के नाम पर बंटे समाज को व्यवस्था देने में तुलसीदास के प्रयासों का स्थायी प्रभाव पड़ा था। घृणा और गैर बराबरी पर आधारित समाज में पारस्परिक सहयोग का भाव तुलसी ने जगाया। यही सामाजिक सहयोग है। सहयोग के सहारे ही समाज आगे बढ़ता है। तुलसी के 'रामराज्य' में - 'सब नर करहि परस्पर प्रीती' ।सहयोग के लिए प्रेम भाव चाहिए।

विश्व का अर्थ 'सर्व' है- अर्थात् सबका भक्ति-काल मनुष्य ही नहीं, समस्त प्राणियों के कल्याण की कामना करता है।ऐसे उदार विचार दुनिया के किसी भी महाकाव्य में प्रतिबिम्बित नहीं हुए हैं। पश्चिम में ऐसी परिकल्पना या ऐसी चिन्ता कहां ? हमारा महाकवि तो मिथुनरत क्रौंच पक्षी के मारे जाने पर चीत्कार उठता है। करूणा की धारा 'महाकाव्य' में फूटती है। ऐसा उदाहरण दुनिया में अकेला तथा इकलौता है।

''मानस' मे 'भव' अर्थात् संसार शब्द बारंबार आया है– ''निज सन्देंह मोह-भ्रम हरनी, करौं कथा भव सरिता हरनी''

तथा – भनिति भदेस वस्तु भलि बरनी, राम कथा जग-मंगल करनी।।

प्रारम्भ में ही तुलसी घोषित कर देते है- 'मानस' का लक्ष्य –

''बुध विश्राम सकल जनरंजनि । राम कथा कलि - कलुष विभंजनि।।

तय है कि कवि की चिन्ता और चेतना के केन्द्र में सांस्कृतिक मूल्यों के साथ राजनीति और सामाजिक मूल्य भी थे।

तुलसी ने 'राम' में एक आदर्श नृपति तथा उनके 'रामराज्य' में एक आदर्श शासन-व्यवस्था की परिकल्पना की थी तो यह केवल हवाई आदर्श नहीं था। तुलसी का युग घनघोर राजतंत्र और आमन्त्रवाद का था। उस युग में समाजवाद संभव नहीं था। फिर भी तुलसी के 'रामराज्य' में समाजवाद के प्रचुर तत्व हैं। राज्य-व्यवस्था की कल्पना कर सकते थे। वह उन्होंने बखूबी किया।

'मानस' का महत्व, उसकी सार्वकालिकता सार्वभौमिकता मनुष्य ने अस्तित्व से जुड़े तात्कालिक तथा शाश्वत प्रश्नों में है। तुलसी ने ऐसे प्रश्नों को उठाया है जो मनुष्य -जीवन को अशान्त करते हैं। अपने समय के यथार्थ से टकराने का जो साहस तुलसी ने किसी भी अन्य कवि ने नहीं ।

हर महाकवि अपने चिन्तन में दार्शनिक हो उठता है। तुलसीदास जितने बड़े कवि हैं उतने ही बड़े विचारक। उनके चिन्तन का फलक अत्यन्त व्यापक है। अनेक चौपाइयों में सूत्र में उन्होंने अपने विचारों को रखा है। ये विचार मध्य देश या बिहार की जनता के लिए न हो कर समस्त मानव-जाति के लिए हैं – तुलसीदास जाति, वर्ग निरपेक्ष मानवाद के पक्षधार हैं उनका

यथा ''परहित सरिस धरम नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

तुलसीदास जाति, वर्ग जाति, वर्ग निरपेक्ष मानववाद के पक्षधर हैं उनका लक्ष्य मानव-मात्र का कल्याण है। तुलसी के राम की स्पष्ट घोषणा है – ''सब मम प्रिय, सब मम उपजाए'' ।

ज्ञानोदय युग से आज तक की तमाम भौतिक उपलब्धियां कुछ लोगों तक ही सीमित हैं। वृहत्तर मानव-समुदाय

(सारे संसार का) समस्याओं से ग्रस्त तथा त्रस्त है। सारे विचार मनमोहक तथा छलावा सिद्ध हुए। तुलसीदास भूख और दरिद्रता पर रह रह कर चोट करते हैं – लिखा है –

'आगि बड़वाणि तें बड़ी है, भाग पेट की '' । और फिर यह कि ' भूखे भजन न होहिं गोपाला' । दरिद्रता की चर्चा उन्होंने बारबार की है। गरीबी, दरिद्रता को मानव-समाज का सबसे बड़ा अभिशाप मानते हैं। जनता की दरिद्रता, गरीबी को उन्होंने प्रत्यक्ष देखा था। उनका स्वयं का जीवन भी घनघोर दरिद्रता में बीता था। इसकी भी चर्चा उन्होंने कई बार की है।

सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के साथ ही तुलसीदास एक ऐसे समाज का स्वप्न देख रहे थे तो सभी प्रकार के क्लेशों से रहित हो। मनुष्य की सारी पीड़ाएं, उसके सारे-दुख व्यवस्थागत हैं।

कुछ की सम्पन्नता पर आधारित समाज अन्तर्विरोध और अन्तर्कलह का कारण बनता है। ऐसा समाज या शासन-व्यवस्था किस काम की ? ऐसा शासक किस काम का ?

लाभ-शुभ पर आधारित समाज भोगवादी होता है। भोग-विलास उपभोक्तावाद का जनक है। उपभोक्तावादी समाज अहंवादी होता है। अहं पतन का कारण है। तुलसीदास बाह्य-जीवन के साथ ही आन्तरिक जीवन-सुधार की भी बात करते है।

तुलसीदास ने 'मानस' मे शाश्वत वृत्तियों का उद्घाटन किया है। 'मानस' भारतीय मेंधा की पुनर्स्थापना है। 'मानस' मनुष्य की शौर्य -गाथा है। मध्ययुग राजनीतिक पराभव का युग था, परन्तु मध्ययुग की कविता नहीं हारी है। बेशक, राजाश्रयी कविता दरबारों तक सिमट कर रह गयी थी। लोकाश्रयी कविता ने पराजय नही स्वीकारी थी। जन और अभिजन के युद्ध में 'जन' विजयी हुआ था। 'लोक' की जीत ही 'मानस' की जीत है।

तुलसी लोकशक्ति के महत्व को समझते थे। राजाश्रयी कविता के विरूद्ध भक्त कवियों ने 'लोक' का पक्ष लिया था – झोपड़-पट्टियों में बैठ कर।'लोकसत्ता' की विजय दर्शाना ही 'मानसवाद' का उद्देश्य है। राम के साथ 'लोक' था, इसीलिए रावण पर विजय हुई थी। राम ने स्वीकारा भी है। अत्याचार, अनाचार, कदाचार को सत्य,शील, न्याय के सम्मुख पराजित होना ही पड़ता है। विश्व-मानव को 'मानस' का यही संदेश है।

नमन सादर हमारा

– चित्रभूषण श्रीवास्तव

हे राम रघुकुल रत्न भारत वर्ष के भगवान हो तुम। प्रीतिपोषक धर्मरक्षक मनुजता के प्राण हो तुम।।
मान्य मर्यादाओं के प्रतिरूप करूणाधाम हो तुम। दृढ़वती आदर्श पुरुषोत्तम सफल गुण ग्राम हो तुम।।
कष्टहारी कर्मप्रेमी कल्पना की कामना हो। त्रस्त आकुल भक्ति मन के भाव की संभावना हो।।
सत्य प्रिय सात्विक हृदय की संतत संचित साधना हो। अमित अनुपम आत्मा की नेहमय आराधना हो।।
कठिन कर्मठ सिद्धि दायी, दुष्ट के संहारकर्ता। धर्मप्रिय कर्तव्यदर्शी शांति प्रिय संत्रासहर्ता।।
सौम्यमूर्ति महाव्रती प्रेमल दलित उद्धार कर्ता। सत्सख निश्छल हृदय के भक्त के आदर्शकर्ता।।
तुम्हारे आदर्श की प्रभु भूमि पर अवतारणा हो। निष्कपट निस्वार्थ जीवन की समादृत धारणा हो।।
है दुखी संसार रक्षा कीजिए प्रभु दे सहारा। राम हो स्वीकार चरणों में नमन सादर हमारा ।।

विकास प्रकाशन

विवेक सदन, नर्मदागंज, मण्डला (म. प्र.)

मैं चार दिवस बन्धन

—नरेन्द्र उम्मीद

ताना-बाना मेरा पंचतत्व का
इसको कहता जग बड़े महत्व का
मैं ही जानूँ यह कितने सत्व का
तू भरमाया सोचे निजत्व का
क्यों भटके मेरे पीछे ऐ मन! मैं माया दर्पन
क्षिति जल पावक गगन समीरा
इनके ऋण यह दबा शरीरा
तुम कैसे चलूँ हे धीरा!
मुझे उऋण होना भव-तीरा
मेरे मोह से मुक्ति ढूँढ तू!
ऐ मन! मैं चार-दिवस-बन्धन

-मनीखेड़ा नारायण दास खेड़ा, उन्नाव

तुलसी तुम्हारे बिना

—पं. भैरव प्रसाद द्विवेदी "रामायणी"

मानस का मानस पवित्र करने के लिए
भूतल में भारत का गौरव सुनाता कौन?
देश में विदेश में अनेक वेश में विचित्र,
राम के चरित्र की पताका फहराता कौन?
डूबती सनातन की नाव भव वारिधि में
"भैरव" कराल कलिकाल में बचाता कौन?
राम जानकी की चारु चरितावली से दिव्य,
तुलसी तुम्हारे बिना "मानस सुमन" बनाता कौन?

संपादक "मानस मणि" मानस संघ सतना म.प्र.

कुंभकरण हो गई चेतना

— राज गोस्वामी

कुंभकरण हो गई चेतना, नियत दशानन सी।
मंहगाई बैठी मुँह बाएँ, सुरसा आनन सी।।
स्वारथ लागि करें सब प्रीति अब तो रीति बनी।
हम तुम से ऊँचे तुम नीचे इस पर तना तनी।।
जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत दर्पण सी।
कुंभकरण हो गई चेतना नियत दशाननसी।।
कोऊ नृप होय हमें का हानी जब से सोच लिया।
सारा जग झूठा लगता है सच्चे राम सिया।।
खग जाने खग ही की भाषा हमको कुतरन सी।
कुंभकरण हो गई चेतना, नियत दशानन सी।।
ऊँच निवास नीच करतूती के माथे चंदन।
खूब हो रहे अपने हाथों अपने अभिनंदन।।
पारस गुण अवगुण नहिं चीन्हत नियरे प्रानन सी।
कुंभकरण हो गई चेतना, नियत दशानन सी।

श्री सदन, सिविल लाइन्स
दतिया (म.प्र.) 475661

कैकेयी ने वनवास दिया

—कमलेश शर्मा

राघव को सकल विश्व जाने ! उनके स्वरूप को पहिचाने!!
केवल न कौशलाधीश रहें! पीढ़ियाँ राम को ईश कहें !!
सार्थक उनका जीवन करने! कर्मों में पावनता भरने!!
प्रिय राम न रह जाये मानव! बनना था जिन्हें महामानव!!
उद्धारक मानवता के हों! संहारक दानवता के हों!!
शुभ आचरणों के उद्गम हों! और मर्यादा पुरुषोत्तम हों!!
एक राम नवीन बनाने को, एक राम युगीन बनाने को!!
निष्ठुरता का आभास दिया! कैकेयी ने वनवास दिया!!
धरती का कष्ट मिटाना था, मानवता-धर्म बचाना!!
देवों को मुक्त कराना था ! रावण का दम्भ मिटाना था!!
ऋषि मुनियों की अनगिन आहें! और बाट जोहतीं थी राहें!!
शाप से मुक्ति दण्डकवन की! त्याग की परीक्षा लक्ष्मन की
शबरी के बेर प्रतीक्षा में व्याकुल थे स्वाद समीक्षा में!!
जब तक न राम बन में जाते! ये काम अधूरे रह जाते!!
निन्दा भी सही किन्तु जिसने, युग को नवीन इतिहास दिया
सुन पीड़ित धरती का क्रन्दन, हो गया द्रवित कैकेयी मन।।
सर्वोपरि जनहित को माना। था लक्ष्य नहीं सत्ता पाना।।
परमार्थ हेतु निर्णय कठोर। वेदना, उपेक्षा सही घोर।।
वैधव्यं सहज स्वीकार किया। अपमान गरल हरबार पिया।।
भावना लोक-हित की मन में! इसलिये रूम भेजे वन में।
घर से निर्वासन किया भले, जन-जन में हृदय सुवास दिया।
प्राणों से भी प्रिय अधिक राम। उनके प्रति कैसे हुई बाम।।
रण में रथ-चक्र धुरी साधी। बन गई आज वह अपराधी।।
उद्यत दुःख हरने धरती का। उस पर ही है कलंक टीका।।
लेकिन हम मूलभावना को। भूले दानवी यातना को।।
श्रीराम करें वह देवकाज। कर रहा प्रतीक्षा था समाज।।
अपने सनेह की भेंट चढ़ा जिसने केवल सुर काज किया।।

जैन कालेज, करहल (मैनपुरी)

यह ही जीवन को गति प्रदान करता है

– डॉ0 विद्या भाष्कर वाजपेयी

काम सर्वत्र है।"स एकाकी न रमते! एकोऽहं बहुस्याम इति सो ऽ कामयत्। '' यहाँ 'बहुस्याम' और आकामयत् के केन्द्र में काम ही है। अधेनिनारी को गति प्रदान करता है जिस दिन मानव मन से काम निकल जायेगा उसी दिन से वह लौकिक दृष्टि से अव्यावहारिक, अक्रिय एवं अव्यवस्थित हो जायेगा ।

माता- पिता, योषा-वृषा , स्त्री-पुरुष, का जो अनिवार्य कामातुशासित सम्बंध है वही दिव्य आकर्षण प्रणय या प्रेम कहलाता है। प्रणय जीवन को विशालता देता है, ऊँचा उठाता है और महती पूर्णताओं की ओर अग्रसर करता है। यह मानवी घृणा और विनाशकारी प्रवृत्तियों का प्रतिकार करने में समर्थ होता है।

स्त्री पुरुष के रुप मे अवतरित होकर ईश्वर ने सृष्टि-सृजन को आगे बढ़ाया। सृजन की तीन सहज स्थितियां हैं-

(1) प्रणय की इच्छा (2) प्रणय की लीला (3) प्रणय परिणति

(1) प्रणय की इच्छा– मिथिला में सीरध्वज जनक की पुष्प वाटिका देखने के लिए अवधेश दशरथ किशोर के पुत्र राम और लक्ष्मण जाते है इसी समय जनक नन्दिनी सीता भी गौरी पूजन के लिए सखियों सहित पुष्प वाटिका में आती है। साथ की एक मनचली सखी सीता का साथ छोड़कर दूसरी ओर निकल जाती है। वहाँ उन दिव्य स्वरूपवान कुमारों को देखकर वह विस्मय विमुग्ध हो उठती है।लुटी-लुटी थकी-हारी सी वह लौटती है और सीता को बताती है–

"देखन बाग कुवंर दुइ आये। वय किसोर सब भान्ति सुहाये।।
स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनुबानी।।''

किशोर कुँवारों का रूप वर्णन सुनकर सीता के हदय में राम के दर्शन की इच्छा बलवती हो उठती है। दर्शन लोभ का आकर्षण व्याकुल करने लगता है– "तासु वचन अति सियहि सुहाने। दरस लागि लोचन ललचाने।।''

तभी सीता जी को नारद के वचन स्मरण हो आते है-

"सुमिरि सीयं नारद वचन उपजी प्रीति पुनीत।।''

सीता के हदय में पवित्र प्रेम की जागृति हुई। उधर राम के कानों में जब स्त्रियों के आभूषणों की मधुर ध्वनि सुनायी पड़ी तो भाव विभोर होकर वे लक्ष्मण से कहते है –

"कंकन किंकिन नूपूर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हदय गुनि।
मानहुं मदन दुन्दुभी दीन्ही। मनसा विस्व विजय करि लीन्ही ।।''

यह तो हुई प्रणय की इच्छा। अब प्रणय की लीला देखिये।

"आकर्षण दोनो ओर हुआ। मदन दुन्दुभी की ओर संकेत कर राम उसी ओर देखने लगते हैं जिस ओर से आभूषणों की मधुर ध्वनि आ रही थी–

"अस कहि फिर चितये तेहि ओरा। सिय ससि हित भये नयन चकोरा।''

इधर सीता भी राम के अलौकिक दर्शनों की अभिलाषिनी है, अतः वे भी जाते-जाते पीछे की ओर बार-बार मुड़कर देखती है–

"देखन मिस मृग विहग तरू फिरइ बहोरि बहोरि। निरखि-निरखि रघुवीर तन बाढइ प्रीति न थोरि ।।''

इस पुनीत प्रणय की परिणति अलौकिक सच्चिदानन्द की पूर्णता में सहज होती है-

"सिय जयमाल राम उन मेली ।''

लवकुश नगर बिठूर, कानपुर

राम रमे हर प्राण में

डॉ. ओम प्रकाश भाटिया 'अराज'

जो लीला से रहित है लीला में साकार। शब्द रुप गति गन्ध रस, रामप्रेम विस्तार।। 1।।
जग के कण-कण में रमा, राम सकल सुख धाम। इसलिए हर कण हुआ जगमोहन अभिराम ।। 2।।
राम रमें हर प्राण में, प्राणी है हर मीत। हर बोली हर शब्द है, राम तुम्हारा गीत ।। 3।।
सब सुन्दरता राम की, सब कुछ सुन्दर राम। सब रस मय संगीतयम हरा भरा अभिराम ।। 4।।
जय राम सदा सुख दाता । प्रभु निर्गुण सगुण विधाता । जो सबका पालन करता जो जन्म मरण दुख हरता ।।5।।
जो सत्यसत रखवाला। भय तम पौरुष उजियाला। जो उपकारी भयहारी । जो भक्त हेतु संसारी ।।6।।
मुख राम नाम हो सुख में । मुख राम नाम हो दुख में । सुख मिला राम अनुकंपन । दुख उसका नेह निमंत्रण ।।7।।
प्रभु नाथ सखा गुरु मेरे। जीवन प्रसाद प्रभु तेरे। तू भक्त वत्सला मैया । तू पिता नाव खेवैया ।।8।।
तू भूतकाल है मेरा। मेरे भविष्य का डेरा । तेरा चलता निर्णय है। फिर मुझको किसका भय है ।।9।।
मन रसना मिल कर जपें, भव भयहारी राम। धर्म अर्थ हो काम तुम, तुम में हो विश्राम ।। 10।।
राम शब्द मंगल भवन, करे अमंगल नाश । प्रेम सहित मन में रसे, काटे माया याश।। 11।।
जग मरू भू में तुम मिले, कल्पवृक्ष प्रभु राम। क्यों न तुम्हारी छाँह में, मैं पाँऊ विश्राम ।। 12।।
श्री राम तुम्हारी माया। जिसने अब तक भटकाया। अब तो प्रभु इसे समेटो। मैं बूंद उदधि तुम भेंटो ।। 13।।
मैं राम भरा जग देखूँ। हर सपना हरिमय रेखूँ । सोऊँ तो तुम में सोऊँ गुण हीन तुम्ही में खोऊँ ।। 14।।
यों मुझको देख बिलखता। गुरु उर में हुई विकलता। शिव शुम्भ मरूत्सुत जागे। मम लेख पुरबले त्यागे ।। 15।।
अन्यथा कहाँ मैं पायी। गुजांइश कब करूणा की । महिमा सब गुरु समता की। जिसने यह अनुकम्पा की ।। 16।।
ममता ने ली अँगड़ाई । तब आकरूणा बरसाई। सिर छूकर मुझे जगाया।सूखा तन मन सरसाया । । 17 ।।
गम्भीर गिरा में बोले ।ज्यों द्वार प्यार के खोले। पुत्रक मत नीर बहाओ। मत मणियाँ श्वास लुटाओ ।। 18।।
खोओ मत दुख सोच में, मूल्यवान हर श्वास जतन करो हरि भक्ति का, चमके राम उजास ।। 19।।
संसार न सुख में अपना । संसार न दुख में अपना। सुख में भीतर से जलता। दुख में वह साथ न चलता ।।20।।
ममता इस जग की छोड़ो। नाता उस प्रभु से जोड़ो। जो सबका सिरजन करता । जो सबका पालन करता।।21।।
उसकी ममता है ममता। बाकी है मरू जल छलता। तू जिनसे बना धनी है। हरि का हर श्वास रिनी है ।।22।।
इस धन से कर भक्ति का, वर्धमान व्यापार । क्यों कि खरीद घर भर रहा, यह दुखमय संसार ।। 23।।
माया कारागार का, मनुज जन्म ही द्वार। राम भक्ति पियके रहो। निकलो माया पार ।। 24।।
सुख-दुख के दो पाट में धुरी राम का नाम। चिपक रहो हरि नाम से, तभी बचेगा धाम।। 25।।
धन यौवन साथ न जाता। संबंधी पिता न माता। वैभव यश यहीं रहेगा। तू अपना किया सहेगा ।।26।।
हर बार जन्मना मरना। हर बार वही कुछ करना। पल पल दुख जल में जाना। आशाओं से उतराना ।।27।।
भव सागर दुख ही दुख है। सज सँवर दीखता सुख है। मत मन इसमें भरमाओ मन से निसंग हो जाओ ।।28।।
श्री राम चरण धर माथा । तुम कहो राम की गाथा। हरि नेह हिरदय में धारो। नित उनसा रूप निहारो।।।29।।
राम रुप मन में बसे, गन्ध पुष्प का मेल। इक दूजे से प्रेम का चले निरन्तर खेल ।। 30।।
जग की बातों से भला, राम ध्यान में मौन। छोड़ राम को अन्त में, साथ चलेगा कौन।
राम राम जप राम जप, राम राम जप राम। भूत अद्य भावी सकल, हो जाए अभिराम।

बी-2-बी-34, जनकपुरी, नई दिल्ली- 110 058

आज फिर राम चाहिए

— शबिस्ताँ बृजेश

भारती की चीर हरते हैं आज लोग यहाँ, भारती को मातु एक शक्तिमान चाहिए।
कौरवों की जाँघ तोड़ डाले कोई वीर यहाँ, भारती को भीम जैसा बलवान चाहिए।
चक्रव्यूह रच डाला पापियों ने फिर आज, पार्थ को हे मातु पुत्र वरदान चाहिए।
पापियों की लंक को जो भस्म करे मातु यहाँ, युग माँगता है वीर हनुमान चाहिए।
द्रोपदी समान केश खोल देवें नारियाँ यें, कौरवों के नाश का प्रण आज चाहिए।
कालिका के फन को कुचल दिया पग तले, ऐसे चरणों का रज कण आज चाहिए।
असुरों का राजपाट बढ़ रहा है आज सुनों, मातु इस राज्य का क्षरण आज चाहिये।
जानकी खडग हिय काँप उठे देख जिसे, जानकी के हाथ का वो तृण आज चाहिए।।
थक गये कठिनाइयों से आज मातु यहाँ , अब तो हे मातु आज विश्राम चाहिए।
आततायियों का जो विनाश करे मातु यहाँ, युग को दोबारा एक अभिराम चाहिए।
कंस कौरवों का नाश अपने ही हाथ करे, हमको हे मातु गिरधारी श्याम चाहिये।
दशाशीश रावणों के वध हेतु मात हमें, राम राम राम आज फिर राम चाहिए।

— अम्बेदकर नगर रायबरेली

राम तुम मुझमें रमा करो

—नबाबुद्दीन खाँ

बिखर गये उनको पाकर,
टूट गये तार तार
आह ने छू लिया व्योम
निर्विकार हो गया साकार
अदृश्य की हूक हुयी दो टूक
मौन हो गया मूक
आत्म विभोर -आत्म स्नार
साक्षात राम - अवतार
अपलक नैन - मूक बैन
शीतल काया की माया
होगया स्वप्न साकार
देखा जीवन ज्योति अपार
राम तुम मुझमें रमाकरो
मैं तुम में रमा करूँ।
परिजात जीवन आधार
लतिका को चाहिए सघन संग
तुलसी को राम, नहाने को गंग

शलभ को चाहिए दीप शिखा
समर्पण का अनूठा ढंग
दर्शन एक लालसा
पाने की अभिलाषा
पारदर्शी - दर्पण
निर्विकार आकर्षण
कौतूहल सलज नयन भर
स्वर्ण जयन्ती अवसर पर
विराम -विश्राम, अविराल चिन्तन
एक मनन, एक लगन एक ही दर्शन,
सूली की सेज भक्ति का अनुराग,
आत्म समर्पण ही सुहाग
मिट्टी की काया, सन्मुख राम की छाया
कठिन कठिनाइयों से पाया।
उन्मेवेश शून्य शेष
सागर में सीकर समाया।

-राजापुर, चित्रकूट

यह परिदृश्य बड़ी घुटन का है

❑ पद्मविभूषण डॉ० विद्या निवास मिश्र

सहस्राब्दी की बात तो मुझे कोई ऐसी चौंकाने वाली नहीं लगती क्योंकि काल की ऐसी कृत्रिम गणना कोई अर्थ नहीं रखती। यह सहस्राब्दी चाहे ईसा के जन्म से नापी जाती हो या शक विजय से, महाकाल के प्रवाह में उसका कोई महत्व नहीं। सुबह महत्व रखती है, शाम महत्व रखती है, ऋतुओं का परिवर्तन महत्व रखता है, और एक ऋतु चक्र का दूसरे ऋतु चक्र में घुलना महत्व रखता है। नदी के मोड़ जैसे काल के ऐसे मोड़ महत्व रखते हैं जहाँ से आगे बढ़ने पर पीछे कुछ नहीं दिखता। बस कुछ सुविधाओं के लिए आदमी ने काल के कुछ यांत्रिक पैमाने निर्धारित कर दिये हैं। उन्हीं यांत्रिक पैमाने में ही घटना भी नापी जाती है। इसी पैमाने के पिछले हजार वर्ष हिन्दी की यात्रा के दूसरे प्रकार के वर्ष रहे हैं। इसमें हिन्दी जन्मी, फक्कड़ों के यहाँ पली या फिर शूरमाओं के तलवार की धर पर नाची और उसके एक ओर तो सिद्धों का वह आकाश दिखा जहाँ रवि, शशि को भी प्रवेश नहीं है। दूसरी ओर जमीन की चुनौतियाँ थीं जिसकी बपौती में मिली जमीन कोई दबा ले, उस पुत्र के जन्मने से क्या और उसके मरने से क्या। ऐसी दो धाराओं के बीच हिन्दी का बचपन बीता और यहीं बड़ी हुई तो इसे ऐसे संतों का आश्रय मिला जो किसी का आश्रय स्वीकार नहीं करते थे और जिनके लिए बड़े से बड़े साम्राज्य की सत्ता तुच्छ थी। मनसबदारी स्वीकार न करने वाले मनशाहों के शाह कवियों की वाग्धारा बनी और हिन्दी ने इसी प्रकार अपना अल्हड़ यौवन बिताया । यही कारण था कि उसमें शुरू से ही स्वाधीनता का रंग बड़ा गहरा था। उत्तरवर्ती काल में जब हिन्दी के कवियों ने राजाओं के यहाँ रहना शुरु किया तो भी उन्होंने अपना स्वाभिमान नहीं खोया और जहाँ कहीं जरा भी उन्हें लगा कि अपने को आश्रयदाता मानने वाला राजा या जागीरदार कुछ उपेक्षा कर रहा है, तत्काल वहाँ से चलते बने। कुछ ही ऐसे हैं जो किसी आश्रयदाता के यहाँ ठहरे रह गये। पर ये आश्रयदाता अपने को कवि की उपस्थिति से गौरवान्वित मानते थे। चाहे वे जयपुर नरेश रहे हों, चाहे अयोध्या नरेश हों, ये सभी सहृदय थे और कवि हृदय थे। भूषण के बारे में कहा जाता है कि छत्रपति शिवाजी ने उनकी पालकी उठायी थी। इन लोगों ने आश्रयदाता की संतुष्टि के लिए कुछ छन्द भले ही लिखे हों या उनके नाम से कोई पुस्तक लिखी हो पर इनके काव्य का मुख्य जीव्य 'राधिका कन्हाई के सुमिरन को बहानो' है। इसलिए इनके काव्य का विभाव महत्व बहुत कम है। है तो आकाश का वितान और यमुना का निकुंज । भले ही उद्दीपन के रूप में या संश्लिष्ट योजना के रूप में ऋतुओं का सौन्दर्य इनके यहाँ आया हो, पर वह सौन्दर्य उन्मुक्त वातावरण का है। इस प्रकार हिन्दी उन्मुक्तता का पर्याय ही बनी रही। वह झुकी नहीं। थोड़ी बहुत ही वह राज व्यवहार में आयी, पर उस राज व्यवहार में केन्द्रीय शासन की फारसी हावी थी और वहीं फारसी अंग्रेजों के आने के बाद भी ऐसी हावी रही कि सर्वनाम और क्रियापद हिन्दी के होते थे, नहीं तो संज्ञा, अव्यय और विशेष सब सीधे फारसी, अरबी से आते थे। अदालतों में जो अर्जियाँ पेश की जाती थी उनमें पिसर (पिता) जौजे (पति) बालिदैन (पिता-माता) छाये रहते थे। यही नहीं, देवनागरी लिपि तक को कचहरी में प्रवेश नहीं था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और महामना मदन मोहन मालवीय ने अगुवाई की और

हिन्दी ने अस्मिता का नया संघर्ष छेड़ा। इसके पहले हिन्दी का ऐसा संघर्ष छेड़ने की जरूरत नहीं थी क्यों इसके पहले सत्ता इतनी केन्द्रीकृत नहीं थी जब ग्राम स्वराज की सत्ता को अंग्रेजों के माल मुहकमे के शासन ने और उससे अधिक पुलिस प्रशासन ने बुरी तरह जकड़ लिया, तभी ऐसे संघर्ष की तीव्र आवश्यकता का अनुभव हुआ।

बीती सहस्राब्दी का जो मोड़ अभी आंखों से ओझल नहीं हुआ है उसका पूरा का पूरा दौर इसी अस्मिता के संघर्ष का था । निहित स्वार्थ वालों ने इसे साम्प्रदायिक संघर्ष का रूप देना चाहा पर राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन जैसे लोगों ने यह ललकार दी कि यदि जायसी, रहीम, रसखान की भाषा साम्प्रदायिक है और ऐसे कवियों की सहभागिता होते हुए भी यदि हिन्दी साम्प्रदायिक सिद्ध हो जाये तो मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भवन में आग लगा दूँगा। हिन्दी ने उर्दू के खिलाफ नहीं लड़ाई लड़ी, न अंग्रेजी के खिलाफ। उसने एक ऐसी प्रभुता के खिलाफ लड़ाई लड़ी, जो सत्ता को भाषा के आधार पर सीमित लोगों के हाथों में सौंपी जा रही थी। एक तरह से हिन्दी ने प्रभुतावाद के खिलाफ लड़ाई लड़ी क्योंकि ऐसी प्रभुता उसकी इतिहास सिद्ध प्रकृति के प्रतिकूल थी।

इसलिए यह आकस्मिक नहीं था कि स्वदेशी की मांग में हिन्दी को जोड़ने का विचार महात्मा गांधी के मन में आया। उन्होंने यह समझ लिया कि गाँव के किसान की मांग इसी भाषा में उठगी तो कारगर होगी, क्योंकि यह जमीन की भाषा में होगी, हवाई नहीं होगी। इस अस्मिता के संघर्ष में काश पूरी सफलता मिली होती तो यह नया मोड़ नहीं आता जो सामने दिख रहा है। उसमें बड़ी दूर तक गहरा अंधकार दिख रहा है । रोशनी बड़ी हल्की दिख रही है। उस अंधकार के आगे जरूर कुछ आलोकित सा दिख रहा है, चाहे जंगल में दहके हुए पलाशों की ही आग का प्रकाश क्यों न हो। हिन्दी के साथ पुछल्ले के रूप में अंग्रेजी जुड़ी हुई है और वह पुछल्ला हिन्दी के सिर चढ़ गया है। ऐसा चढ़ा कि जिस देश में एक के बाद अनेक शिक्षा आयोगों ने (यहाँ तक कि अंग्रेजी शासन के जमाने की शिक्षा आयोग ने) यह घोषणा की थी कि शिक्षा अपनी ही भाषा में दी जाती है तो वह कारगर होती है। परन्तु ठीक इसके विपरीत स्वाधीन भारत के वर्तमान चरण में न केवल अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाने वाले स्कूलों के रटन्त और सिरफिरन्त शिक्षा को प्रश्रय दिया है बल्कि कुछ सरकारों ने तो प्राथमिक शिक्षा से ही अंग्रेजी पढ़ाना शुरू कर दिया है। पराधीन भारत में भी प्रारंभिक कक्षाओं में अंग्रेजी नहीं थी और थी भी, तो थोड़े से ईसाई मेमों के आंचल में पलने वाली शिक्षा में थी। उस समय बड़े-बड़े विद्वान, प्रशासक, न्यायाधीश, प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा हिन्दी में प्राप्त करके आये थे। आज जिस तेजी से अंग्रेजी सरकारी कामकाज से अधिक व्यवसाय में आ रही है, विज्ञापन में आ रही है और शिक्षा के माध्यम के रूप में आ रही है, वह नई चिन्ता का विषय है । यदि घोषित रूप में अंग्रेजी ही एकमात्र भाषा हो जाती तो भी इतनी चिन्ता न होती। भारत का स्वभाव है कि ऐसे दबाव में पड़ने पर वह उच्छलित और जागृत होता है। आज उसका भी अवसर नहीं है। ऐसा लगता है कि जैसे हिन्दी को नशा पिलाकर सुला दिया गया है।

कभी सांप्रदायिकता का आरोप उस पर लगता था। अब इस पर पिछड़ेपन का आरोप लगता है। कभी प्रतिभागिता का आरोप लगता है। शहंशाहों, नवाबों और उनके जागीरदारों की खुशामद में पाँव में बिछ जाने वाली भाषा प्रगतिशील और वकीलों की, यहाँ से वहाँ घूमने वाले अलमस्त साधुओं की भाषा, किसानों, मजदूरों की भाषा प्रगति विरोधी। यह विडम्बना नहीं तो क्या है। इसके ऊपर और तोहमत । हिन्दी जिसने चरखा और स्वदेशी के

साथ जुड़कर देश को एक स्वर दिया वह अव एकता के मार्ग में बाधक हो गयी । ये सब ताहमत इसलिए कि अंग्रेजी की प्रतिष्ठित करने में सीमित वर्ग की प्रतिष्ठा होती है। देश के विखंडन की गहरी अनुसंधि सफल होती है। और स्वदेशी की भावना को मारने में विश्व यारी की चाल सफल होती है। ऐसे खतरनाक मोड़ पर हम इस तथाकथित तीसरी सहस्राब्दी की शुरुआत में है।

यहाँ से जो दिखता है उसे देखने का मन नहीं करता। लेकिन आंखें मूँद कर नहीं रह सकते। बस धुंधला कुहरा दिखता है। एकदम से चीकट कुहरा लगता है कोई भी सुबह इस कोहरे को उठा नहीं पायेगी। हिन्दी के अखबारों की वितरण संख्या, हिन्दी पुस्तकों के छपने की मात्रा, हिन्दी पुरस्कारों की बाढ़ ये सब इस कुहरे को हटाने की कोशिश कर रहे हैं। पर कुहरा गहरा हो जाता है। कारण यह है कि सम्मान और प्रसार के सारे बहाने उभरते जा रहे हैं। और अंग्रेजी की दुर्निवारता को स्वीकार करने का भाव बढ़ता जा रहा है। बाजारवाद की माया आसुरी अट्टहास कर रही है। एक किंकर्त्तव्यविमूढ़ता दिखाई पड़ती है। हिन्दी बात करना चाहती है भारतीय भाषाओं की और जब मांग करती है कि सरकारी परीक्षाओं में अंग्रेजी अनिवार्य न हो, सभी भारतीय भाषाएं वैकल्पिक रूप में हो। अंग्रेजी का दूध पीने वालों के लिए अंग्रेजी बनी रहे, पर कम से कम भारतीय भाषाओं को भी जगह मिले और इस मांग को पूरी करने में कोई भी सरकार हो, किसी की भी सरकार हो - आज एक लम्बे अरसे से आनाकानी कर रही है। संसद ने प्रस्ताव पारित किया। भूतपूर्व राष्ट्रपति और आज की सरकार के अनेक मंत्री तक़ ने अंग्रेजी की सम्प्रभुता के खिलाफ धरने में साथ दिया, पर थोड़े से इने गिने लोगों द्वारा सामने रखे रोड़े इतने जबरदस्त है कि अंग्रेजी का एकछत्र राज बना हुआ है। इसका असर है कि विभिन्न राज्यों की अलग-अलग शिक्षा नीतियो के शिकार असंख्य-असंख्य युवक सरकारी नौकरियों के अवसर खोते ज़ा रहे हैं, क्योंकि उनको हिन्दी या दूसरी भारतीय भाषा में शिक्षा दी गयी है। शिक्षा के नाम पर अंग्रेजी महीनों, दिनों और संख्याओं नामों की रटाई है। यही नहीं इस रटाई ने देशी नामों को पूर्ण विस्मृति में फेंक दिया है। यहाँ तक कि अपनी मातृभाषा में गिनती नहीं आती, महीनों के नाम नहीं मालूम, दिन के नाम नहीं मालूम।

ऐसी आत्म-विस्मृति की लाचारी और उसके बाद भी हिन्दी का जीते रहने का प्रयत्न यह परिदृश्य बड़ी घुटन का है। शायद यह घुटन ही आशा का अवलम्बन है। क्योंकि लम्बे अरसे तक घुटन नहीं सही जाती। यह विस्मृति ही स्मृति के फूट पड़ने का आह्वान है। इतने असंख्य लोगों की बेकारी नहीं क्रान्ति का आह्वान है। वह क्रान्ति क्या रूप लेगी कुछ कहा नहीं जा सकता। उसे आज यदि कोई दिशा नहीं दी गयी तो रचनात्मक ऊर्जा का कितना क्षरण होगा, नहीं कहा जा सकता । आज के मोड़ से जो हल्की सी उजास बहुत दूर दिखाई पड़ती है वह कुछ मांग कर रही है। मांग करती है अपनेपन की और अपनेपन के सम्मान की। मांग कर रही है 'रहिमन मोहिं न सुहाइ अमिय पियावत मान बिनु' मांग कर रही है अमृत की सुरक्षा के लिए खौलता हुआ जहर पीने की सुख सुविधाओं के त्याग की सब कुछ उजड़ जाने की बस, अपनापन बचा रखने की जो रहे वह अपना रहे। उस पर किसी का उधार न चढ़ा हो - इस सकंल्प की। यह सही है कि यह संकल्प लेने वाले अभी थोड़े हैं। पर थोड़े से लोग अगर यह संकल्प लेने के लिए सामने आ जायें जो जिस उजास की बात मैंने ऊपर की है, वह और नजदीक आ जायेगी।

□□□

मानस संगम देववाणी सम्मान

राष्ट्रिय-जागृतिः

❑ पंडित गुलाम दस्तगीर अ० बिराजदार

[मुस्लिम-संस्कृत-सेवा, राष्ट्र भाषा पदे योग्या संस्कृत भाषा, संस्कृत गुण पूजा एवं लोक व्यवहारे संस्कृतम्, सर्वमत समन्वयात्मकं संस्कृतम् आदि अनेक ग्रन्थों के प्रणेता संस्कृत के प्रकांड विद्वान् अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक-संस्कृत-पत्रिका 'विश्वभाषा' के यशस्वी सम्पादक पं० गुलाम दस्तगीर अ० विराजदार महापण्डितः, पण्डितेन्द्रः, संस्कृत-रत्नम्, परशुराम श्री, विद्या पारंगतः आदि उपाधियों से विभूपित हैं। चिक्कहल्की तहसील -अक्कलकोट जनपद-सोलापुर (महाराष्ट्र) में २४ अगस्त १९३५को जन्मे वलवन्तराव घाटे संस्कृत पुरस्कारः, संस्कृत प्रसार कार्य पुरस्कारः, संस्कृत विपयक - प्रशंसनीय कार्य पुरस्कारः, राष्ट्रिय संस्कृत पण्डित पुरस्कारः आदि अनेक पुरस्कारों से सम्मानित पं० गुलाम दस्तगीर अ० बिराजदार हमारे देश का गौरव हैं। प्रस्तुत है डॉ० बिराजदार महोदय का एक लेख जिसमें वताया गया है कि हम सव वेद-भक्त हैं। वेद मन्त्र में कहा गया है कि हमें राष्ट्र-जागरण करना चाहिए। वेदों के विरोधियों को भी अन्ततोगत्वा वेद वाक्य ही स्वीकारने पड़ते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं। 'राष्ट्रीय जागृति' के नाम से अनेक उद्योग लगे हैं परन्तु उसमें कार्यरत लोगों में राष्ट्र भावना कम तथा स्वार्थपरायणता अधिक दिखाई देती है। स्वार्थपरायणता से जनसाधारण की सुख - शान्ति नप्ट होती है। वर्तमान समाज में सभी ओर भ्रष्टाचार व्याप्त है, इसलिए समाज का हित चाहने वाले सदाचारी लोगों को परस्पर सहयोग करते हुए न्याय का मार्ग अपनाना चाहिए। जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों को अपने-अपने क्षेत्रों के मतदाताओं की अपेक्षा के अनुसार कुशलता एवं तत्परता के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। - सम्पादक]

"राष्ट्रे जागृयामो वयम" इति वेदमन्त्रः अपि। वयं सर्वे वेदभक्ताः । चार्वासदृशाः अपि जनाः पर्यायेण वेदभक्ताः एव । एतैः चार्वाकसदृशैः जनैः वेदान् आश्रित्य एवं विचाराः मण्डिताः, तथैव प्रतिपादनं कृतम्। एतैः वेदेभ्यः एव महत्त्वं दत्तं वर्तते। वेदविरोधे अपि वेदानामेव शरणम् एतैः गृहीतं स्वीकृतं च वर्तते इत्यपि न्यूनं नास्ति। पुनरपि अधिकं कथयितुं शक्यते, परन्तु विस्तरभयम् अस्मान् पीडयति।

'राष्ट्रिय-जागृतिः' इति नाम्ना केचिदत्र विविध उद्योगमग्नाः सन्ति। एतादृशानाम् अत्र स्वार्थपरायणता अधिका एव दृश्यते। नात्र कश्चिद्दोषः । परन्तु एतेषां स्वार्थपरायणता अन्य-जन- सुखविनाशं करोति। एतदर्थम् एकेन संस्कृतकविना स्पष्टम् उक्तमेव वर्तते -

एष तु स्वार्थसंसक्तः स्वार्थमेव पश्यति। जनसुखविनाशाय यतते सर्वदा हि सः।।

अतः अन्यजनसुखविनाशः मा भवतु इति धारणा सर्वैः धारणीया। पुनश्चात्र एतादृशाः अपि जनाः सन्ति यत जीवनावश्यकवस्तूनां संग्रहं कृत्वा स्थापयन्ति। आवश्यकतानुसारेण अपि अस्य संग्रहस्य उद्घाटनम् अपि कर्तुं नैव इच्छन्ति। अतः एव अन्येन कविना उक्तं विद्यते -

एतादृशो मनुष्योऽत्र समाजाय महारिपुः। वस्तूनां संग्रहं कृत्वा हन्ति राष्ट्रोन्नतिं स हि।।

तदर्थमत्र एकस्मिन् श्लोके उपायः अपि सूचितः वर्तते -

एतेषां निग्रहःसद्यः समाजाय हितावहः। न हि अन्यथा समाजस्य निगृहीतिर्भिविष्यति।।

केचिच्श्व एतादृशाः अपि जनाः अत्र सन्ति यत् संगृहीतानां वस्तूनां वितरणं वर्त्याधिकमूल्यंन कुर्वन्ति। एते अपि समाजघातकाः एव अर्थात् राष्ट्रघातकाः एव । एतादृशानां निग्रहणम् अपि चलति। परन्तु लञ्चा-उत्कोचदानादिमार्गैः निग्रहणात् मुक्ताः अपि एते भवन्ति इत्यपि दृष्टिपथम् आयाति। एतादृशानां प्रकरणानां पुनरपि प्रचालनं भवति । अत्र यः कः अपि प्रशासकीयः अधिकारी दोषी भवति तस्य निलंबनं ततश्च निष्कासनम् अपि चलति। एतदर्थं दीर्घः कालः व्यतीतः भवति। अतः सात्त्विकाः सदाचारिणः जनाः निराशतां गच्छन्ति, एतादृशे च भ्रष्टकार्ये रसहीनताम् एव प्रदर्शयन्ति। पुनश्च समाजकण्टकादीनां भयेन ग्रस्ताः अपि भवन्ति। भ्रष्टाः जनाः अद्य समाजविघातकानां साहाय्योन पुनरपि गर्वेण एव जीवन्ति इत्यपि दृश्यते। ततः किं करणीयम् इति प्रश्नः सज्जनान् सततं पीडयति इति अद्यतनीया समाजस्थितिः।

एतदर्थमपि जगजागृतिः इत्येव उपायः संसूचितः भवति। भ्रष्टाचारः वा भ्रष्टाकारः वा जनानां सहयोगेन नाशतां गमिष्यति। एकेन राष्ट्र भक्तकविना उक्तम् अस्ति -

जनानां सहयोगेन प्रतिक्षेत्रं समुन्नतम्। एतत् सुकथनं सत्यं जनयोगः सुरद्रुमः।।

जनानां सहयोग; एव अद्यतनीयः सुरद्रुमः अर्थात् कल्पद्रुमः । अयं कल्पद्रुमः कल्पितं इष्टं वा सर्वं यच्छति। अतः जनानां सहयोगः साधनीयः । अनेन एव प्रत्येकं क्षेत्रं समुन्नतिं गच्छति। अतः एवमपि कथितं विद्यते.......

सततं कुर्वन्तु सर्वे सहयोगं परस्परम्। सहयोगेन कर्माणि सद्यः सिध्यन्ति सर्वदा।।

अत्र सहयोग; समाजकण्टकादीनां, दुराचारीणां, भ्रष्टाचारे निमग्नानां अन्यायमार्गवलंबितानां दुष्प्रवृत्तिपराणां च जनानाम् अपेक्षितः नास्ति, समाजहितकारिणां, सदाचारिणां, भ्रष्टमार्गत्यक्तानां, न्यायमार्गावलंबितानां, सत्प्रवृत्तिपराणां च जनानां परस्परं सहयोगः अत्यावश्यकः अस्ति।

पुनश्च अत्र केचित् जना; एवमपि मन्यन्ते कथयन्ति च स्पष्टरूपेण - "समाजविघातकादीनां निर्मूलनं शासनेन एवं कर्तव्यम्" इति। एतदर्थमपि कविः कथयति -

सर्वकारो बिना योगं जनस्य किं करिष्यति? जनमूलः हि सर्वकारः तस्मात् जनमपेक्षते।।

जनानां सहयोगेन सर्वकारः सिद्धः भविष्यति। तथा एव अस्माकं संविधानम् अपेक्षते। एतदर्थम् एव मतदानपद्धतिः। मतदानपद्धतिम् अनुसृत्य एव निर्वाचनं भवति। निर्वाचिताः प्रतिनिधय एव शासनस्य निर्मितिमपि मतदानेन एवं कुर्वन्ति। पर्यायेण जनताजनार्दनस्य एव गणराज्यशासनं प्रचलति। अतः जनमूलः एव सर्वकारः इति वचनम् अपि यथार्थतां गच्छति।

अन्ततः जनानामेव सर्वतः उत्तरदायित्वं भवति। स्वस्वक्षेत्रे निर्वाचिताः प्रतिनिधयः मतदातृणाम् अपेक्षाम् अनुसृत्य कार्यं कर्वाणाः भवन्तु इति दक्षता तत्परता व जनैः एव पालनीया। जनहितकारकाः एव निर्वाचितप्रतिनिधयः समाचरन्तु इत्यपि सावधानेन निरीक्षणीयं सततम् । रचनात्मककार्याणि एतेषां पुरतः मण्डनीयानि, पुरस्कृतानि च कारणीयानि, एते च तथा कार्यनिर्वहणं, कुर्वन्तु इत्यपि सावधानेन अवधानं देयम् तथा उक्तमपि विद्यते -

रचनात्मककार्येण राष्ट्रं याति समुन्नतिम्। कुर्वन्तु सर्वं नित्यं कार्यं देशस्य सर्वदा।।

- हजरत जंगलीपीर दर्गाह,
मुम्बई - 400018

राजनीति की धारा में साहित्य के मुसाफिर आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री

❑ डॉ० प्रदीप दीक्षित

मुसाफिर किसी भी यात्रा में हो, किसी भी पड़ाव पर हो वह सदैव होता एक मुसाफिर ही है, और उसके मानस में 'मंजिल' ही होती है। आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री जी भी एक ऐसे मुसाफिर हैं जिनका लक्ष्य सदैव आध्यात्म और साहित्य है। व्यक्ति जिस पथ पर चलता है वह उसका शरीर मात्र होता है - आत्मा भी साथ हो आवश्यक नहीं। किसी भी आध्यात्मिक पुरुष का वास्तविक व्यक्तित्व तो उसकी आत्मा में मुखरित रहता है।

शास्त्री जी के व्यक्तित्व के सन्दर्भ में प्रायः प्रश्न उठता है कि उन जैसे आध्यात्मिक प्रकृति के व्यक्ति का राजनीति से कैसे संबंध बना? यह विचार मंथन स्वयं शास्त्री जी ने भी किया है। अपनी कृति "सुधियाँ इस चन्दन के वन की" के प्रथम अध्याय "खण्ड-खण्ड फिर भी अखण्ड....." में वे स्वयं लिखते हैं "१९७७ में, मैं सक्रिय राजनीति में चला आया और भगवदिच्छा से एम०एल०ए० बन गया। मेरी प्रार्थना पर गुरु जी ने आशीर्वाद तो दिया किन्तु राजनीति की फिसलनों से बचने का निर्देश भी दिया। इस बात पर उनका बहुत जोर था कि केवल पार्टी के लोगों का ही नहीं, सबका हित हो। उन्होंने यह भी सिखाया था कि "स्व चारित्र्य के पालन से लोगों का जितना भला होता है, उतना अन्य प्रकार से नहीं।"

अपने गुरु स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी के यह विचार शास्त्री जी की राजनीति को एक 'साधना' का स्तर प्रदान करते हैं।

अपने राजनैतिक और आध्यात्मिक जीवन के अन्तर्विरोधों के प्रति शास्त्री जी सदैव चेतन और सजग रहे हैं। महात्मा बुद्ध ने जब अपना प्रथम संबोधन एक चरवाहे को दिया था तो उसे चेतना का महत्व समझाया था। चेतना ही वह स्थिति है जो मनुष्य को विभिन्न मोहपाशों से दूर रखती है। अपने राजनैतिक जीवन को लेकर शास्त्री जी को जब भी उनके गुरुवर ने विचलित देखा, उन्हें 'सत्काम' के लिए प्रेरित किया। गुरु को अपने शिष्य की आत्मिक स्थिति का सही ज्ञान हो तभी वह उसे सही मार्ग पर प्रेरित कर सकता है। एक अन्य अवसर पर गुरु जी ने शास्त्री जी को संबोधित पत्र में लिखा था - 'यदि सच्चा मनुष्य राजनीति में पड़ेगा तो उसको बाद में वैराग्य अवश्य होगा। भले भगवान भूल जायें परन्तु नेताओं के दांव पेच इतने दुष्ट होंगे कि वे व्यवहार के प्रति ग्लानि उत्पन्न कराए बिना नहीं रहेंगे। अच्छा है आप उनका अनुभव कर रहे हैं। बिना भोग के राजनैतिक तीक्ष्णता का पता नहीं चलता। जो व्यक्ति राजनैतिक मिज़ाज का न हो, उसके लिए राजनीति बहुत भारी पड़ती है। कालान्तर में या तो वह राजनीति छोड़ ही देगा या मूल्यों पर अधिष्ठित राजनीति के लिए आन्तरिक कष्ट झेलता रहेगा।

अपने गुरु स्वामी अखण्डानन्द जी के कहे वाक्य शास्त्री जी के चिन्तन में सदैव झलकते रहते हैं। दिनांक २७ नवम्बर २००० को एक अखबार को दिये गये साक्षात्कार में वे कहते हैं कि 'राजनीति को शुद्ध बनाने के लिए अच्छे लोगों को होम होना ही पड़ेगा।" यह होम व्यक्ति का नहीं उस सर्जना शक्ति का है जिसकी दिशा पहले शास्त्री

जी के लिए आध्यात्म और साहित्य थी और अब राजनीति बनती जा रही है। शास्त्री जी की बदलती सर्जना शक्ति के प्रति उनके सहयोगी, साथी साहित्यिक शुभचिन्तक भी चिन्तित हैं, तभी तो चिर स्मृति साहित्यकार नरेश मेहता ने कुछ दिनों पूर्व भोपाल के कार्यक्रम में शास्त्री जी से कहा था - 'आप जितनी जल्दी सत्ता की विपत्ति से मुक्त हो जायें, उतना अच्छा है।"

नरेश मेहता जी तो अपनी बात कह कर दैहिक जीवन से मुक्त हो गये लेकिन शास्त्री जी की सर्जना शक्ति राजनीति की धारा में आये दिग्भ्रम को निश्चित रूप से समाप्त करके उसे एक दिशा प्रदान करेंगी - ऐसा सभी का विश्वास है। जीवन में अपनी प्रेरक शक्ति के रूप में शास्त्री जी एक श्लोक को अपनी मूल पूँजी मानते हैं।

अधमाः धनमिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमः । उत्तमाः मानमिच्छन्ति मानो ही महतां धनं।।

'प्रो० शशांक' के नाम से भी लेखनकार्य करने वाले आचार्य शास्त्री जी स्वयं के बारे में कहते हैं कि 'मैं वाक्शूर और लेखन भीरू' रहा हूँ। शास्त्री जी का मानना है कि उनके लेखन की 'गति' में अज्ञेय जी का अप्रतिम योगदान रहा है। शास्त्री जी कहते हैं कि अज्ञेय जी ने उन्हें न केवल लेखन बल्कि राजनीति के लिए भी प्रेरित किया। अपने संस्मरण 'आलोक छुआ अपनापन' में शास्त्री जी लिखते हैं कि "जून ७७ में, मैं जब एम०एल०ए० चुना गया, मेरे अधिकतर मित्रों ने समर्थन नहीं किया। लेकिन अज्ञेय जी ने कहा कि जनता के लोकतांत्रिक अधिकारों की रक्षा के प्रयास के कारण यदि आपकी साहित्यिक गतिविधि को कुछ क्षति भी हो तो उसे सहना चाहिए।"

कश्मीर, काशी और कलकत्ता की माटी में पल्लवित आचार्य जी आध्यात्मिक साहित्यिक यात्रा को वे स्वयं ब्रह्मीभूत स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी की कृपा मानते हैं।

आचार्य जी वर्तमान परिदृश्य के लिए एक खुली मानसिकता से ओत-प्रोत हैं। वे परम्परावादी भी हैं। और आधुनिकता को गैर जरूरी भी नहीं मानते। आज के विकासोन्मुखी परिवेश के लिए आवश्यक है एक स्पष्ट 'विजन'। परम्परा और आधुनिकता जैसे परस्पर विरोधी धारणाओं के सन्दर्भ में आचार्य जी ने अपनी कृति 'तुलसी के हिय हेरि' की भूमिका 'विवृति' में कुछ इस प्रकार से लिखा है - आधुनिक चुनौतियों को स्वीकारने और उनके योग्य प्रत्युत्तर देने के लिए स्वाधीन भारत के विचारक, कवि, मनीषी सम्पूर्ण जगत के श्रेष्ठ विचारों, भावों तथा विविध क्षेत्रों में किये गये नये-नये प्रयोगों से परिचित हों, अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप उन्हें एक बड़ी सीमा तक अपनायें, यह तो काम्य है किन्तु इस प्रक्रिया में वे आत्मविस्मृत अनुकरणकर्ता मात्र हो जायें, यह इष्ट नहीं है। मेरी यह मान्यता है कि व्यक्तियों की ही तरह समाज और देश भी यदि अपनी आधारभूत विशेषताओं को सुरक्षित रखकर आधुनिकता को अपनायें तभी उसमें कुछ सर्जनात्मक योग दे सकते हैं। ऐसा कर पाने के लिए अपनी संस्कृति के मूलभूत तत्वों के साथ समरस होना अनिवार्य है।

आचार्य जी का मानना है कि परम्पराओं को एकाएक खारिज नहीं किया जा सकता और आज के सन्दर्भ में विशेष आवश्यकता इस बात की भी है कि प्राचीन परम्पराओं के उन्नायकों की वाणी का भी अवगहन किया जाए। इसी सन्दर्भ में वे तुलसीदास की सामयिकता को भी स्वीकारते हैं।

परम्परा के प्रति अपनी निष्ठा को व्यक्त करते हुए आचार्य जी ने आगे लिखा है -

'सवाल उठता है, क्या सचमुच पूरी परम्परा खारिज की जा सकती है? दूसरी तरफ परम्परा के नाम पर 'परंपरावाद' की डुगडुगी पीटने वालों की भी कभी नहीं है। जहाँ परम्परा समाज में अन्तर्निहित उन आचारों और सिद्धान्तों की समष्टिगत संज्ञा है, जिन्होंने अपने अटूट सिलसिले द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी भिन्न-भिन्न परिस्थितियों और नये-नये जातीय अनुभवों में भी समाज को अपनी अस्मिता बनाये रखने की क्षमता प्रदान की है और इसी क्रम में जो बार-बार व्याख्यायित एवं मूल्यांकित होती हुई अपने स्वरूप को खोये बिना रूपान्तरित-विकसित होती चलती है, वहाँ परम्परावाद अतीत के आचारों और विश्वासों को अपरिवर्तनीय मानकर उनका गौरवगान करता है, उन्हें तद्वत् सुरक्षित रखकर वह मांग करता है कि समाज को आज भी वही, वैसे ही करना चाहिए, जो जैसे अतीत में किया जाता था। स्पष्ट है कि परम्परावाद आधुनिकता की चुनौती के उत्तर में अपना जड़-कवच ही सामने कर सकता है, जिसके धुर्रे उड़ा देना आधुनिकता के लिए सहज है। क्या परम्परा को भी आधुनिकता इसी प्रकार छिन्न-भिन्न कर सकती है और क्या उसे शुभ माना जा सकता है? फिर एक बात और है । चुनौती क्या आधुनिकता ही परम्परा को दे सकती है, परम्परा आधुनिकता को नहीं दे सकती? हवा में इन सवालों पर बहस करने की जगह आज के भारतीय संदर्भ में आधुनिकता के समक्ष तुलसीदास को रखकर विचार करने पर अधिक संगत निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकेगा।"

टिप्पणी - 'राजनीति की धारा में साहित्य के मुसाफिर आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री,' लेख, विभिन्न अवसरों पर उनसे की गयी बातचीत - (साक्षात्कार के रूप में) तथा उनकी कृतियों पर आधारित है। संदर्भित पुस्तकें हैं - तुलसी के हिय हेरि, भक्ति और शरणागति तथा सुधियाँ उस चन्दन के बन की - लेखक (सभी पुस्तकें) आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री । प्रकाशक लोकभारती इलाहाबाद तथा भारतीय साहित्य प्रकाशन मेरठ।

- **निदेशक उत्कर्ष अकादमी**
112/321, स्वरूपनगर, कानपुर

अग्निकाण्ड पीड़ितों की सहायता

कानपुर २७ मई। महाराजपुर थाना क्षेत्र के ग्राम ढोकरा में गत दिनों हुए अग्निकाण्ड में पीड़ित एक दर्जन परिवारों को मानस परिवार परिषद के अध्यक्ष संत प्रेमभूषण महाराज, मानस संगम के अध्यक्ष डा० बद्रीनारायण तिवारी, रमाकान्त मिश्रा, श्रीमती माया तिवारी, वशिष्ठ नारायण मिश्र, राम बहादुर सिंह आदि की उपस्थिति में एक-एक बोरा गेहूँ, आलू कपड़े आदि वितरित किए गये।

(दैनिक ''आज'' से)

मानस संगम देववाणी मम्मान

आत्म साक्षात्कार

❑ डॉ० कृष्णनारायण पाण्डेय
- उप निदेशक आकाशवाणी दिल्ली

[विश्वकवि तुलसीदास के जीवन पर आधारित संस्कृत भाषा में लघु उपन्यास 'गोस्वामी' लिखकर डॉ० कृष्णनारायण पाण्डेय ने साहित्य जगत को समृद्ध किया है। बीस से अधिक पुस्तकों के प्रणेता डॉ० पाण्डेय का विचार है कि 'पानीपत के दो युद्ध - खानवा, हल्दी घाटी तथा तालीकोटा के पाँच युद्धों की विभीषिका से ग्रस्त निराश भारत के प्रत्यक्ष दृष्टा लोकनायक तुलसी ने भक्तिधारा के माध्यम से भारतीय संस्कृति की रक्षा का अमोघ अस्त्र प्रदान किया है।" अपने उपन्यास में डॉ० पाण्डेय ने तुलसीदास के प्रारम्भिक जीवन से अन्तिम यात्रा तक की प्रमुख घटनाओं का संक्षिप्त विवरण दिया है। प्रस्तुत है 'गोस्वामी' उपन्यास का एक अंश प्रवुद्ध पाठकों के लिए।

- सम्पादक]

काशीतः चित्रकूटाय तुलसीदासस्य साधना यात्रा चित्रकूटस्य मंदाकिनी तटे रामघाट तीर्थे आश्रमरूपा संजाता। काशीस्थ संकटमोचन हनुमत् मंदिर वत चित्रकूट तुलसी निवासे सनातन वैदिक धर्मस्य दिनचर्यारम्भो जातः। प्रातःकाले मंदाकिनी नद्यां स्नानं मंदिरेषु दर्शनं वाल्मीकि रामायण स्वाध्यायः नाम जपनं सामूहिक संध्योपासनं भक्त युवकानाम् कृते आसन् प्राणायाम व्यायाम मल्ल विद्याभ्यासः संततुलसी सम्प्रेरित संरक्षित साधनाकार्यक्रमः तत्र तपस्या क्रम आसीत्।

श्रीराम सीता निवास कामदगिरि परिक्रमा समये एकदा तुलसीदासेन दृष्टम् अलौकिकम अति सुन्दर राजकुमारद्वयं अश्वारूढ़ धनुषबाण धारयन्तम् आखेटाय गच्छन्तम्। संत तुलसीदासो मुग्धः । दर्शनं कृतं परन्तु जिज्ञासा शान्तिः न जातः के इमे? मार्गदर्शक हनुमान् प्रकटितः रहस्य प्रकाशो जातः। अनूपरूप भूप शिरोमणिं रामचंद्रस्य दर्शनं प्राप्तं तुलसीदासेन परन्तु अभिज्ञानं न जातम्। पश्चात्तापः कृतः। हनुमता आश्वासनं प्रदत्तं पुनः प्रातः ईश्वर साक्षात्कारो भविष्यति। तुलसीदासः संतुष्टः प्रतीक्षारतः।

सं० १६०७ मौनी अमावस्या बुधवासरे ५३ वर्षीय संत तुलसीदासः प्रतीक्षारत आसीत् ईष्टदेव दर्शनाय । चंदन घर्षणं क्रियते स्म तुलसीदासेन तदैव भगवान् श्री रामः प्रगटितः। बाबा श्री चंदनं दीयताम् । प्रभुवार्णी श्रुत्वा तुलसीदासः किं कर्तव्य विमूढ स्थिरो जातः प्रभुदर्शने । अन्यत सर्वं विस्मृतम्।

चित्र कूटस्य घट्टे संतानां समागमे। चंदनं घर्षति तुलसी तिलकं करोति रघुवीरः।।

इति शुकरूपे हनुमत् संदेशेन संत तुलसीदासेन प्रभुसाक्षात्कार ज्ञानं प्राप्तं सम्यक् रूपेण।

वानप्रस्थाश्रम वयसि संत तुलसीदासः साम्पृतं सिद्ध पुरुषः। तस्य दर्शनेन एव कामनापूर्तिः। बहुजन सम्मर्दन त्रस्त तुलसीदासेन गुहा वासः स्वीकृतः। श्री दरिया स्वामी आगतः दर्शनाय। तुलसीदासस्य दर्शनं विना न गमिष्यामि इति संकल्पं कृत्वा गुहाद्वारे स्थितः लघुशंकार्थ गमनाय तुलसीदासो निसृतः। दरिया स्वामिना दर्शनं कृतं कथितं च

लघुशंका समये भवन्तः बहिरागच्छन्ति किं वयं लघु शंकातः निम्नाधमः? दरिया स्वामी प्रश्नस्य उत्तर सत तुलसीदासेन स्वीकृतम् उच्च मंचे आसन् ग्रहणाय । संत तुलसीदासः चित्रकूटे प्रभुलीला दर्शनं करोति स्म दर्शनमंचतः उन्मुक्त नेत्रैः अंतः भावेन। जनता सिद्ध संतदर्शनेन संतुष्टासीत्।

पानीपतस्य द्वितीय युद्धे हेमू विक्रमादित्यस्य पराजयानन्तरं सं० १६१६ वि० १५५७ ई० ६३ वर्षीय संत तुलसीदासः यदा कामदगिरि निकटे निवसति स्म वृन्दावन मथुरा सण्डीला मेवाड़ स्थानेभ्यः संताः तत्र समागताः। भक्तकवि सूरदासः सूर सागर ग्रन्थेन सह समागतः। तुलसीदासेन पुस्तकं हृदय लग्नं कृतं, श्री कृष्णलीला गान सत्संगों जातः। भक्त मीराबाई प्रतिनिधि पं० सुखपालः समागतः चित्रकूटं पत्रेण सह। संत तुलसीदासेन उत्तरं प्रेषितम्-

यस्यप्रियो नहि सीता रामः (जाके प्रिय न राम वैदेही)
त्यज्यतां तं कोटि वैरिसम यद्यपि परम स्नेह युक्तः।।

युवक माधवः तुलसीदासस्य प्रतिभया प्रभावितः। सं० १६०९ वि० वर्षे चित्रकूटे सः प्रतिदिनं तुलसीदासाश्रमं गच्छति स्म। तस्य श्रद्धा भक्तिं दृष्ट्वा तुलसीदासेन ईशस्तुति गानाय निर्देशः प्रदत्तः । माधवेन मधुर कण्ठेन प्रस्तुतम्। तुलसीदासेन नव पदानि लिखित्वा दत्तम्। युवक माधवेन कण्ठाग्रं कृत्वा प्रस्तुतं द्वितीय दिने । इति पद रचना क्रमेण सं० १६२८ वर्षे संगृहीत पदैः राम गीतावली श्रीकृष्ण गीताचली ग्रन्थ द्वयं विरचितम् । वानप्रस्थाश्रमी तुलसीदासस्य पट्टशिष्यत्वं प्राप्तम् अनेन युवकेन वेणी माधव दास नाम्ना।

७४ वर्षे वये तुलसीदासस्य प्रेरणा दत्ता हनुमता अयोध्या प्रवासाय। १७५१ ई० वर्षे प्रयाग कुम्भ मेला प्रचलित स्म। तत्र सत्संगे प्रयागतः काशी यात्रा मार्गे विन्ध्याचले विंध्येश्वरी अष्टभुजा काली दैवीत्रयस्य दर्शनं कृत्वा चुनारगढ़ राजा बन्धनमुक्तः कारितः संत तुलसीदासेन।

- मानवेश्वर मंदिरम् राजाजीपुरम्,
लखनऊ - २२६०१७

हमारा ध्यान इस ओर जाता ही नहीं कि हजारों जिह्वा का स्वाद हमारे शब्दों, सम्बोधनों, संस्कारों और जीवन को बर्बाद कर देगा। वात्सल्यमय, ममतामय और संवेदनशील ''माँ'' शब्द की जगह ''मम्मी' और पिता की जगह ''पापा'' शब्द सम्बोधन से हमें चोट लगना बंद हो गया हर आम और खास आदमी इसकी निन्दा तो करता है, लेकिन इसका निषेध कोई नहीं करता। देश के साधु संत भी स्वयं के लिए ''सेन्ट' सम्बोधन से गौरवान्वित होने लगे। अधिकांश संतों का ध्यान अब आध्यात्म, ज्ञान और भक्तिमय दिव्यता पर नहीं साधनों, सुविधाओं और भौतिक भव्यता पर लगा हुआ दिखाई देता है। वे अपन् शिष्यों भक्तों के अभारतीय सम्बोधनों को सुनकर उन्हें रोकते-टोकते भी नहीं। वहाँ भी ''शुभम् - स्वागतम्'' शब्दों को अब ''टाटा'' ''वेलकम'' शब्दों ने धकिया दिया है। संतों के आश्रमों के भी इस रोग की चपेट में आ जाने से भारतीय आत्मसत्ता और अस्मिता बहुत ही आहत हो रही है। उसे उसका अंतिम कवच अब टूटता दिखाई दे रहा है।

- प्रस्तुति : सुभाष चन्द्र एडवोकेट

एक अद्भुत संगम

❑ डॉ० राजमल बोरा

[आज हम जिस आजादी का सुख भोग रहे हैं उसके लिए कभी सोचते भी नहीं कि इस सुख को लाने के लिए कितनी कुर्बानियाँ दी गयी हैं। भारत के अनगिनत नवजवानों के फाँसी के तख्ते पर झूलकर, सीने पर गोलियाँ खाकर भारत को गुलामी के चंगुल से मुक्त कराया है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि स्वतंत्रता संग्राम का जो इतिहास पढ़ाया जाता है उसमें क्रान्तिकारियों का बहुत कम जिक्र किया गया है और इसके लिए सरकार पूरी तरह से दोषी है। आज नयी पीढ़ी के समक्ष अन्य चुनौतियों के साथ-साथ सबसे बड़ी चुनौती देश की अखण्डता को सुरक्षित रखने की है। इस चुनौती का मुकाबला तभी सम्भव है जब उन अमर शहीदों की गाथा बताई जाय जिन्होंने माता-पिता, घर-द्वार, धन-दौलत तथा अपने जीवन की चिन्ता न करके केवल देश की आजादी और उसकी एकता तथा अखण्डता की रक्षा करना ही अपना एकमात्र लक्ष्य समझा । आजादी के संघर्ष के समय इन क्रान्तिकारियों को अपनी गतिविधियों को गोपनीय ढंग से संचालित करना होता था। सुधी पाठकों के लिए एक लेख प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें हिन्दी साहित्य के जगमगाते नक्षत्र आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं क्रान्तिकारी शिरोमणि चन्द्रशेखर आजाद की अद्भुत भेंट का जिक्र है जिसे पढ़कर पाठक निश्चित रूप से रोमांचित होंगे। यह लेख हम 'चिन्तामणि चिन्तक रामचन्द्र शुक्ल' से साभार उद्धृत कर रहे हैं। - सम्पादक]

क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद सन् १९३० में शुक्ल जी के घर पर, शुक्ल जी से मिले। दोनों में संवाद हुआ। ऐसे समय में मिले जब पुलिस उनका पीछा कर रही थी। दोनों में जो बातचीत हुई, वह शुक्ल जी के विचारों को समझने में उपयोगी है। शुक्ल जी गाँधी जी के विचारों से मतभेद रखते थे, यह इस संवाद से स्पष्ट होता है। इस संवाद के श्रोता और उस समय उपस्थित शुक्ल जी के पुत्र पं० गोकुलचन्द्र शुक्ल ने 'भारतमाता खेतों में' शीर्षक से संस्मरण लिखा है। वह उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत है -

'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (मेरे पिता) मितभाषी थे। विशेष प्रसंग आने पर ही वे मुँह खोलते थे। किसी व्यक्तित्व की विशेषता का वर्णन वे आकर्षक शैली में करते थे। अपनी किशोरावस्था की घटनाओं को भावमग्न होकर बताया करते थे। जब लोकमान्य तिलक से आकर्षित होकर उन्होंने तिलक दल बनाया और अंग्रेज अधिकारियों को परेशान करने का सुनियोजित जाल फैला दिया। साहित्य की ओर खींचने के लिए उन्हें प्रेमघन जी जैसा व्यक्तित्व कैसे प्राप्त हुआ और वे कैसे उनकी गतिविधियों की ओर खिंचते चले गये- इस कथा को वे प्रायः सुनाया करते थे। हम लोगों की किशोरावस्था यही सब सुनते हुए बीती।

बात उन दिनों की है। जब चन्द्रशेखर आजाद अपना फरार जीवन काशी में व्यतीत कर रहे थे। पुलिस पीछे पड़ी थी और वे कभी किसी मठ- मंदिर में, कभी किसी घर में दिन रात बिताकर उनसे लुका-छिपी खेल रहे थे। अन्य नवयुवकों की तरह मैंने भी उनसे सम्पर्क बना लिया था एक दिन मैं उन्हें लेकर रात ग्यारह बजे अपने घर गुरुधाम पहुँचा । शुक्ल जी के कमरे के बगल में मेरा कमरा था। मेरी पत्नी मायके गयी थी। सब लोग सो गये थे। केवल शुक्ल जी बिस्तर के ऊपर बैठे हुए गोद में तकिया रखकर शब्द सागर की प्रस्तावना लिख रहे थे। मैं आजाद को आगे करके उनके सामने खड़ा हुआ। उन्होंने सिर उठाया और कहा - 'कहिये' आजाद प्रणाम

करते हुए आगे झुके और धीरे से बोले - "मैं चन्द्रशेखर हूं - अब शुक्ल जी की मूँछें खिल उठीं। आँख चमकने लगीं। बोले - 'बैठिये" आजाद उन्हीं के पलंग पर बैठ गये। इसके बाद शुक्ल जी ने मुझसे कहा - 'कत्थे, एनके खाय-पियअ क इन्तजाम करा।" मेरे पीछे - पीछे मंगल (नौकर) आ गया था, उसने कहा, "सब इन्तजाम बा बाबू जी। चला कत्थे भइया।" शुक्ल जी ने आजाद से कहा । "जाइए" और आजाद मेरे साथ आ गये। पीछे से शुक्ल जी ने मंगल को पुकारा और कहा - "मंगल कोई आए तो कहना कोई बाहरी आदमी नहीं है। नहीं तो मेरे पास भेज देना। मंगल को रहस्य समझ में नहीं आया । मैंने बाद में समझा दिया। मेरे पड़ोस में एक दारोगा रहते थे। वे प्रायः हमारे यहाँ गपशप के लिए आया करते थे। दूसरे दिन प्रातः दस बजे वही दारोगा आये। आजाद मेरे कमरे में लेटे हुए थे। मैं बैठक में दो मित्रों से बात कर रहा था । दारोगा को देखकर थोड़ा सचेत हुआ, पर सहज रूप से उनसे भी बात करता रहा, क्योंकि वे तो प्रायः आते ही रहते थे। उन्होंने बताया कि थियेटर कंपनी उस दिन राजा हरिश्चन्द्र नाइट खेल रही हैं और 'पास' का प्रबंध हो गया है मैंने थियेटर का कार्यक्रम बना लिया। लेकिन अपने मन में सोचता रहा कि दारोगा का कोई विशेष प्रयोजन तो नहीं है। थोड़ी देर बाद शुक्ल जी के कमरे की ओर उन्हें प्रणाम करने गये। उन्हें देखकर शुक्ल जी की आँखे कुछ चमकीं और उनके प्रणाम करने पर वे गंभीरता से बोले - हूँ बैठिये ।" दारोगा ने कहा - "कत्थे जी से काम था। शुक्ल जी ने मेरी ओर देखा । मैंने बता दिया। वे मुस्कराए और दारोगा ने उत्तर दिया - सुना था, पेड़ों से ताड़ी निकालते हैं, उन्ही का नुकसान हुआ। शुक्ल जी ने गंभीरता से कहा - नुकसान तो औरों का भी हुआ। जड़े ऊपर आ गई हैं मिट्टी उबल गयी। दारोगा ने उत्तर दिया - 'ठीक कहते हैं पंडित जी।" पर उनकी मुद्रा से स्पष्ट था कि उन्होंने बात नहीं समझी। उन्होंने शुक्ल जी को प्रणाम किया, मुझसे हाथ मिलाया और चारों ओर कनक्खी देखते हुए चले गये। हम लोग बहुत देर तक अपने कमरे में बहस करते रहे कि शुक्ल जी दारोगा को टालने के लिए वृक्ष का प्रसंग लाए या कोई प्रतीक बोल रहे थे । किसी को किसी प्रकार का सन्देह न हो इसलिए मैं आजाद को घर से छोड़कर सहज भाव से थियेटर गया। उस रात मेरे घर से निकल कर एक मंदिर में जाने की योजना आजाद बना चुके थे। जाने के पूर्व वे शुक्ल जी को प्रणाम करने गये। उनके मन में अनेक प्रश्न घुमड़ रहे थे। शुक्ल जी अपनी आदत के अनुसार लिख रहे थे। आजाद पलंग के कोने पर बैठ गये। मैं माँ की चारपाई पर बैठा । उस दिन उन दोनों के बीच बहुत सी बातें हुईं इतने दशकों बाद कई बातें स्मृति से उतर गयीं। कुछ याद हैं । आजाद ने कहा - 'पंडित जी अब तो हम फांसी के तख्ते पर भारत माँ को ढूंढते हैं।' शुक्ल जी ने उत्तर दिया - बेटे, भारत माँ को खेतों में ढूँढो। विश्व आन्दोलन के मेल में हमारा स्वाधीनता आंदोलन होना चाहिए। किसानों का संगठन किये बिना आंदोलन सफल नहीं होगा।" आजाद ने हँसते हुए पूछा - 'और हिंसा को कहाँ रखते हैं गुरु जी?" शुक्ल जी बोले - "भीष्म भगवान नहीं हुए। लोकव्यापी अत्याचार के विरुद्ध शस्त्र उठाने वाले राम कृष्ण ही भगवान कहलाए । भगवान के नाम पर चलने वाले धर्म को राजनीति से अलग रखना चाहिए। आजाद ने कहा - 'इसी से मैंने क्रान्ति का रास्ता अपनाया है।" शुक्ल जी ने कहा - 'बहुत से लोग क्रान्ति के नाम पर गला फाड़ते हैं पर मानसिक दृष्टि से पुरखों की ही श्रेणी में हैं । तुम्हारे जैसे पाँच सौ भी हो जायें तो देश एक दिन में स्वतंत्र हो जाये।" आजाद ने कहा - 'अंग्रेज हमें कमजोर समझकर शर्ते रखता है। उसे वह सबक सिखाऊँगा कि वह अपने घर में भी चैन से न बैठ सके। शुक्ल जी ने कहा - "चोर का मुकाबला करने के लिए डकैत बनना होता है। अब तो छीनकर बाँटने वाली हालत आ गई है। कोठी वाले उनका साथ दे रहे हैं। इधर कांग्रेस से भी मिले हैं।" आजाद ने कहा - "गाँधी जी के पास हमने संदेश भेजे थे पर उन्हें हमारे रास्ते में विश्वास नहीं है।"



शुक्ल जी ने उत्तर दिया - "उनका भी रास्ता बदलेगा । आपकी और उनकी भावना का उद्गम एक है। सगम भी एक है।" आजाद ने कहा - उन्होंने बड़े - बड़े जमींदारों और व्यापारियों को छूट दे दी है।" शुक्ल जी ने कहा - बस यही एक कमजोर पक्ष हैं। अंग्रेजों ने अपनी नीति से महाजन जमींदार पैदा किये हैं। इन्हें छोड़िये । औसत जमींदार टैक्स आदि देने के बाद किसान की ही तरह हो जाता है। अपने संगठन में उन्हें भी लीजिये। किसानों के साथ वे भी विद्रोह करने के लिए तैयार बैठे हैं। बहुत जुल्म हुआ। अब केवल शक्ति का मार्ग रह गया है।" आजाद ने मन की व्यथा प्रकट की- दुःख तब होता है गुरु जी, जब हमारे देशवासी ही हमारी दृष्टि नहीं समझते। - शुक्ल जी बोले - "आप अपना काम कीजिये । आपके मानसिक स्तर पर पहुंचने के बाद भी वे समझेंगे" आजाद उठकर खडे हुए और कहा - "पंडित जी, मेरे रिवाल्वर की गोलियाँ कभी खत्म नहीं होंगी। आप मुझे हमेशा याद रहेंगे। चलूँ, प्रणाम।" शुक्ल जी की आँखे भींग गईं। वे बोले – अपने उद्देश्य में सफल होओ बेटे । यह संसार प्रेम करने के लिए है। पर कुछ मुट्ठी भर लोगों ने अधिकार हस्तगत करके हिंसा को अनिवार्य बना दिया। जाओ, संकट के समय यह घर तुम्हारा है।" मंगल को साथ लेकर मैं आधी रात को आजाद को पहुँचाने पैदल बुलानाला गया। सड़क सूनी थी। गोदौलिया पर एक परिचित मकान पर रुककर हमने चाय पी। चाय और पान की दुकानें बनारस में देर रात तक खुली रहती हैं। मैंने दुकानदार को आजाद का परिचय अपने साले के रूप में दिया। वह कुछ मुस्कराया। 'आजाद भी मुस्कराये। मुझे ऐसा आभास हुआ कि वे दोनों पूर्व परिचित हैं। आजाद देश की ऐसी निधि थे जिसे बहुमूल्य समझ कर बहुत से लोग चुपचाप उन्हें बचा रहे थे आजाद को पहुँचाकर मैं वापस आ गया। बहुत दिन पहले की यह घटनाएं हैं । शुक्ल जी आजाद को कभी नहीं भूल सके। उनकी शहादत की सूचना पाने पर वे प्रातः से रात तक एकदम मौन रहे । उस दिन दोनों वक्त भोजन नहीं किया। रात में हम लोग अपनी माँ की चारपाई पर बैठे यही चर्चा कर रहे थे शुक्ल जी बीच में एक वाक्य बोले 'देखना है अब गाँधीजी क्या करते हैं।" १९३० तक गाँधीजी ने जो रूप धारण किया उससे उन्हें आशा बंधी। आजाद के व्यक्तित्व को केन्द्र में रखकर उन्होंने दो कवितायें लिखी थीं। नागरी प्रचारिणी सभा की परिस्थिति उस समय अनुकूल नहीं थी। इसलिए उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सहायक मंत्री स्व० ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' को अपनी बत्तीस कविताओं का संग्रह लीडर प्रेस से प्रकाशित कराने के लिए दे दिया था। पता नहीं किसके संकेत पर मिश्र जी ने उसे प्रकाशित नहीं कराया और अपने घर की अलमारी में बन्द कर दिया। हम लोगों ने उनसे कई बार उसे वापस लौटाने को कहा, पर वह वापस नहीं मिला। शुक्ल जी कागज पर पेंसिल से लिखकर रचना सीधे प्रेस को देते थे। दूसरी प्रति नहीं होती थी। इससे उनकी बहुत सी रचनाएं इसी प्रकार दबी हुई पड़ी हैं। इस अप्रकाशित काव्य संग्रह में आजाद से संबंधित उक्त दो कविताएं भी हैं।"

शुक्ल जी क्षात्र-धर्म के समर्थक हैं। उनकी दृष्टि से - जनता के सम्पूर्ण जीवन को स्पर्श करने वाला क्षात्र-धर्म है। क्षात्र-धर्म के इसी व्यापकत्व के कारण हमारे मुख्य अवतार राम और कृष्ण क्षत्रिय हैं । क्षात्र धर्म एकान्तिक नहीं है। उसका सम्बन्ध लोकरक्षा से हैं।" अपनी मान्यता को उन्होंने राजनीतिक प्रवृत्तियों के साथ भी जोड़ा और इसी को अपनी साहित्यिक कृतियों में भी उजागर किया। चन्द्रशेखर आजाद में उन्होंने क्षात्र-वृत्ति को देख लिया था। उस वृत्ति को वे उचित दिशा देना चाहते थे।

- **'रत्नदीप' ५ मनीषानगर, केसर सिंह पुरा,**
औरंगाबाद (महाराष्ट्र) - ४३१००५

हिन्दी की पारिवारिक वेदना

❑ कुश चतुर्वेदी

आजादी के इन साढ़े पाँच दशकों में हिन्दी भी एक खिलौने की तरह इस्तेमाल हुई जिसका जब स्वार्थ हुआ हिन्दी भक्त बनकर सामने आया और भोले भाले हिन्दी वालों ने उसे भरपूर स्नेह दे डाला किन्तु जब वही व्यक्ति हिन्दी के लिए कुछ करने की स्थिति में आया तो चेहरा बदल गया। क्या राजनीति के क्षेत्र में हमने बार-बार ऐसा नहीं देखा? और तो और हिन्दी के नाम पर रोटी खाने वालों ने तथा प्रतिष्ठा बटोरने और मालायें पहनने वालों तक ने हिन्दी को मंचों तक सीमित रखा और अपनी देहरी में प्रवेश न करा सके। दुर्भाग्यवश मुझे ऐसे अनेक मूर्धन्य साहित्यकारों के सम्पर्क में आने का अवसर मिलता रहा है जिनके घर में प्रवेश करते ही 'आंग्ल संस्कृति' का एक छत्र राज्य दिखाई देता है। उनके घर के बच्चे अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में सगर्व पढ़ते हैं। अंग्रेजी के अखबार उनके 'ड्राइंगरूम' की शोभा बढ़ाते हैं और 'ममा' 'डैड' का मनमोहक सम्बोधन उनके बालकों के श्रीमुख से दिन भर मुखरित होते देखा जा सकता है।

जिस भाषा, जिस देश और जिस जाति में त्याग की भावना मर जाती है उसके दुर्दिनों के आगमन को कोई नहीं रोक सकता। इन पचास वर्षों में हिन्दी को हिन्दी वालों ने जिस तरह छला है। वह अक्षम्य है। सौदेबाजी करके कवि सम्मेलनों में जाना, तालियों की चाह में कविता लिखना, मंचीय मर्यादा का निरन्तर हनन क्या वह कड़ुवा सच नहीं है जिसने हिन्दी की साहित्यिक काव्यधारा को कुँठग्रस्त किया है। हिन्दी में लिख, पढ़, बोलकर अपनी पहचान बनाना, मोटी मोटी पुस्तकें लिखना, रायल्टी और पुरस्कारों के नाम पर ढेर सारी धन राशि एकत्र करके महान बन जाना ही हिन्दी की सेवा है ? क्या इन तथाकथित 'महान' बान्धवों का दायित्व नहीं कि हिन्दी को रोजी रोटी से जोड़ने के लिए संघर्ष को सहयोग दें, अपने परिवारों में हिन्दी माध्यम को ही प्रचलित करें ताकि हिन्दी की नयी पीढ़ियाँ उनसे प्रेरणा ग्रहण कर सकें। यह तथाकथित महान हिन्दी सेवी बिना पैसा लिए किसी श्रद्धाँजलि गोष्ठी में जाना भी पसन्द नहीं करते। हम हिन्दी वाले 'स्वार्थ' और 'लालच' के साथ-साथ उनकी भीरुता को भी अनदेखा नहीं कर रहे ?

आज हिन्दी कुछ बड़े नामधारी प्रकाशकों और लेखकों की दुरभि संधि के मध्य पिस रही है। 'जुगाड़' की संस्कृति ने हिन्दी के समर्थ और सक्षम साधकों को उपेक्षित करने का पाप किया है। इन जुगाड़ी लोगों का वर्चस्व अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं से लेकर इलैक्ट्रानिक मीडिया, विश्वविद्यालयों और पुरस्कार कमेटियों तक में पूरी तरह रहता है लौट फिर के सारी रेवड़िया आपस में बटती रहती हैं। चाहे साहित्यकारों को मिलने वाली सहायता हों, सम्मान हो अथवा कोई सेमिनार सब जगह अस्सी प्रतिशत से अधिक राजधानियों और महानगरों का वर्चस्व कायम रहता है। हिन्दी की क्षेत्रीय बोलियों की उपेक्षा आज प्रचलन में आता जा रहा है जो निःसंदेह भयावह संकेत हैं।

हिन्दी की वास्तविक शक्ति तो उसकी क्षेत्रीय बोलियाँ ही हैं । हिन्दी के नाम पर पिछले दशक में क्षेत्रीय बोलियों के कितने ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ, कितनों को पुरस्कार मिले हिन्दी समितियों में कितने लोग क्षेत्रीय बोलियों के रहे यदि इसका उत्तर किसी भी शासकीय अथवा अशासकीय संस्थान से मांगा जाये तो उत्तर नकारात्मक ही होगा। जिस खड़ी बोली को हम हिन्दी समझ रहे हैं वह तो अभी सत्तर प्रतिशत से अधिक हिन्दी भाषियों के "चौके" तक में नहीं पहुँच पायी। भाषाई औपचारिकता अन्तस की अभिव्यक्ति नहीं किया करती और खड़ी बोली भी हिन्दी की औपचारिक भाषा है जो पूरी तरह घरों में उस तरह प्रवेश नहीं कर पायी जिस तरह क्षेत्रीय बोलियों की गहरी पैठ है।

हिन्दी को गांवों, कस्बों से जोड़ना होगा, परिवारों के संस्कार हिन्दीमय बनानें होंगे। जो प्रयास भारतेन्दु युग में हिन्दी लेखन को गति प्रदान करने के लिए गये थे। आज हिन्दी को बचानें के लिए वही भागीरथ प्रयास की आवश्यकता है। स्वार्थ और चकाचौंध हमें कर्तव्य में च्युत करते हैं। आज हिन्दी ऐसे लोगों को निहार रही है जो हिन्दी से लेनें नहीं अपितु निस्वार्थ हो कुछ देने आयें। जब तक हमारा आंग्ल मोह भंग नहीं होता तब तक न तो हिन्दी जीविका का पर्याय बन सकती है और न ही उसे अपेक्षित सम्मान मिल सकता है।

हिन्दी को अब सामान्य जन ही बचा सकते हैं विशिष्ट नहीं। जय हिन्दी। जय नागरी।

३, रंगरेजन टोला, छिपैटी इटावा

भारत की माटी सुन्दरता की खान है।

❑ सतीश आर्य

अपने इस भारत की माटी सुन्दरता की खान है।

केशर की क्यारी से महके काश्मीर की घाटी,
पूरब से पश्चिम तक इसकी चंदन सी है माटी,
आंगन-आंगन नेह बांटना इसकी यह परिपाटी,

आन मान हित जौहर करता देखो राजस्थान है!

इसकी अपनी रंग-बिरंगी अनुपम है फुलवारी,
बड़ी साध्वी होती अपनी इस माटी की नारी,
देखो अति सुन्दर लगती, छेड़ो तो चिनगारी,

यहाँ धाय ने भी अपना सुत कर डाला बलिदान है!

मस्तक पर है मुकुट धरा के, चूनर धानी - धानी
झांसी की प्राचीर कह रही अपनी अमिट कहानी,
'चमक उठी थी सन् सत्तावन में तलवार पुरानी"

गाँव-गांव में बुन्देलों का गूँज रहा यशगान है!

यहाँ कंत के साथ भटकती कानन-कानन रानी,
'आंचल में है दूध और आँखों में इसके पानी',
राजमहल से अधिक यहाँ लगती है कुटी सुहानी,

पटरानी भी यहाँ झोपड़ी का बनती मेहमान है!

यहाँ राम योगी होकर भी संग में रखते सायक,
धारण करता चक्र सुदर्शन गीता का भी गायक,
सदा रहा यह जगद्‌गुरु, सम्पूर्ण विश्व का नायक,
एकलव्य वल्कलधारी भी रखता तीर - कमान है!
थिरक - थिरक कर नर्तन करतीं नदियाँ दे दे ताली,
प्राणों को सम्मोहित करती वसुधा की हरियाली,
पावस हो या हो वसंत, सबकी है छटा निराली,

हिमगिरि का उन्नत ललाट रखता सबका अभिमान है!

यहाँ उषा सिन्दूर लुटाती, रात आंजती काजल,
विरही के आँसू पर भरते हैं सावन के बादल,
हर मनचंगा की कठौत में भर आता गंगाजल,

यहाँ भूप नंगा होकर भी करता रहता दान है !

भोजपुरी, ब्रज औ मिथिला की मिसिरी-सी है बानी,
अवधी तो हर कंठ बसी है गाता प्राणी - प्राणी,
बंगला की मिठास अपनी है, हिन्दी सबकी रानी,

कन्नड़, मलयालम्, गुजराती, सबकी अपनी शान है!

सूखी रोटी खाकर भी हम यहाँ उगाते हीरा,
गेह - गेह में सबद बांचता नानक और कबीरा,
शूली ऊपर सेज बिछाती यहाँ कृष्ण की मीरा,

यहाँ श्याम का मूरत कुर्बान हुआ रसखान है।

धीरे-धीरे अन्धकार जब अपना पाँव पसारे,
दूर नदी के पार द्वार पर कोई दीपक बारे,
बड़ी दूर तक दृष्टि गड़ाकर सजनी पंथ निहारे,

कितना नेह भरा आंखों में, किसको क्या अनुमान है !

मड़ई से जब उठे धुआँ, अम्बर को जाकर भेंटे ,
पंछी लौट नीड़ में आयें, मछुआ जाल समेटे ,
थका हुआ सूरज बेचारा नदी किनारे लेटे ,

ऐसे में हैं शंख गूंजते, होता मधुरिम गान है!

जिसने किया आक्रमण इस पर बेटी ब्याह गया है,
चन्द्रगुप्त का पौरुष अब भी लगता नया नया है,
बौद्धधर्म संदेश लुटाता जिसमें भरी दया है,

होरी लोरी, कजरी के स्वर छूते सबके प्राण हैं।

- डी०ए०वी०इण्टर कालेज, संचार बिहार (आईटीआई)
मकनापुर - गोंडा (उ०प्र०) २७१३०८

सोने वाला कलि है, निद्रा से उठने वाला द्वापर, उठकर खड़ा हो जाने वाला त्रेता और श्रम करने वाला (कर्मरत व्यक्ति) कृतयुग बन जाता है - अतः श्रम करते रहो (कर्ममय बने रहो)। श्रमशील व्यक्ति ही मधु (जीवन में रस या मधुरता) पाता है, वही सुस्वादु फल का आस्वाद लेता है। सूर्य के श्रम को देखो जो कभी आलस्य नहीं करता - अतः चरैवेति, चरैवेति।

प्रस्तुति : हरिहर नाथ त्रिपाठी (एतरेय ब्राह्मण ७/१५ 'चरैनेति' से)



संस्कृत भाषा राष्ट्रीय एकता की प्रतीक है

–डॉ0 अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव
सम्पादक – 'तुलसी मानस भारती'

राजनीति के पाखण्ड प्रपञ्च से दूर, राष्ट्र के प्रति निष्ठावान विचारक स्वाधीनता प्राप्ति के समय से ही राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने और इसके लिए संस्कृत भाषा का सहारा लेने पर जोर देते रहे है किन्तु राजनेता हमेशा ही उनके विचार को पण्डिताऊ प्रतिक्रिया कहकर अनसुना करते रहे हैं। भारत के राजनयिक राष्ट्र की प्रत्येक समस्या का, चाहे वह भाषाई हो, सांस्कृतिक हो अथवा विधि व्यवस्था से संबन्धित हो, राजनीतिक हल खोजने-अपनाने के आदी हो चुके हैं। वे इस बात को स्वीकार ही नहीं करते कि राष्ट्रीय एकता में उत्पन्न दरारों को संस्कृत भाषा के सहारे बड़ी आसानी से पाटा जा सकता है उज्जयिनी में आयोजित कालिदास समारोह के उद्घाटन भाषण में राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि संस्कृत भाषा भारत की राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है और उसके अध्ययन-अध्यापन, प्रचार प्रसार के लिए सुगठित प्रयास किये जाना चाहिए। अनेक अंग्रेजीपरस्त व्यक्तियों द्वारा आरोप लगाया जाता है कि संस्कृत में आधुनिकतम विषयों की अभिव्यक्ति के अनुरूप शब्दावली का अभाव है जबकि राष्ट्रपति नारायणन का कहना है कि संस्कृत भाषा विज्ञान के वर्तमान युग मे सर्वथा प्रासंगिक है और वह सूचना तथा अंकीय प्रौद्योगिकी एवं कम्प्यूटर के लिए पूर्ण रुप से उपयुक्त है।

देश के शीर्ष नेताओं को याद ही नहीं होगा कि उन्हीं के निर्णय के अनुसार वर्ष 2000 को संस्कृत वर्ष के रुप में मनाया जा रहा है। पूरा वर्ष बीत चुका है किंतु संस्कृत प्रचार-प्रसार-उन्नयन के लिए शासन स्तर पर एक भी निर्णय नही लिया गया । पाठशालाओं और महाविद्यालयों में संस्कृत के अध्यापकों की नियुक्ति में प्रायः उदासीनता बरती जाती है। इस प्रसंग में एक शुभ समाचार अवश्य है कि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद के निदेशक प्रो. जे. एस. राजपूत द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार भारतीय संस्कृति, दर्शन और जीवन-मूल्यों का शालेय शिक्षा में समावेश करने के लिए परिषद में पाठ्यक्रम का नया ढाँचा तैयार किया है।मात्र इतने से ही भारतीय मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठापना का उद्देश्य पूरा नही हो सकता । आजकल पाठ्य-पुस्तकों के विद्वान लेखकों ने किसी भी विषय पर कुछ भी लिखने में उदाहरणीय कौशल अर्जित कर लिया है। दो माह पहले ही गुजरात राज्य सरकार को अपने यहाँ की पाठ्य-पुस्तकों से भगवान महावीर पर लिखे गये एक पाठ को निकालना पड़ा है। भारतीय दर्शन, संस्कृति और जीवन-मूल्यों पर इन विषयों के प्रतिष्ठित विद्वान लेखकों से ही पाठ लिखाये जाना चाहिए अन्यथा देवप्रतिमा का निर्माण करते-करते मर्कट की मूर्ति बन जाने का खतरा बना रहेगा।

वैदेशिक विचारों से प्रभावित एक वर्ग ने भारतीय दर्शन और संस्कृत पर प्रतिक्रियावादी होने का जो आरोप मढ़ दिया है उसका सटीक उत्तर दिया जाना भी आवश्यक है। मानव जाति के भौतिक और आध्यत्मिक उन्नयन के लिए संस्कृत भाषा, भारतीय दर्शन और संस्कृति ने जो रास्ता पाटा था उसके समानान्तर कोई दूसरी पगडंडी आज तक नहीं खोजी जा सकी। पश्चिम के जिन विद्वानों ने इसका सम्यक् अध्ययन किया है वे सभी वैचारिक दृष्टि से भारतीय बन गये हैं। मैक्समूलर और आर्थर एवलौन वेदों तथा भारतीय दर्शन से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने इसके प्रचार-प्रसार में ही स्वयं को समर्पित कर दिया था।

राष्ट्रपति के. आर. नारायणन के विचारों को मूर्तिरुप देने के लिए केन्द्र/राज्य सरकारों को शीघ्र ही प्रभावी कदम उठाना चाहिए। राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने के लिए संस्कृत भाषा का लाभ उठाने में तथा भारतीय दर्शन और संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठापित करने में जितना विलम्ब होता जायेगा राष्ट्र की प्रगति की रफ्तार उतनी ही धीमी पड़ती जायेगी।

353, रचना नगर, भोपाल

मेरी दृष्टि में महाकवि रज्जब

— डॉ राम किशन गुप्त

संकल्प में दृढ़ता हो तो इन्सान क्या नहीं कर सकता ? उसके उन्नति के मार्ग पर किसी भी प्रकार की विघ्न-बाधा आड़े नहीं आती। ऐसे ही दृढ़ संकल्प वाले हैं इस लेख के लेखक डॉ० रामकिशन गुप्त जिन्होंने नेत्रहीन होते हुए भी महाकवि रज्जब पर शोध करके पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्ति की ।

— सम्पादक

महाकवि रज्जब का तुलसीदास की तरह ही एक ग्रन्थ पाया जाता है जिसमें भक्ति व गुरु के प्रतिनिष्ठा व संसार से मुक्ति होने का माधन बताया गया है। जिस प्रकार से मर्यादा पुरुषोतम राम ने गुरू वशिष्ठ की भक्ति की थी इसी प्रकार मे रज्जब जी ने अपने गुरू के प्रति सच्चे भावनाओं का प्रदर्शन किया।

एक बार दादू अपने शिष्यों के साथ यात्रा कर रहे थे। यात्रा करते समय उन्हे एक नदी मिली। नदी में बड़ा ही कीचड़ था उस कीचड़ को देखकर रज्जब जी उस कीचड़ में स्वयं ही लेट जाते है और वह अपने गुरू से प्रार्थना करते हैं कि हमारे शरीर में अपने चरणों को रखकर इस कीचड़ को पार कर जायें। रज्जब जी के विशेष प्रार्थना करने पर उनके गुरू दादू का ऐसा ही करके उस कीचड़ को पार करते हुए कहते हैं —

"रज्जब तू अति धन्य है, गुरू भक्ति में लीन, इस प्रकार कर्तव्य कर, जग को शिक्षा दीन।।"

ऐसा कहकर दादू जी ने रज्जब जी के सिर पर अपना हाथ रख दिया। और अपने अन्य शिष्यों की ओर देखकर यह कहा :-

"गुरू दादू का हाथ सिर, हिरदय त्रिभुवन नाथ। रज्जब उरिए कौन सौ, मिल्या तन्हाई साथ।।"

इस प्रकार रज्जब जी के भगवत भक्ति व गुरू भक्ति के विशेष लेख पाये जाते हैं। जिस प्रकार से मर्यादा पुरुषोतम ने अपने छोटे भाई भरत के प्रति स्नेह दिखाया था। वह राज्य को छोड़कर वन में गए थे। इसी प्रकार से रज्जब जी एक बार अपनी बारात लेकर जा रहे थे। वहां पर उनकी भेंट महाराज दादू जी से हुई र[illegible]ब जी ने दादू जी को प्रणाम किया । तब दादू जी ने उन्हें सम्बोधित करते हुये कहा :-

" रज्जब तै गज्जब किया, सिर पैबाध्यां मौर । आया था हरि भजन को, किया नरक को ठौर" ।।

इस प्रकार गुरू के वचनों को सुनकर बारात का साथ छोड़कर महाराज दादू के पास सदैव वह दूल्हा वेष में रहे। इसी लिये महात्मा राम चरन दास जी ने लिखा है :-

"दादू जैसा गुरू मिलौ, सिख रज्जब सा जाण। एक सबद मे अधरया, रही न खैचा ताण ।।
रज्जब को दादू दिया, एक सबद में जान। रामचरन सब छाड़ि के हो गया गुरू समान ।।"
"गुरू के सबद लिया विवाह संग त्यागे है, पायो नर देह प्रभु सेवा काज साज यह ।
ताको भूलि गयो मठ विषय रस लाग्यो है, मोड़ खेलि अरयो तन मन धन बारयो।
संत शीलू वृत्त धारयों मन मारयों काम धांगणों है, भक्ति मौज दीन्ही गुरू दादू दया कीनी उर।
लाय प्रीति लीन्हो माथ बड़ो भाग्य जाग्यो है।।

इस प्रकार रज्जब जी की अनेक दोहा व अरिल छन्द मे रचनाए है। दादू जी के 152 शिष्यों में प्रमुख स्थान रज्जब जी का है या तो दादू के शिष्य बखना जी सुन्दर दास आदि बहुत से शिष्य थे। रज्जब जी का गुरू के प्रति स्नेह था इनकी भक्ति को देखकर कुछ दादू के शिष्य भी रज्जब जी से ईर्ष्या करने लगे। वह दादू के प्रति मन में अत्यंत कुंठा का भाव रखते हुए अपमानित करने का प्रयत्न करते रहते थे। रज्जब जी यह जानने के बाद भी अपने गुरू भाइयों के प्रति घृणा का भाव नहीं रखते थे। वह सभी मनुष्यों की सेवा ईश्वर का भाव का समझकर करते थे। एक दिन रज्जब जी नारायणे में थे। तब दादू के शिष्य बखना जी के घर मिलने को गए। रज्जब जी उस समय

अनुमानतः 40 वर्ष के थे । तथा भले आदमी मालूम पड़ते थे । बखना जी की स्त्री ने उनको देखकर उनको अपने पति से कहा कि यह भी दादू की शिष्य है जिनकी पोशाक ही इतनी कीमती और सुन्दर है तो इनका वैभव कैस होगा । और एक तुम भी दादू जी के शिष्य हो कि घर में खाने तक को अन्न नही है । इस प्रकार बखना जी ने अपनी पत्नी के उत्तर में यह साखी पढ़ी :-

"रज्जब जी को यह सम्पदा गुरू दादू जी को दीन्ही आय । बखना जी यह आपदा चरणों से परताताप । ।"

रज्जब जी इस पर खूब हंसे तथा बखनाजी की समपत्ति में अतुल वृद्धि हुई रज्जब अत्यंत मेधावी तथा प्रतिभा सम्पन्न महात्मा थे । वह किसी जिज्ञासु के प्रश्न का अविलम्ब उत्तर देने में अपने गुरू दादू दयाल से भी अधिक पटु थे । एक दुरसरा नामक चारण था । जो कविता के बल पर देश जीतता हुआ आम्बेर (राजस्थान) आया जहां दादू के पास रज्जब भी थे । उनके पास आने पर उन्होंने यह दोहा पढ़ा ।

" बावन अक्षर सप्त स्वर, कण्ड भाषा छत्तीस, इसके ऊपर जौ कथै, तो जोनो कवि ईश ।"

रज्जब जी ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया :-

" बावन अक्षर सप्त स्वर, कण्ड भाषा छत्तीस, इसके ऊपर उर भजन, अण अक्षर जगदीश । ।

रज्जब जी की संपूर्ण दादू पंथी साधु समाज में नवल दृष्टांतों और अभिनव उपमानों की योजनाएं सर्वोपरि थी यह शक्ति उन्हें अपने गुरू के प्रसाद के रुप में प्राप्त हुई । एक समय वह एक पंडित जी की एक कथा में गए हुए थे । वह पंडित अंत्यंत मनोहर दृष्टांत देते थे । उसको सुनकर रज्जब जी बड़े उदास थे । कि उनके जैसे दृष्टांतों का देना कैसे प्राप्त हो । दादू जी ने रज्जब जी को उदास देखकर पूछा कि आज तुम उदास क्यों हो । तो रज्जब जी ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि मुझे अभी दृष्टांतो में योग्यता नहीं प्राप्त हुई । तब दादू ने वरदान दिया कि तुमको सबसे अधिक योग्यता प्राप्त होगी । तब से रज्जब जी दृष्टांतों की उद्‌भावना में बड़े ही निपुण होते गए । रज्जब जी एक भक्त मार्गी एवं कबीर मार्ग के अनुगामी रहे हैं इनकी रचनाए कबीर की भाँति ही पायी जाती है । राजस्थानी साहित्य में हिन्दी में जो कार्य रज्जब जी का रहा वह अत्यंत सराहनीय है ।

घाटमपुर , कानपुर नगर

पानी से भरे घड़े के ऊपर रखी हुई छोटी-सी कटोरी ने एक दिन घड़े से शिकायत की, "तुम प्रत्येक बर्तन को, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, अपने शीतल जल से भर देते हो, किसी को भी खाली नहीं लौटाते, परन्तु मुझे कभी नहीं भरते, जब कि मैं सदा तुम्हारे सिर पर ही रहती हूँ और दूसरे सब बर्तन मेरे नीचे रहते हैं इतना पक्षपात तो तुम्हें शोभा नहीं देता?"

घड़े ने शान्त स्वर में उत्तर दिया, "इसमें पक्षपात की कोई बात नहीं । अन्य सब बर्तन मेरे पास आकर झुकते हैं, जिससे मैं उन्हें अपने शीतल जल से भर देता हूँ, परन्तु तुम तो कभी झुकती नहीं, गर्व में चूर हमेशा मेरे सिर पर सवार रहती हो, इसीलिए मैं तुम्हें भर नहीं पाता । यदि तुम भी नम्रता से जरा झुकना सीखो तो तुम भी खाली नहीं रहोगी । नम्रता से ही महानता प्राप्त होती है ।"

प्रस्तुति – बृजेश चन्द्र शमा

वे भारतीय संस्कृति के अद्भुत कोश थे

— पदमश्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'

पद्मश्री के गौरवपूर्ण अलंकरण से विभूषित 'मानस संगम' के अन्यतम सहयोगी स्वनामाधन्य आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन' कर्मठता के प्रतीक, सरलता की मूर्ति और ज्ञान के विश्वकोश होने के साथ-साथ राष्ट्रीयता के उपासक, सामाजिकता के समर्थक और प्रखर देश-भक्त भी थे। कविताओं, निबन्धों समीक्षाओं तथा विविध विषयों के अनेक ग्रन्थों का लेखन तथा सम्पादन द्वारा की गई आपकी सेवा कभी भुलाई नही जा सकती। दस खण्डों में प्रकाश्य 'दिवंगत हिन्दी-सेवी'— जैसे सन्दर्भ ग्रन्थ की रचना करके तो आपने साहित्य-क्षेत्र में एक सर्वथा नया कीर्तिमान स्थापित किया है। आपकी एक अनूठी कृति है 'हिन्दी के यशस्वी पत्रकार' जिसमें आराध्य पत्रकारों की संक्षिप्त जीवनियों के माध्यम से अतीत की गौरवमयी पत्रकारिता को प्रस्तुत किया गया हैं। उस युग में पत्रकारिता 'व्यवसाय' नहीं 'मिशन' के रुप में अपनाई जाती थी। ऐसे ही एक दीवाने , धुन के धनी और ध्यये पर मर-मिटने की अटूट लगन रखने वाले आध्यत्मिक पत्रकारिता क्षेत्र के जगमगाते रत्न थे प्रातः स्मरणीय श्री हनुमान प्रसाद पोद्धार जिन्होंने गीता प्रेस गोरखपुर से 'श्री मद्भगवद्गीता' तथा 'रामचरितमानस' की करोड़ों प्रतियां प्रकाशित कर देश-विदेश के निवासियों को हिमालय की तरह उन्नत और गंगा की भाँति निर्मल तथा गतिशील भारतीय संस्कृति से परिचित कराया। 'हिन्दी के यशस्वी पत्रकार' ग्रन्थ से साभार प्रस्तुत है आदरणीय श्री पोद्धार जी की गौरव गाथा।

— सम्पादक

श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार का नाम आध्यात्मिक भावना की पत्रकारिता के क्षेत्र में शीर्षस्थ स्थान रखता है। 'कल्याण' के सम्पादक के रुप में आपने न केवल भारत, अपितु समस्त विश्व के आध्यात्म-प्रेमीजनों को अपनी दूरदर्शिता पूर्ण लेखन-पटुता से आप्यायित किया था। आप जहां हिन्दी और संस्कृत के निष्णात विद्वान् थे, वहाँ बंगला, असमिया, उड़िया, मराठी, गुजराती तथा अंग्रेजी आदि कई भाषाओं के भी ज्ञाता थे। अपने सम्पादन-काल में उन्होंने विभिन्न भाषाओं की उपयोगी आध्यात्म-प्रधान रचनाओं का हिन्दी-अनुवाद करके उन्हें 'कल्याण' के पाठको को सुलभ कराया था। उनके द्वारा सम्पादित 'कल्याण' के विशालकाय विशेषांकों में इतनी प्रचुर सामग्री प्रस्तुत कर दी गयी है कि उन्हें भारतीय मनीषा तथा संस्कृति का अद्भुत कोश ही कहा जा सकता है। उन्होंने सदैव इस बात का विशेष ध्यान रखा था कि 'कल्याण' में ऐसे ही लेख प्रकाशित हों जिनमें भगवद्भक्ति का सम्यक प्रतिपादन होने के साथ-साथ अध्यात्म, सदाचार, नैतिकता तथा आस्तिकता का भी पुर्णतः समावेशं हो। खण्डन-मण्डन की नीति से वे सर्वथा दूर रहते थे, केवल सनातन धर्म की भारतीय मर्यादाओं की पालन करना ही उनकी सम्पादन-कला का प्रमुख लक्ष्य था।

श्री पोद्दार जी का जन्म 17 सितम्बर सन् 1892 को शिलांग (असम) में हुआ था। आपके पूर्वज रतनगढ़ (राजस्थान) के रहने वाले थे और व्यापार के सिलसिले में वहाँ रहने लगे थे। बाद में सन् 1901 में यह परिवार जब कलकत्ता चला गया तब पोद्दार जी विपिनचन्द्र पाल तथा अरविन्द घोष के सम्पर्क में आ गये थे। आपकी शिक्षा-दीक्षा कलकत्ता में हुई थी और आपने वहाँ रहते हुये हिन्दी के अतिरिक्त बंगला, गुजराती, मराठी, एवं अंग्रेजी का अच्छा अध्ययन कर लिया था। सन् 1904 में आपका यज्ञोपवीत्-संस्कार हुआ था और इसी वर्ष रतनगढ़ में आपने महात्मा बखन्नाथ से गीता का विधिवत् अध्ययन किया था । जब सन् 1915 में दक्षिण अफ्रीका से महात्मा गांधी कलकत्ता पधारे थे और उन्हें आपने अल्फ्रेड थियेटर में 'मानपत्र' भेट किया था। तब आपने 'स्वदेश-सेवा'

का व्रत लिया था। सन् 1913 में आपका विवाह हुआ था यद्यपि आपने सन् 1910 से ही क्रान्तिकारियों के कार्यो में सक्रिय रुप से भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था और आपके देशबन्धुचितरंजनदास से भी घनिष्टता हो गई थी। किन्तु फिर भी आपने सन् 1913 से अपने सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ साहित्य-सेवा के द्वारा ही किया था। उन दिनों आपके लेख आदि 'मर्यादा', 'नवनीत' तथा 'कलकत्ता समाचार'- जैसे पत्रों में प्रकाशित होने लगे थे। सन् 1914 में जब महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए धन-संग्रहार्थ कलकत्ता पधारे थे, तब आपने मारवाड़ी समाज की ओर से सहायता दिलाने में अत्यंत प्रशंसनीय योगदान किया था।

इस बीच आपके जीवन की धारा ही बदल गयी और आप पूर्णतः सशस्त्र क्रान्ति में विश्वास रखने वाले युवको के दल में सम्मिलित हो गये। सन् 1916 में आपकों राजद्रोह के अपराध में गिरफ्तार करके अलीपुर सेन्ट्रल जेल तथा शिमला पाल में नजर बन्द कर दिया। आप कारावास में लगभग डेढ़ वर्ष रहे वहां पर रहते हुए ही आपका झुकाव भगवन्नाम-कीर्तन की ओर हुआ था और आपने आध्यात्म साधना भी प्रारम्भ कर दी थी सन् 1918 में जब आप जेल से मुक्त हुये तक आपको बंगाल सरकार ने प्रदेश से निष्कासित कर दिया। परिणामस्वरुप आप अपने पूर्वजों की भूमि रतनगढ़ (राजस्थान) मे आकर रहने लगे। इस बीच आपने स्थायी रुप से बम्बई में रहने का निश्चय कर लिया और वहाँ चले गये। बम्बई में रहते हुए आपने कांग्रेस के प्रायः सभी अधिवेशनों. में सक्रिय रुप से भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था और आप 'गरम दल' के नेता लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के अनन्य अनुयायी हो गये थे। सन् 1921 में हकीम अजमलखां की अध्यक्षता में हुए अहमदाबाद-अधिवेशन के उपरान्त आपकी विचार-धारा सर्वथा बदल गई और आप पूर्ण रुप से आध्यात्म-साधना तथा धर्म-प्रचार में लग गये थे। आपकी इस साधना को और भी दृढ़ता तब मिली जब सन् 1922 में सेठ जयदयाल गोयन्दका एक सत्संग-मण्डली के साथ बम्बई पधारे थे।सन् 1926 के 13, 14 तथा 15 अप्रैल को सम्पन्न हुये मारवाड़ी अग्रवाल महासभा के दिल्ली-अधिवेशन के अवसर पर एक धार्मिक पत्रिका प्रकाशित करने का निश्चय किया गया और रतनगढ़ जाते समय 22 अप्रैल 1926 को भिवानी तथा रेवाड़ी के बीच रेल-यात्रा में सेठ जय दयाल गोयन्दका के साथ 'कल्याण' नाम से एक अध्यात्म-प्रधान मासिक पत्र निकालने का निश्चय कर लिया गया।

आप तुरन्त अपने उक्त निश्चय के कार्यान्वयन में लग गये और 'कल्याण' का प्रथम अंक 'भगवन्नामांक' नाम से सन् 1926 के जुलाई मास में बम्बई से प्रकाशित कर दिया गया। अगस्त् सन् 1927 में गोरखपुर में विधिवत् 'गीता प्रेस' की स्थापना करके 'कल्याण' का प्रकाशन वहाँ से ही होने लगा। अपने उद्देश्य के प्रचारार्थ आपने सत्संग-मण्डली के साथ हावड़ा-कलकत्ता,नलवाड़ी, गोहाटी, शिलांग, तिनसुकिया, डिब्रूगढ़, नौगाँव, भागलपुर, झाँसी, खण्डवा, बम्बई, अहमदाबाद और बीकानेर आदि अनेक स्थानों की यात्राएँ भी की। इस बीच अंग्रेजी 'कल्याण कल्पतरू' के प्रकाशन का भी निश्चय कर लिया गया और उसके सम्पादन के लिए चिम्मनलाल गोस्वामी सन् 1928 में स्थायी रुप से वहां पहुंच गये सन् 1929 में जब महात्मा गांधी गोरखपुर गये थे, तब गीता प्रेस में उनका भाषण भी हुआ था। सन् 1929 में श्री गणेश शंकर विद्यार्थी की अध्यक्षता में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन को जो अधिवेशन गोरखपुर में हुआ था, उसके पीछे भी पोद्दार जी की ही प्रेरणा थी। आपके ही सत्यप्रयास से प्रख्यात साहित्यकार श्री वियोगी हरि तथा सेठ घनश्याम दास बिरला का सम्मिलन हुआ था, जिसके फलस्वरुप सन् 1932 में 'हरिजन सेवक' निकालने के व्यवस्था हुई थी।

पोद्दार जी गोरखपुर में स्थायी रुप से रहते हुए 'कल्याण' तथा 'गीता प्रेस' के द्वारा आध्यत्मिक भावनाओं के प्रचार करने का जो कार्य कर रहे थे, उसमें धीर-धीरे सफलता प्राप्त करते थे और एक दिन वह भी आया जब'कल्याण' पत्र तथा 'गीता प्रेस' साहित्य तथा संस्कृति के प्रचार के बहुत बड़े केन्द्र बन गए। 'कल्याण' के अनेक महत्वपूर्ण विशेषांकों और गीता प्रेस से प्रकाशित होने वाले साहित्य को देखकर हमें जहाँ पोद्दार जी की अद्वितीय संगठन-क्षमता का परिचय मिलता है, वहाँ हम आपके संस्कृति-प्रेम से पूर्णतः प्रभावित होते है। साहित्य तथा संस्कृति के प्रचार के लिए इस पावन यज्ञ के प्रमुख पुरोधा के रुप में तो पोद्दार जी की सेवायें अभिनन्दनीय है ही, समाज-सेवा



के अन्य क्षेत्रों में भी आपका योगदान कम महत्व नही रखता आपने गीता-प्रेस संस्था की ओर जहाँ राजस्थान के अकाल-पीड़ितों की सेवा की व्यवस्था की थी, वहाँ अनके स्थानों पर 'चक्षुदान' यज्ञों का भी आयोजन किया था। देश में भी यदा-कदा आने वाल बाढ़ों समय भी आपने स्थान-स्थान पर शिविरों का आयोजन करके अद्भूत सेवा-कार्य किया था। 'गोरक्षा-आन्दोलन और मथुरा में 'श्रीकृष्ण जन्म-भमि के पुनरूद्धार' में भी आपका विशेष योगदान रहा था। आपको सभी परिचितों में 'भाईजी' का स्नहेपूर्ण सम्बोधन मिला हुआ था आपका निधन 22 मार्च, सन् 1971 को हुआ था।

आप जहाँ अच्छे राजनीतिक कार्यकर्त्ता,समाज-सेवक और अध्यात्म-चिन्तक थे, वहाँ सुलेखक के रुप में भी आपकी सेवाएँ सर्वथा स्पृहणीय हैं। आपके द्वारा विरचित तथा सम्पादित रचनाओं की संख्या यद्यपि अगुलिगण्य नहीं है, फिर भी कुछ इस प्रकार हैं – पद्य-संग्रह : 'श्री राधामाधव रस-सुधा, 'पत्र-पुष्प', प्रार्थना पीयूष, ब्रजरस माधुरी, हरिप्ररित ह्दय की बातें, ब्रजरस की लहरें, (खड़ी बोली, ब्रजभाषा एवं राजस्थानी के पदों का संग्रह); निबन्ध-संग्रह; 'भगवच्चर्चा भाग 1-5, 'पूर्णसमर्पणार्थ राधामाधव-चिन्तन', 'श्री राधामाधव चिन्तन परिशिष्ट', भवरोग की राम-बाण दवा' (विचारात्मक निबन्ध); पत्रसंग्रह :'लोक-परलोक सुधार' भाग 1-5 (साधना एवं व्यवहार में दिये गये पथ-निर्देश); समाज-निर्माणात्मक साहित्यः 'हिन्दू-संस्कृति का स्वरुप' , 'सिनेमा मनोरंजन या विनाश का साधन', 'विवाह में दहेज', 'नारी-शिक्षा', स्त्री धर्म- प्रश्नोत्तरी, 'वर्तमान शिक्षा', 'गो-वध भारत का कलंक', 'बलपूर्वक मन्दिर प्रवेश और भक्ति'; साधना -साहित्यः 'मानव धर्म', 'साधन-पथ', 'सत्संग के बिखरे मोती', 'मन को वश में करने का उपाय', 'ब्रह्मचर्य', मनुष्य सर्वप्रिय और सफल जीवन कैसे बने?' 'जीवन में उतारने की सोलह बातें कल्याणकारी आचरण, उद्‌बोधक-साहित्य 'कल्याण कुँज' भाग 1–3, 'मानव-कल्याण के साधन', दिव्य-सुख की सरिता', 'सफलता के शिखर की सीढ़ियाँ, 'दैनिक कल्याण-सूत्र', 'आनन्द की लहरें', 'दीन-दुखियों के प्रति कर्त्तव्य (जीवन में) आशा, उत्साह, स्फूर्ति प्रदान करने वाला साहित्य) अनूदित-साहित्यः 'रामचरितमानस', 'विनय-पत्रिका', 'दोहावली', 'कवितावली'; टीका-साहित्यः 'प्रेम दर्शन (नारद-भक्ति-सूत्रों की विस्तृत टीका): भक्त-गाथा साहित्यः 'उपनिषदों के चौदह रत्न' 'भक्त गाथाएँ' (कई भागों में) आदि। इन सब रचनाओं के अतिरिक्त आपकी सबसे बड़ी देन 'कल्याण' के सभी अंक तथा गीता–प्रेस से प्रकाशित होने वाला साहित्य है, जिसके सम्पादन तथ प्रकाशन में आपके निष्ठापूर्ण व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप दृष्टिगत होती है। निरन्तर 54 वर्ष तक 'कल्याण' का सम्पादन करने के अतिरिक्त आपने गीता प्रेस से प्रकाशित होने वाले 'महाभारत' का सम्पादन भी किया था। 'महाभारत' का प्रकाशन आपने जिस योजनाबद्ध तरीके से किया था, उससे भी आपकी नियोजनपटुता का परिचय मिलता है। ❑❑❑

आज के दिन, जब स्वयं भगवान राम की जन्मस्थली पर विशाल राम की जन्मस्थली पर विशाल मंदिर के निर्माण की चर्चाएं रोज ही अखबारों में मिल रही है, यह जानना प्रासंगिक ही होगा कि अपने जीवन काल में उन्होंने भी कम से कम दो मंदिरों की आधारशिलाएं रखकर उनमें प्राण-प्रतिष्ठा की थीं। इनमें से पहले मंदिर, सुप्रसिद्ध रामेश्वर के संबंध में तो सभी लोग जानते हैं, लेकिन कन्याकुमारी जनपद में प्रतिष्ठित राघवेश्वर मंदिर के बारे में शायद लोगों को बहुत ही कम जानकारी होगी। रामेश्वर की तरह ही राघवेश्वर मंदिर में भी भगवान शिव की मूर्ति प्रतिस्थापित है, और उसका निर्माण भी मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के कर-कमलों द्वारा ही सम्पन्न हुआ था। यह मंदिर कन्याकुमारी जिले के नगरकोइल संभाग से बारह किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित है मंदिर परिसर से लग कर ही मनोरम पायाझार नदी बहती है और सौन्दर्य - श्री और प्राकृतिक सुषमा में उसका कोई पर्याय ढूँढ पाना सहज ही संभव नहीं। राघवेश्वर मंदिर जिस स्थल पर अवस्थित है उसे थिरुसनमकेप्पु के नाम से पुकारा जाता है। थिरुसनमकोप्पु थिरु-सरम-कोरप्पु का अपभ्रंश लगता है। जिसका भावार्थ है - वह स्थल जहाँ भगवान राम ने ताड़का के शरीर का नाश किया। लोगों का विश्वास है कि राघवेश्वर मंदिर की स्थापना भगवान राम ने स्त्री-हत्या के कथित पाप का प्रायश्चित करने के निमित की थी। राघवेश्वर - मंदिर का मुख पूर्व दिशा में है और उसमें दो मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। पहली प्रतिमा स्वयं श्री राघवेश्वर देवाधिदेव महादेव की है, और दूसरी उनकी सहचर्मिणी की, जिन्हें उस अंचल में उलाकन्यकी के नाम से सम्बोधित किया जाता है

प्रस्तुति – खुशीराम

हिन्दी

श्रीकृष्ण अग्रवाल 'मंगल'

हिन्दी भारत की बिन्दी है भारत का भाल चमकता है
आसेतु हिमालय है हिन्दी जन-जनका प्यार महकता है
हिन्दी में अपनापन भारी सबकी श्रद्धा करती पूरी
दूजी भाषाओं की साथिन-आँचलिक बोलियों में शूरी
अपनी भाषा में भाव व्यक्त सब रससे भी हो पाते हैं
परकीय स्वरों वाले अभाव नीरसता-रस टपकाते हैं
आओ हिन्दी के सहकर्मी अँग्रेजी की चिन्दी कर दो
वर्चस्व तुम्हारा हो जग में ऐसी माथे बिन्दी धर दो।
हिन्दी को अपनाकर भाई क्षेत्रीय भाषको पनपाओ
लेखन-शैली की धार दुधारी पत्रकारिता अपनाओ
सार्थक होगी साहित्य-विधा वाणी 'मंगल' मधुरम्-मधुरम्
हो सगंबद्ध स्वर में गुञ्जित सत्यं-सत्यं-शिव-सुन्दरतम्

— श्री अग्रसेन स्टोर, पी 34-35, कॉटन -स्ट्रीट कलकत्ता -7

हिन्दी साहित्य का कुंभ

— नारायण प्रसाद तिवारी 'रसिक'

हिन्दी साहित्य के महाकुंभ में, चलो साहित्य कारों।
शब्द, शक्ति की मणि माला, करती उजियारो।।
शब्द, अर्थ और भाव त्रिवेणी, की धारा बहती।
नव-रस तरल-तरगें गुंजित, कवितायें पढ़ती।
मज्जन-पान करो संगम में, मन को धो डारो ......
छत्तिस व्यंजन सुर समूह में, वास जहां पर करते।
त्रियोदशी-स्वर व्यंजन मिल, तुलसी मानस रचते
सरस्वती की कृपा दृष्टि से विद्वान हुए गभुआरो ......
प्रयाग नारायण के तट पर , होता मानस संगम।
हिन्दी का ध्रुव-तारा बनता, 'रसिक'' करे हृदयंगम''
दर्शन होते बद्री नारायण, करते उद्धारों।

नई बस्ती सुमेरपुर, हमीरपुर

मारीशस में तुलसी जयंती पर हिन्दी दिवस

– डॉ. वीरेन्द्र शमा
पूर्व राजदूत

गोस्वामी तुलसीदास और उनकी रामायण (रामचरितमानस को लोक व्यवहार में इसी नाम से अभिहित किया जाता है) ने भारत में तथा भारत के बाहर विदेशों में हिन्दी भाषा, भारतीय संस्कृति एवं सनातन मानव धर्म के परीक्षण संरक्षण तथा संवर्धन में जो अतिशय महत्वपूर्ण, ऐतिहासिक योगदान दिया है, वह शब्दों से परे है, वर्णनातीत है। एक ओर भारत में जहां भाषा ज्ञान के लिए 'रामायण बांचने' की योग्यता को पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान माना जाता रहा है, वहीं दूसरी ओर विदेशों में मानस का मर्म समझने के लिए असंख्य पाठकों ने हिन्दी का अध्ययन किया और अनेक विद्वानों ने उसका गहन अनुशीलन किया, इस प्रकार मानस विश्व का अप्रतिम गौरव ग्रंथ है।

हिन्दुओं में मृतप्राय आस्था और विश्वास में प्राण संचारण के लिए तुलसी रामायण सुधा-संजीवनी के समान सद्यः प्रभावी सिद्ध हुई कहा गया है-

"वसुधा त्रय तापों से झुलसी, वैदिक संस्कृति थी व्याकुलसी,
मानस का सुधा कलश लेकर, अवतरित हुए ऋषिवर तुलसी"

राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने ठीक ही लिखा है-

"देखकर सहसा हमारी साधना म्रियमाण
जिस कमण्डलु के अमृत ने थे बचाए प्राण
वह तुम्हारे हाथ में था, साधु तुलसीदास
जी उठी फिर भावना, दृढ़ हो गया विश्वास
जब तमोमय शून्य में भय हृदय थे सब ओर
जब निराशा की घटायें कर रही थीं घोर
तक तुम्ही ने किया था मानस-सरोज विकास
कवि कहें या रवि तुम्हें, हे अमर तुलसीदास"

कविवर रहीम ने तुलसी रामायण को हिन्दुओं के लिए वेद और मुसलमानों के लिए कुरान की संज्ञा दी है, उन्होंने लिखा है-

"रामचिरत मानस विमल संतन जीवन प्रान, हिन्दुआन को वेदसम, जमनहि प्रगट कुरान"

गोस्वामी तुलसीदास और उनकी रामायण की इसी व्यापकता और लोकप्रियता को समुचित समादर देते हुए और हिन्दी के लिए उनके महान उपकार को रेखांकित करते हुए मारीशश में तुलसी जयंती के पावन पर्व को हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है। मारीशस की यह भावनात्मक अवधारणा हिंदी प्रेमियों के लिए अत्यन्त गौरव की बात है और सर्वथा अभिनंदनीय है। कभी भगत बंधुओं की कृपा से हिन्दी भवन में,

"जब मां सरस्वती है आज आई, लिए यहां अपनी लाडली हिन्दी,
थकी मांदी दूर से इतनी, तो क्यों न करें उसका,
मिलकर स्वागत सभी
इस पद यात्री की यात्रा है अभी बाकी,
और न जाने है उसे कहां कहां जाना
पर है उसे घर घर में जरूर पहुंचना"

हिन्दी की संघर्ष यात्रा और उसकी भावी आशा भरी प्रगति [illegible] और क्या भावोद्गार हो सकते हैं ?

कवि ने हिन्दी के अतीत की व्यथा गाथा और भविष्य में उसकी प्रतिष्ठा की [illegible] सहजशैली में अभिव्यक्त कर दिया है ।

मारीशस में हिन्दी आंदोलन को सुदृढ़ करने और विभिन्न भाषाओं की [illegible] सन् 1669 जून में एक संयुक्त हिन्दी कौंसिल बनी । इस कौंसिल का उद्देश्य हिन्दी आन्दोलन से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करना, प्रस्ताव तैयार करना, समान कार्यवाही करना और संयुक्त रूप से सरकार के सामने मांगे रखना था । कौंसिल ने देश के विभिन्न नगरों, गांवों और कारखानों में रहने वाले सभी हिन्दी प्रेमियों से यह अनुरोध किया कि 20 अगस्त , 1969 को तुलसी जयंती पर मनाए जाने वाले हिन्दी दिवस समारोहों में कौंसिल के प्रस्तावों पर देशव्यापी चर्चा की जाए । इसके साथ यह भी निर्णय किया गया कि विभिन्न स्थानों के प्रतिनिधियों की एक बैठक 24 अगस्त को क्यूर्पिप के रायहाल में हिन्दी दिवस के समापन सभा के रूप में आयोजित की जाए । इस बैठक में हिन्दी के प्रचार-प्रसार और उसके उन्नयन के लिए जो विभिन्न प्रस्ताव पारित किए गए थे, उनका प्रतिपादन हिन्दी प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष श्री जयनारायण राय ने किया और अनुमोदन किया आर्य सभा, मारीशस के अध्यक्ष श्री मोहनलाल मोहित ने । हिन्दी की प्रगति यात्रा में इन प्रस्तावों की उल्लेखनीय भूमिका रही है ।

सन् 1970 में तुलसी जयंती के अवसर पर हिन्दी सप्ताह 9 अगस्त से 16 अगस्त तक मनाया गया, उस वर्ष हिन्दी प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष श्री जयनारायण राय की अनुपस्थिति में हिन्दी दिवस का संदेश उपप्रधान श्री सोमदत बखोरी ने प्रसारित किया । भावपूर्ण और प्रेरणादायक यह संदेश प्रत्येक हिन्दी अनुरागी के लिए मननीय है । बखोरी जी ने अपने संदेश में कहा था- आज वह अवसर है जब कि हमें देखना चाहिए कि हम अपनी भाषा के लिए क्या कर रहे हैं? इस शुभ अवसर पर अपने दिल को टटोलकर हमें यह भी देखना है कि उसमें अपनी भाषा के लिए कितना अनुराग है ।

इस देश में हमने तुलसी जयंती को हिन्दी दिवस का रूप दे दिया है, तो जब जब तुलसी जयंती आयेगी तब तब हिन्दी दिवस भी आएगा । इस देश में हमने तुलसीदास को हिन्दी का प्रतीक बना दिया है, तुलसी ने कभी हिन्दी की लाज रखी अब हमें तुलसी की लाज रखनी है । हिन्दी को इस देश में जीवित रखने के लिए यह आवश्यक है कि हिन्दी प्रेमी एक सूत्र में बंधे रहें । इतना ही यदि याद रखें तो बहुत है और नहीं तो लम्बे चौड़े संदेश से लाभ क्या ? यह संदेश बहुत ही सारगर्भित और उदेश्यपूर्ण है । एक एक शब्द साभिप्राय है । हिन्दी प्रेमियों को सर्वत्र इसी भावना से कार्य करना चाहिए ।

सन् 1970 में ही मारीशस के लब्ध प्रतिष्ठ कवि श्री ब्रजेन्द्र भगत ''मधुकर'' का एक कविता- संग्रह हिन्दी गौरव गान प्रकाशित हुआ जिसमें एक कविता हिन्दी दिवस के सम्बन्ध में है, शीर्षक है- मित्रो हिन्दी दिवस मनाए- जिसमें कवि का आह्न है-

''युवक युवतियों आओ मिलकर हिन्दी ध्वजा उड़ाएं
दुनिया के कोने कोने में हिन्दी सुमन खिलाएं-''

एक दूसरी कविता श्रद्धांजलि में तुलसी रामायण का उल्लेख इस प्रकार हुआ है-

''तुलसी ने रामायण लिखकर, रक्षा की है हिन्दी की
जय जय उसकी आज मनाएं जय जय माता हिन्दी की-''

मारीशस प्रवास में (नवम्बर 1968 - नवम्बर 1972) मुझे हिन्दी दिवस के समारोह में सम्मिलित होने का सुअवसर मिला । वहां के हिन्दीमय वातावरण और हिन्दी के प्रति सहज निष्ठा और अनुराग को देखकर, उसकी अनुभूति कर मन प्रसन्न हो जाता था । सचमुच हिन्दी के लिए मारीशस की देन अद्भुत है ।

हिन्दी भारत की ही राष्ट्र भाषा नहीं है, यह विश्व की एक प्रमुख भाषा है, विश्व हिन्दी सम्मेलनों की सफल

श्रंखला से यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि हिन्दी की विश्वव्यापी प्रतिष्ठा है जिसकी निरंतर अभिवृद्धि हो रही है। भाषा बोलने वाले लोगों की संख्या की दृष्टि से भी हिन्दी का विश्व में दूसरा स्थान है, फिर भी खेद है, संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी को आधिकारिक भाषा का स्थान प्राप्त नहीं है।

नई सहस्राब्दि का शुभागमन हो रहा है, हम लोग भारत में हिन्दी के राष्ट्र भाषा संकल्प की स्वर्ण जयंन्ती मना रहे हैं, आज सभी हिन्दी अनुरागियों का दायित्व है कि वे हिन्दी को न केवल स्वयं अपने जीवन में पूर्णरूपेण अपनाएं-दूसरों को उसे अपनाने की प्रेरणा दें। हिन्दी के प्रचार-प्रसार और उसके उन्नयन में हमारी राष्ट्रीय गौरव सन्निहित है, हिन्दी का प्रश्न हमारी राष्ट्रीस अस्मिता का प्रश्न है और इसी प्रश्न के साथ हिन्दी को विश्व समुदाय में समुचित गरिमामय स्थाना का प्रश्न संबद्ध है। आशा की जानी चाहिए कि निकट भविष्य में हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त हो जाएगी, इसके लिए सभी को समवेत प्रयासों की महती आवश्यकता है और तुलसी जयंती / हिन्दी दिवस पर नवसंकल्प की भी जिससे -समग्र परिवेश हिन्दीमय हो जाए।

-डी 213 इला एपार्टमेंट्स, बी-7 वसुंधरा एन्क्लेवस ,
दिल्ली - 110096

मेरे और तुम्हारे तुलसी

– रमेश तिवारी 'विराम'

विद्वानों के घटाटोप में
वादों के झण्डे लहराते,
शब्द, अर्थ, रस, ध्वनि पर चर्चा
'परंपरा' से 'प्रगति' धार तक
सब अपने-अपने पैमानों से
कवि तुलसी को नाप रहे हैं –
पर तुलसी ऐसे अद्‌भुत हैं
जिनको कोई नाप न पाया
शोध-समीक्षा करने वाले
सुधी-मनीषी –
'मानस' का अहगाहन करके
अपने दोनों हाथ जोड़ कर
केवल इतना ही कहते हैं –
'निज मुख मुकुर, मुकुर निज पानी,
गहि न जाय, अस अद्‌भुत बानी।'
मेरे और तुम्हारे तुलसी,
सबके सौम्य सहारे तुलसी।

हिन्दी हैं हम, हिन्दी नहीं हमारी ?

– डॉ. र. शौरिराजन

हिन्दी को जो स्वयं हिन्द की जबान होने का सार्थक्य रखता है, राष्ट्रीय भावना और प्रतिष्ठा की निशानी मानने-मनवाने की प्रवृत्ति पुरानी है। किन्तु नयी दशा है कि उस प्रवृत्ति की दिखावटी शोभायात्रा जो वर्तमान भ्रष्ट राजनीति की भ्रामक प्रदर्शनी है। हिन्दी और भारतीयता (राष्ट्रीयता)– दोनों आज राजनीति द्वारा अपमानित हो रही है; अवमूल्यन पहले हो चुका है।

राष्ट्रीय एकता और एकात्म चेतना–दोनों स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व 'वन्दे मातरम्!' की तरह हमारी अस्मिता, नैतिकता और जातीयता की पहचान ही नहीं, मौलिक-आधिकारिक योग्यता मानी जाती थीं। पराधीनता से मुक्ति और स्वराज प्राप्ति के लिए विजयी संधशक्ति को वे प्रदान करती थीं। बालगंगाधर तिलक से लेकर गांधी जी तक, रवीन्द्रनाथ ठाकुर से लेकर सुब्रह्मण्य भारती तक, स्वाती तिरुनाल से लेकर स्वामी दयानन्द सरस्वती तक, भगतसिंह से लेकर सुभाष चन्द्र बोस तक यह मानते थे और मनवाते भी रहे कि 'हिन्दी' भारत की राष्ट्रवाणी है, भारतीयों की सार्वजनीन वाणी है।

उन्हीं की प्रेरणा-प्रोत्साहन से हिन्दी प्रचार-प्रसार भारत-भर में फैले, जनमानस को संबल देते रहे।

स्वतंत्रता भारत को मिली फूट-बँटवारे के साथ। हिन्दी समेत समस्त भारतीय भाषाओं को संवैधानिक अधिकार, अनुमोदन, आदर मिल गये, जो पहले तिरस्कृत, अवरुद्ध थीं। साथ ही गुलामी की कई पुरानी निशानियां बरकरार रखी गयीं–अंग्रेजी, अंग्रेजियत, अफसरशाही, कायदे-कानून, बेइमानी, खुदगर्जी आदि। यह सब जहरीली जड़ें बन गयीं नवोदित 'संपूर्ण प्रभुता सम्पन्न लोकतंत्रात्मक स्वतंत्र जन (गण) राज्य की

सत्तासीन शासक नेताओं के भ्रष्ट, दुष्ट आचार-विचार राष्ट्रीय मूल्यों, लक्ष्यों को प्रभावित करने लगे; आपसी स्पर्धा, स्वार्थी स्पृहा, सत्तामद-मात्सर्य का बोलबाला शुरू हो गया। गांधी जी के एकादश व्रत भग्नावेश हो गये, नेहरू जी के पंचशील उनके सामने ही 'पंच अश्लील' हो चले। कश्मीर की तरह हिन्दी को भी उलझन और समस्या पीड़ित बना देने का श्रेय नेहरूजी ने मोल लिया। उसका दुष्परिणाम अब विद्रूप लेकर झूम रहा है।

क्या करना चाहिए था?

राजभाषा अधिनियम (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) की पूरी अमलदारी की अवधि निर्धारित नहीं करनी चाहिए, तत्कालीन जनमानस, व्यावहारिक सहायता और बाधा-प्रतिरोधों की ताकत पर ध्यान देना चाहिए था, यथास्थिति को बनाये रखते हुए विशेष स्थिति के प्रायोजन को प्रेरित-प्रोत्साहित करना चाहिए। धीरे से आगे बढ़ना चाहिए।

संविधान के निर्माता, प्रणेता और प्रयोक्ता महानुभावों ने यह संकल्पना नहीं की होगी कि संविधान के नीति-नियम समस्त प्रजाजनों, जननायकों और प्रायोजकों (अधिकारी, कार्यकर्ता)द्वारा एकमत से स्वीकृत एवं क्रियान्वित किये नहीं जाएंगे। 'अस्ति' और 'नास्ति' जुड़वे बच्चे हैं। पराधीनता से मुक्ति पाने के प्रयास जब भी प्रबल बने, उनका विरोध-प्रतिरोध भी तत्काल उठे बिना नहीं रहे। विरोध भले ही अल्पसंख्यक हो, पर आगे चलकर बहुसंख्यक बनने की संभावना उजागर थी। इस स्थिति को तत्कालीन प्रशस्त राष्ट्रीय पार्टी ने शायद समझा नहीं, या समझकर भी गंभीर नहीं माना हो। उस प्रशस्त राष्ट्रीय पार्टी की परिकल्पना रही होगी कि सत्ता-शासन पर हमारा शाश्वत अधिकार है और जनाधार का समग्र समर्थन भी हमीं को मिला है, मिलता रहेगा– कारण, स्वतंत्रता संग्राम के सैनिक, सेनापति और अभिभावक हम ही थे। अतः हम निर्विकल्प होकर सर्वत्र राज करते रहेंगे पीढ़ी -दर पीढ़ी। इस अंधविश्वास और दिवास्वप्न के दुष्परिणाम हम राष्ट्रप्रेमी, राष्ट्रीयतावादी भुगत रहे हैं।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का यह भावुक उद्‌गार उस जमाने में अच्छा लगता था–

"भारतीय एक होकर समन्वित संस्कृति का विकास करना चाहते हैं। इसलिए समस्त भारतीयों का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि वे हिन्दी को 'अपनी भाषा समझकर' अपनाएं।.... भारतीय जनता में एक भाषा के माध्यम से ही एकता आ सकती है, दो भाषाएं (हिन्दी-अंग्रेजी) जनता को निश्चय ही विभाजित कर देंगी।.... भारत की कामकाज की भाषा एकमात्र हिन्दी हो और वही हिन्दी 'राष्ट्रभाषा' बने। जब तक देश इसके लिए तैयार नहीं होता है, तब तक अंग्रेजी होनी चाहिए। यदि भारतीय इसे स्वीकार नहीं कर पाते, तो भाषावार राज्य देश के ऊपर विपत्ति बनेंगे। अतः संविधान में यह व्यवस्था होनी चाहिए कि राज्य की सरकारी भाषा वही हो, जो केन्द्र सरकार की है। राष्ट्र की एकता, अखण्डता के लिए सभी राज्यों की भाषा एक – हिन्दी होनी चाहिए। 'एक राष्ट्र–एक भाषा' –यही हमारा सिद्धांत होना चाहिए। यही जातीय और सांस्कृतिक (सांप्रदायिक) विवादास्पद संघर्ष के निपटारे का तरीका है।"

गांधी जी की यह विनोदी भर्त्सना हमे उस समय गंभीर चेतावनी लगी और भरोसा था, बापू जी की (हम गांधीवादियों की भी) अपेक्षा-आकांक्षा पूरी होने की आशा थी–

.... यदि मैं तानाशाह होता, तो आज ही विदेशी भाषा में शिक्षा का दिया जाना बंद कर देता; सारे अध्यापकों को स्वदेशी भाषाएं अपनाने पर मजबूर कर देता; मैं पाठ्यपुस्तकों के तैयार किये जाने का इंतजार नहीं करता।

गांधी जी बार-बार जोर देकर कहते थे– 'मैं हरगिज यह नहीं चाहूंगा कि कोई भी हिन्दूस्तानी अपनी मातृभाषा को भूल जाए या उसकी उपेक्षा करे या उसे देखकर शरमाए अथवा यह महसूस करे कि अपनी मातृभाषा के जरिए वह ऊंचे से ऊंचा चिन्तन नहीं कर सकता है।

'मेरा यह सुचिन्तित मत है कि जिस रुप में अंग्रेजी की शिक्षा यहां दी गई है, उससे अंग्रेजी पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी कमजोरे हो गये हैं। इस पद्धति ने भारतीय छात्रों को स्नायविक ऊर्जा पर भयानक दबाब डाला है, तथा हम सबको नक्काल बना दिया है। कोई भी जाति नक्कालों की कौम पैदा करके बड़ी नहीं हो सकती ।

'हिन्दीभाषी लोगों को दक्षिण की भाषा सीखने की जितनी जरूरत हैं, उसकी अपेक्षा दक्षिणवालों को हिन्दी सीखने की आवश्यकता अवश्य ही अधिक है। सारे हिन्दुस्तान में हिन्दी बोलने और समझने वालों की संख्या दक्षिण की भाषाएं बोलने वालो से दुगुनी है। प्रान्तीय भाषा या भाषाओं के बदले में नही, बल्कि उनके अलावा एक प्रांत से दूसरे प्रांत का संबध जोड़ने के लिए, एक 'सर्वमान्य' भाषा की आवश्यकता है। ऐसी भाषा तो एक मात्र हिन्दी (हिन्दुस्तानी) ही हो सकती है।"

इसी मान्यता पर हिन्दी भारत की 'राष्ट्रभाषा' घोषित की गई। राष्ट्र (भारत) की अधिकृत सार्वजनिक भाषा होने के साथ, राष्ट्रीय भाषाओं की कड़ी और राज्यों के प्रजाजनों की संपर्क भाषा की भूमिका भी निभाएगी। इस संकल्पना को प्रायः पूर्ण करने के बाद, संघ शासन की राजभाषा बनने का दावा उठाना चाहिए था। किन्तु ऐसा नही हुआ। परिणाम स्वरूप –तमिलनाडु में हिन्दी विरोध का भीषण आन्दोलन भड़काया गया अलगाववादी, राष्ट्रीयता विरोधी दलों के द्वारा जो स्वतंत्रता-संग्राम के जमाने में ब्रिटिश सरकार के क्रीतदास थे। लाचार होकर सन् 1963 में नये राजभाषा- विधेयक द्वारा अंग्रेजी को संघ शासन की 'सहराजभाषा' एक रुप में सदैव के लिए प्रतिष्ठित कर दिया गया। विदेशी शासन-सत्ता से तो मुक्ति मिली। पर विदेशी भाषा के आधिपत्य से मुक्ति नहीं मिली। यह रोना गत 50 वर्षो से रोते आ रहे है। अब स्वदेशी भावना जनाधार बटोरने की प्रेरणा भी नही रही।उपभोक्ता का साधिकार शासन बन गया अंग्रेजी भाषा, शिक्षा, सभ्यता का व्यामोह, हिन्दी विरोधी दलों का यह नारा भी 'एंगुमृतमिल', एल्लाम् तमिलं (सर्वत्र तमिल भाषा का प्रयोग) घटिया ढोंग बन गया। अंग्रेजी कान्वेन्ट बढ़ते जा रहे है, तमिल माध्यम के विद्यालय उखड़ते जा रहे है। शायद इतर प्रांतों की भी यही दशा बनती जा रही है।

अब पूरे राष्ट्र के हिन्दी प्रेमी, हिन्दी जीवी लोगों को संगठित होकर एक जबरदस्त आंदोलन शुरू करना चाहिए। जो पार्टी, या दल अपने चुनावी घोषणा पत्र में यह घोषित करे कि– 'हिन्दी को ही हम राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्रीय सम्पर्क

भाषा मानते है। उसके व्यवहार,विस्तार और विकास के लिये हमारे सक्रिय योगदान का अश्वासन देते है।'हिन्दी है हम, हिन्दी हमारी!' यह हमारा भी लक्ष्य है।' – उन्हीं पार्टियों और दलों को चुनाव में खड़े होने देगें।

हिन्दी विरोधी आन्दोलन से जी रहे, जीते रहे दल अब भी अपने चुनावी घोषणा पत्र में बेहिचक ऐलान करते हैं, हिन्दी को यहां घुसने नहीं देंगे; तमिल को सर्वत्र स्थापित करेंगे!' किन्तु वस्तुस्थिति यह है हिन्दी का प्रसार यहां बढ़ता जा रहा है और तमिल का विस्तार घटता जा रहा हैं ।

अब इन हिन्दी विरोधियों का नया नारा है – भारत की सभी भाषाएं संघ शासन की 'राजभाषा' बन जानी चाहिए। संविधान-संशोधन द्वारा यह वैधानिक अधिकार दिया जाना चाहिए।

'भुट्टो के आधार पर समर्थन देने या वापस लेने के बावेले काम और दक्षिणपंथी दल उक्त 'चौपट्ट प्रस्ताव' से कैसे निपटेंगे- देखना है ।

हम हिन्दी प्रेमी, हिन्दी सेवी राष्ट्रीय प्रजाजनों का कर्तव्य है कि हिन्दी को पूरे अर्थ में सशक्त समर्थ 'राष्ट्रभाषा' बनाने में लगें, सभी संसाधनों का सहयोग प्राप्त करें। हम 'संघीय राजभाषा' बनाने के चक्कर में न पड़ें। केवल चीख-पुकारों से उद्धरण-उदाहरणों से, उपदेश-निर्देशों से वह काम बननेवाला नहीं है। प्रत्यक्ष तथ्य यह है कि कोई भी राज्य अपनी भाषा को संपूर्णतया एकमात्र 'राजभाषा' मानने और बनाने को तेयार नहीं है– कारण प्रवृत्ति, प्रयास और परिश्रम का अभाव।

सवाल जनता से?

– कमलेश मौर्य 'मृदु'
बिसवाँ (सीतापुर) उ.प्र.

जनता ने ही किया सतीत्व पे सीता के जब शक है।
फिर सवाल पूछने का बोलो जनता को क्या हक है?
जिस धोबी ने सीता के बारे में उल्टा सोचा।
जनता ने क्यों नहीं उस समय था उसका मुँह नोचा।।
मानस एक व्यक्ति का सीता के प्रति ईर्षित मत था।
पर हमको लगता है पूरा जन-मानस सहमत था।
वरना उसी समय होना था धोबी का प्रतिकार।
और राम को घेर कराना था 'मृदु' पुनर्विचार।।
पर जनता ने नहीं उस ममय कोई किया बवाल।
आज करोड़ों वर्ष बाद करती बेतुका सवाल।।
जब सवाल पूछना था तब थे तेल कान में डाले।
अपने स्वार्थों में डूबे थे मुँह पर पड़े थे ताले।।
जब तक होगा नहीं अनय का स्वाभाविक प्रतिकार।
जब तक सोती रहेगी जनता देख के अत्याचार।
जनता चुप रह जायेगी सुन धोबी की बकवास।
तब तक सीतायें झेलेंगी इसी तरह बनवास।।

बिसवाँ (सीतापुर) उ.प्र.

प्रेरक संस्मरण

एक आस एक विश्वास

– डॉ0 यतीन्द्र तिवारी

सभी प्रकार के भौतिक सुख साधनों से सम्पन्न पाश्चात्य देशों में एक आनन्दमय, जीवन जीने की समस्त सुविधाओं के होने के बाद भी लोग एक विशेष प्रकार की कसिस, पीड़ा असुरक्षा एवं पारस्परिक विश्वास का अभाव अनुभव करते हैं। पारिवारिक जीवन होते हुये भी निजी स्वंतत्रता के कारण पारिवारिकता नहीं के बराबर रहती है। जिसके कारण वे जीवन मूल्य नहीं पाते है जो समाज की स्वस्थ परम्पराओं का निर्माण कर सकें। यही कारण है कि वहां लोगों में भारतीय जीवन मूल्यों एवं यहाँ की परम्पराओं की सनातनता में निहित नूतनताओं को समझने की ललक रहती है।

पिछले दो वर्षो के यूरोप प्रवास के दौरान कई देशों में जाने का अवसर मिला। बुलगारिया, हंगरी तथा रोमानियाँ के विभिन्न क्षेत्रों में मैं जहाँ भी गया लोगों का एक ही महत्वपूर्ण प्रश्न रहता था कि क्या करण है कि भारतीय संस्कृति, विश्व संस्कृतियों में सबसे प्राचीन होते हुए भी वह आज अपनी पुरातनता में नूतनता को समाविष्ट करते हुये, प्रभावी है। भारतीय पारिवारिक जीवन के स्थायित्व के क्या कारण हैं? आदि-आदि इन अनेक गम्भीर प्रश्नों के उत्तर में यही कहता आया हूँ कि भारतीय जीवन प्रारम्भ से यही मानता रहा है–

'एक भरोसों एक बल, एक आस बिस्वास। एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास ।।

अर्थात 'राम' और 'घनश्याम (कृष्ण)' उसके पास ऐसे आस्था और विश्वास के आधार है जिनसे उसका निजी और सामाजिक जीवन संचालित होता हैं। वस्तुतः यही दोनों आस्था व्यक्तित्व से प्रेरित भारतीय समाज और संस्कृति की जातीय म्मृति और जातीय संस्कार की प्रक्रिया संचालित होती है। जहाँ जातीय स्मृति अर्थात् परम्परायें मात्र परम्परायें न होकर युगानुकूल अपने परिष्कारित रुप में समाज का मार्ग दर्शन करती है। यहाँ परम्पराओं को मात्र रूढ़ि के रुप में स्वीकार नहीं किया गया वरन् उनका युगानुकूल परिष्कार कर लोक चेतना के रुप में स्वीकार किया गया है। वस्तुतः कोई समाज अपनी परम्पराओं से कट कर अलग-अलग अपने नये स्वरुप का निर्धारण नहीं कर सकता है। भारतीय जनमानस को जब भी अवसरानुकूल आवश्यकता हुई 'राम' तथा 'कृष्ण' के व्यक्तित्वों को आध ार बनाकर परम्पराओं में परिष्कार करते हुए युगानुकूल उन्हें स्वीकार किया है।

आज लोकाराधन की बड़ी चर्चा होती है। आज यही कहा जाता है कि परिवाराधन के स्थान पर लोकराधन को महत्व दिया जाना चाहिये। लोकाराधन का स्वरुप कैसा हो? इस प्रश्न का सहज उत्तर 'श्री राम' के लोकाराधन से मिलता है। उनका 'लोकाराधन आज भी प्रेरणा का एक प्रतिमान है।

इसी प्रकार श्री राम की सम्पूर्ण जीवन गाथा अर्थात रामकथा सम्पूर्ण भारतीय जीवन को एक ऐसी जीवन-दृष्टि प्रदान करती है जो वैश्विक जीवन स्तर पर भी शाश्वत दृष्टि हो सकती है। वह जीवन दृष्टि ''वैभव बियोग और परमात्म संयोग' की है। जिसे गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम कथा की मूल चेतना के रुप में स्वीकार किया है। इसके लिए वे तीनचरित्रों को उभार कर सामने लाते हैं उनमें पहला प्रमुख चरित्र 'भरत' का है जो राज्य का वैभव प्राप्त होते हुए भी वे उस वैभव से स्वयं को विमुक्त रखते हुये 14 वर्षो तक राज्य का संचालन करते हुए स्वयं को परमात्म संयोग की ओर उन्मुख रखते हैं। इसी प्रकार निषादराज केवट का चरित्र है जो प्रभु राम से किसी भी प्रकार के वैभव की मांग कर सकते हैं और प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु वह उनके चरणों की धूल भी नहीं स्वीकार करते। उसकी सम्पूर्ण चेतना आध्यात्म की ओर उन्मुख रहती है। तीसरा महत्वपूर्ण चरित्र है विभीषण का, जो जब तक राजवैभव के निकट रहते हैं तब तक परमात्म संयोग से दूर रहते है किन्तु जब वह वैभव विमुक्त रहते हैं तभी वह परमात्म संयोग प्राप्त करते है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति की इसी मूल दृष्टि को आधार बना कर भारतीय सांस्कृतिक जीवन अद्यावधि अति मान रहा है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति की यही अन्तः दृष्टि उसकी अनन्तता का आधार है।

प्राचार्य अर्मापुर डिग्री कॉलेज कानपुर

अन्तर्राष्ट्रीय सूचना-क्रांति और हिन्दी

– फ्रीडेमन श्लैंडर (जर्मनी)

नयी सहस्राब्दी देहरी पर खड़ी है। हमारा विश्व तीव्र वैज्ञानिक-तकनीकी परिवर्तनों के एक ऐसे दौर से गुजर रहा है, जिसे सूचना समाज, मीडिया-काल, मल्टी-मीडिया विश्व आदि कहा जा रहा है। ये ऐसे शब्द हैं जिन्हें अलग-अलग विषयवस्तु से भरा जा सकता है। इसलिए इसके समर्थक इसे सबसे बड़ी नियामत मानते हैं तो इसके विरोधी मानवजाति के लिए सबसे बड़ा खतरा।

सच तो यह है कि कल की दुनिया के बारे में सिर्फ कल्पना की जा सकती है, उसका सही खाका कोई नहीं खींच सकता। परिणामस्वरुप इस विषय पर हो रही बहस में स्पष्ट ध्रुवीकरण देखा जा सकता है।इसकी वजह यह है कि सूचना-उद्योग इस तेजी से बढ़ रहा है कि वह भविष्य में विश्व भर में चोटी का उद्योग होगा, और हर कोई उसमें अपनी भागीदारी चाहता है।

मैं एक व्यक्तिगत उदाहरण देना चाहूँगा। हाल में हमें कनाडा के ओण्टेरियो से एक श्रोता का ई-मेल संदेश मिला। एक पुराना श्रोता, जो पहले हमारे कार्यक्रमों को भारत के एक छोटे से कस्बे में शॉर्टवेव पर सुना करता था, अब वह कनाडा में है और हमारे कार्यक्रमों को इंटरनेट पर सुना करता है।

यह है सूचना-क्रांति की उपलब्धि । हिन्दी कार्यक्रम ने अपना श्रोता नहीं खोया और हमारे श्रोता को अपने प्रिय कार्यक्रम से वंचित नहीं होना पड़ा। उसके साथी हमें आज भी उस कस्बे मे शॉटवेव पर सुन रहे हैं, लेकिन साथ ही भारत में भी इंटरनेट पर हमारे हिन्दी कार्यक्रम को सुननेवालों की संख्या बढ़ती जा रही है।

हिन्दी को आज ओण्टेरि न्यूयार्क और टोकियों तक पहुँचाना है, पर साथ ही उसे कस्बे में भी बने रहना है। संचार माध्यमों के आधुनिकीकरण ने दुनिया को छोटा बना दिया है, किसी गांव की तरह । अगर तकनीकी विकास संचार माध्यमों को प्रभावित कर रहे हैं तो माध्यम भी अपनी मांग के कारण तकनीकी विकास को प्रभावित कर रहे हैं और इसे सूचना -क्रांति कहा जा रहा है।

रेडियों और टेलिविजन के आविष्कार ने दुनिया को करीब लाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आज इसमें जुड़ गया है इंटरनेट। इंटरनेट के जरिये दुनिया के विभिन्न हिस्सों के बीच संवाद को एक नया आयाम मिला है। वहां हिन्दी अपना स्थान बना रही है, उसे अपना स्थान बनाना है। वह इसे पूरे विकास से प्रभावित हो रही है। क्या वह इस विकास को प्रभावित भी कर रही है?

संचार माध्यमों के क्षेत्र में देखा जाए, तो उपग्रह टेलीविजन की शुरूआत भारत में हुई थी और उसका लक्ष्य व्यावसायिक न होकर सामाजिक और शैक्षणिक था। लेकिन भारत के गांव-गांव में जब किसान प्रगति की राह मे एक नए माध्यम पर खुश हो रहे थे, कहीं दूर अन्तर्राष्ट्रीय संचार साम्राज्य का ताना-बाना बुना जा रहा था।

हमें किसी गलतफहमी में नही रहना चाहिए। आज इस साम्राज्य की आलोचना काफी नहीं है। इस विकास को नकारा नहीं जा सकता–उसे प्रभावित करना, उसमें अपना स्थाना बनाना आवश्यक है। सूचना क्रांति किसी शून्य में नहीं पनपी है। सूचना पाने की ललक के साथ-साथ वित्तीय प्रणाली और उत्पादन का भूमंडलीकरण उसकी पृष्ठभूमि में रहा है।

भूमंडलीकरण के अपने तर्क है और उसे प्रभावित करने के लिए इन तर्को को पकड़ में लेना आवश्यक है।

हिन्दी के संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता कहाँ है? इस सवाल से विभिन्न स्तरों पर निबटना है। पहली बात कि भारत में भाषाओं के परिवार में राष्ट्रीय माध्यम के रूप में अपनी जगह बनाना पिछले पाँच दशकों से हिन्दी के लिए एक अनवरत प्रक्रिया रही है। इस क्षेत्र में अगर बहुत कुछ हासिल किया जा चुका है, तो अभी बहुत कुछ बाकी



भी है। ऐसी हालत में अब उसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी भूमिका ढूँढने को मजबूर होना पड़ा है। इस परिस्थिति का तकाजा है विभिन्न भारतीय भाषाओं के संस्थान और संगठन अन्तर्राष्ट्रीय विकास का मूल्यांकन करते हुये एक आम समझ विकसित करें।

लेकिन ऐसी समझदारी सबसे पहले हिन्दी सेवी मस्थानों और प्रतिष्ठानों के बीच होनी चाहिए। निश्चय ही ये संस्थान भाषा के साथ स्वेच्छाचार के लिए नहीं बने हैं, लेकिन उनकी एक विशिष्ट जिम्मेदारी हैं। तीव्र गति से हो रहा सामाजिक- आर्थिक विकास भाषा के क्षेत्र में अपनी गहरी छाप छोड़ रहा है, और यहां संस्थानों और प्रतिष्ठानों को नये मानक तैयार करने है, लेकिन मानक को मान्यता भी मिलनी चाहिए।

भाषा लोगों के बीच संवाद का माध्यम है, बोलचाल के दौरान विकसित होती है। भारत जैसे विशाल देश में जहां हिन्दी एक व्यापक क्षेत्र में बोली जाती है, शब्दों का विकास अलग-अलग परिवेश और भावना के समन्वय से हो रहा है। तेजी से करीब आते विश्व में नये शब्दों की जरूरत हो रही है, उनकी रचना की जा रही है लेकिन अलग-अलग रूपों में ।

लेकिन हिन्दी सिर्फ धरती पर विकसित नहीं होती रहीं। उस पर संस्थानों में बैठे भाषाशास्त्रियों का हस्ताक्षर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। पसन्द-नापसन्द की बात छोड़ दी जाये पर हिन्दी के विकास में इनके योगदान को कम करके नहीं आँका जा सकता।अब उसमें एक तीसरा कारक जुड़ गया है भाषा पर कम्प्यूटर विशेषज्ञों का प्रभाव।

दिल्ली बंगलौर या बॉस्टन में बैठे कम्प्यूटर इंजीनियर एक ही समय में हिन्दी के लिए अलग-अलग साफ्ट-वेयर तैयार कर रहे है। एक मानक यहां भी बन रहा है—इन प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों की समझ और सम्भावनाओं के दायरे में । हिन्दी के एक व्यापक परिदृश्य को वे प्रभावित कर रहे हैं जो इन मानकों के वाहन की भूमिका भी निभा रहे है। लगता है कि एक प्रणाली विकसित हो रही है। लेकिन उसके पीछे कोई समन्वित अवधारणा नहीं है। समन्वित अवधारणा के लिए कोई बहस भी नही हो रही है।

चौबीस साल पहले 1975 में नागपुर में हुये विश्व हिन्दी सम्मेलन में बहस का विषय यह था कि कैसे हिन्दी टाइप राइटर मशीन के लिए एक समरूपी की-बोर्ड बनाया जाय, जो हिन्दी जगत में मानक हो। टाइप मशीने खत्म हो गयी, मानक नही बना।यह समस्या कम्प्यूटर में हिन्दी के प्रयोग के लिये रह गई। और वहां यह समस्या सिर्फ की-बोर्ड की ही नहीं है।

हिन्दी साफ्ट-वेयरों के बीच सामन्जस्य न होने के कारण एक प्रोग्राम में लिखी गयी साम्रगी का दूसरे में उपयोग मुश्किल है। अगर नागपुर में मेरे सामने चार अलग-अलग प्रणाली वाले की-बोर्ड थे तो आज इंटरनेट पर उपलब्ध 6 (छः) हिन्दी दैनिकों को पढ़ने के लिए 6 अलग-अलग फोंट डाउनलोड करने पड़ रहे हैं। फिर हम एक बार इंतजार कर रहे हैं कि कोई-सा ग्लैडिएटर आखिरकार जिन्दा बचेगा।

यह न तो की-बोर्ड की समस्या है, न फोंट या टेक्स्ट-प्रोग्राम की और न ही भाषा या लिपि की संभावना की। यह तकनीकी विकास की भी समस्या नही है। यह सवालों से निपटने के लिए नयी सोच की समस्या है। शोध के क्षेत्र में व्यापकता और व्यवहार में एकरूपता की आवश्यकता है, ताकि सर्वमान्य मानक बन सकें।

अगर हिन्दी जगत इसे नही बना पाता है तो शायद माइक्रो सॉफ्ट इसे बनाये ? भाषा के हृदय से दूर? आखिर क्यों? नागरी की जीवनी शक्ति का परिचय हजारों सालों से मिलता रहा है और कम्प्यूटर युग में तो वह अपनी सक्षमता साबित कर रही है।

— अध्यक्ष, हिन्दी, उर्दू, बंगला विभाग
रेडियो डॉएचे वेले, कोलोन (जर्मनी)

रहीम की संस्कृत सेवा

– डॉ० आरिफ नजीर

भारतीय समन्वयात्मक संस्कृति के उन्नायक संस्कृतज्ञ मुसलिम कवियों में नवाब खानखाना अब्दुर्रहीम का नाम अग्रगण्य है। उनकी हिन्दी रचनाओं से जन-जन परिचित है पर इनकी संस्कृत रचनाएं भी बहुत महत्वपूर्ण हैं।

अब्दुर्रहीम खानखाना का पालन-पोषण मुगल सम्राट अकबर ने अपने पुत्र की भांति किया था। अकबर की उदारवादी सर्वधर्म समन्वय तथा सदाशयता की भावना का पूर्ण प्रभाव रहीम के मन-मस्तिष्क पर बचपन से ही पड़ा था। यही कारण है कि वे धर्म से मुसलमान तथा संस्कृति से शुद्ध भारतीय थे। वे आजीवन मुसलमान ही रहे, लेकिन अकबर की उदार शिक्षा नीति के कारण उनमें धार्मिक कट्टरता कभी नहीं आयी।

रहीम की प्रारंभिक शिक्षा के संबंध में तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रंथों में कम प्रकाश डाला गया है। यह कहना कठिन है कि रहीम ने हिन्दी तथा संस्कृत भाषा में काव्य रचना करने योग्य ऐसा परिपक्व ज्ञान किससे प्राप्त किया। अकबर के काल में पूर्ण रूप से धार्मिक सहिष्णुता का वातावरण था। अकबरी दरबार में ऐसे अनेक व्यक्ति, थे, जो संस्कृत के धुरंधर विद्वान थे।

अबुल फजल, अब्दुल कादिर तथा बदायूंनी और दक्खिन के उच्चकुलीन पंडित मिलकर वेदों को फारसी अनुवाद कर रहे थे। ऐसे वातावरण में रहकर रहीम का संस्कृत और भारतीय संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करना आश्चर्य की बात नहीं थी। रहीम परम अद्भुत प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। वे अरबी, फारसी, तुर्की, हिन्दी, संस्कृत आदि भाषाओं के जानकार ही नहीं, समर्थ कवि भी थे, ज्योतिष और काव्यशास्त्र पर उनका पूर्णाधिकार था।

(रहीम के नीति-विषयक दोहे आज भी लोकप्रिय हैं। वे हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि भी हैं। लेकिन बहुम कम लोग जानते हैं कि रहीम संस्कृत के भी विद्वान थे। उन्होंने संस्कृत के धर्म तथा ज्योतिष ग्रंथों और काव्यों का केवल अध्ययन ही नहीं किया, अपितु संस्कृत काव्य रचना में भी दक्षता प्राप्त की थी।)

संस्कृत विद्या के प्रसार में योग

अब्दुर्रहीम खानखाना ने संस्कृत भाषा की बहुत सेवा की। उन्होंने संस्कृत विद्या के प्रसार में महत्वपूर्ण योग दिया। उन्हें काव्य से असीम अनुराग और कवियों को आश्रय देने का अपूर्व चाव था। उनमें हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान के प्रति अपार स्नेह था।

रहीम ने संस्कृत भाषा का गंभीर अध्ययन स्वयं किया और दूसरे व्यक्तियों को संस्कृत का अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित किया। रहीम दान देने और कवियों को आश्रय देने में प्रसिद्ध थे। उनकी दानवीरता जन-जन की जिव्हा पर आज भी अंकित है।

गंग कवि के एक छंद पर रीझकर उन्होंने छत्तीस लाख रुपये इनाम में दिये थे। वैशाख शक सं. 1531 अर्थात् रहीम के तिरपनवे वर्ष (सन् 1609) में खानखाना चरितम्' संस्कृत काव्य के रचनाकार रुद्रसूरि ने रहीम के गुणों का वर्णन इस प्रकार किया है –

सकल गुण परीक्षेक सीमा, नरपति मण्डल वदनैक धामा।
जयति जगति गीयमाननामा गिरि वन-राज नवाब खानखाना।।

एक अन्य स्थान पर रुद्रसूरि रहीम की दानवीरता के संबंध में कहते हैं कि कलियुग के कर्ण खानखाना ने मानो जन सामान्य की दीनता दूर करने का संकल्प कर लिया था –

श्री खानखाना कलिकर्ण नरेशरेण विद्वज्जनादिहं निवारित मादरेण।



दरिद्रमाकलयति स्म नितान्तभीतं प्रत्यर्थि वीर धरणीपतिमण्डलानि ।।

रहीम ने संस्कृत भाषा की अनेक प्रकार से सेवा की। उन्होंने दान देकर संस्कृतज्ञों का आदर-सत्कार करके संस्कृत के प्रचार-प्रसार का कार्य किया। उन्होंने संस्कृत के धर्म तथा ज्योतिष ग्रंथों और काव्यों का केवल अध्ययन ही नहीं किया, अपितु संस्कृत काव्य रचना में भी दक्षता प्राप्त की। वे संस्कृत भाषा में रचना करने तथा अशुद्धि शोधन में भी समर्थ हो गये थे। जन प्रसिद्धि है कि एक बार जगन्नाथ त्रिशूलि ने अपने युग के महापुरुषों पर एक श्लोक लिखा –

प्राप्य चलानधिकारान् शत्रुषुमित्रेषु बन्धुवर्गेषु।

नापकृतं नोपकृतं न मत्कृतं किं कृतं तेन (याज्ञिकः रहीम रत्नावली, भूमिका पृ. 6)

अर्थात् राज्याधिकार प्राप्त कर लेने पर जिसने शत्रु, मित्र और बंधुओं का क्रमशः अपकार, उपकार और सत्कार न किया तो क्या किया?

सतत परोपकारी रहीम को यह भाव अच्छा नहीं लगा और उन्होंने श्लोक की द्वितीय अर्द्धाली को इस प्रकार परिवर्तित कर दिया –

प्राप्य चलानधिकारान् शत्रुषुमित्रेषु बन्धुवर्गेषु नोपकृतं नोपकृतं नोपकृतं किं कृतं तेन (रहीम रत्नावली)

अर्थात् राज्याधिकार प्राप्त कर, शत्रु, मित्र और बंधु सभी का उपकार न किया तो उसने क्या किया।

गंगा के प्रति भक्ति भाव

संस्कृत भाषा में रहीम रचित दो ग्रंथ 'गंगाष्टकम्' तथा 'खेटकौतुकम्' प्राप्त है। इन कृतियों के अतिरिक्त संस्कृत में उनके कुछ मुक्त छंद भी उपलब्ध हैं।

'गंगाष्टकम्' में रहीम ने बड़ी तन्मयता और श्रद्धा से गंगा के प्रति अपना भक्तिभाव प्रकट किया है। मुसलमान होते हुए भी उनकी यह धार्मिक उदारता अपने आप में एक उदाहरण है। ग्रंथ के प्रारंभ में लिखा है –

'श्री विरामखान सूनु रहीमखानखानाकृत गंगाष्टकम्'

प्रारंभिक छंद में रहीम गंगा से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे गंगे तुम्हारी महिमा अनंत है। तुम्हारी महिमा से मरणोपरांत भक्तजन विष्णु और महादेव का पद प्राप्त कर लेते हैं। लेकिन तुम मुझे विष्णु रूप न बनाना, क्योंकि विष्णु रूप बनाने पर तुम चरणों से निकलने वाली नदी कहलाओगी, जो उचित नहीं है। अतएवं तुम मुझे महादेव रूप ही बनाना, ताकि मैं तुम्हें आदर के साथ मस्तक पर धारण कर सकूँ –

अच्युतचरणतरगिङ्णी शशिशेखरमौलिमालतीमाले, मम तनुवितरणसमये हरता देया न मे हरिता

'गंगाष्टकम्' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, छोटा सा ग्रंथ है। इसमें केवल छन्छ है। भक्ति भाव प्रधान है। भक्ति के साथ-साथ गंगा के मनोहर प्राकृतिक सौंदर्य का भी मार्मिक उद्‌घाटन कवि ने इस कृति मे किया है –

चकोर चक्रवाक हंसवृन्दकूल राजिता मृणालखण्डधूमवायु पूत सत्वसंजिता

शवाङ्ग गन्धपूतहारि-वारि राशि संदिनी, जगत् त्रिदोषतस्तनुं पुनातु जद्नुनन्दिनी

रसाल वेतसी तमालसाल कुंजपावनी मयूर कोकिला प्रमत्र तीर शोभितावनी

अनेक देश कूलवात काल भीति दंडिनी जगत् त्रिदोषतस्तनुं पुनातु जद्नुनन्दिनी

रहीम ने इस कृति में पौराणिक कथाओं के समावेश से गंगा के धार्मिक महत्व को बताकर उसकी पवित्रता का उद्‌घाटन किया है। अंत में बड़े विश्वास एवं श्रद्धापूर्वक कवि कहता है–

मुरारि पादसेविना विरामखानसूनुना सुभाष्टंक शुभं कृतं मयागुरुप्रभावतः

पठेदिदं सदा शुचिः प्रभातकालतरन्तुयः लभेत वांछित फलं स जाह्वी प्रभावतः

संस्कृत और फारसी का सुंदर समन्वय

'खेटकौतुकम्' ज्योतिष का ग्रंथ है। इस ग्रंथ में संस्कृत और फारसी भाषाओं का बड़ा सुंदर समन्वय है। इस ग्रंथ में विभिन्न ग्रहों के फल बड़े सुंदर ढंग से बताये गये हैं।

राहुफल का एक उदाहरण देखें –

म्लेच्छावनीशाद् द्रव्यप्राप्तिर्दिलं च साहबं नरम् बदखानास्थितो रासः करोति रिपुसंक्षयम्

ग्रंथ के अंत में राजयोग पर अलग से एक अध्याय है। रहीम का कथन है कि जिनके जन्म के समय बृहस्पति केन्द्र में अथवा त्रिकोण में और सूर्य छठे घर में तथा बुध लग्न मे हो तो वह मनुष्य अपने समय का बड़ा आदमी या राजा बनेगा –

यदा मुश्तरी केन्द्रखाने त्रिकोणे यदा वक्तखानेरिपौ आफताबः

अतारिद्विलग्ने नर वख्तपूर्णस्तदा दीनदारोऽथवा बादशाहः

रहीम को हिन्दू शास्त्रों का कितना गंभीर ज्ञान था और वे फारसी के शब्दों में भी संस्कृत विभक्तियों का कितना कुशल प्रयोग कर सकते थे, यह इस ग्रंथ में दृष्टव्य है –

आयुखाने चश्मखोरा मालखाने च मुश्तरी

राहु जो पैदा मकाने शाह होवे मुलुक का

यदा मुश्तरी कर्कटे वा कमाने यदा चश्मखोरा जमीवासमाने

तदा ज्योतिषी क्या लिखे क्या पढ़ेगा हुआ बालका बादशाही करेगा।

'खेटकौतुकम्' के रचनाकार रहीम ही हैं, यह निम्नलिखित श्लोक से सिद्ध है –

करोम्यब्दुल रहीमोऽहं खुदा ताला प्रसादतः

फारसी पदैर्युक्तं, खेटकौतुकजातकम्

इन कृतियों के अतिरिक्त रहीम द्वारा रचित कुछ अन्य श्लोक भी प्राप्त हैं। ये रहीम की काव्यप्रतिभा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। रहीम की हिन्दी रचनाओं से पता चलता है कि वे भगवान कृष्ण में बहुत विश्वास रखते थे और वे अपना मन सदैव उनमें लगाये रहते थे।

वे चाहते हैं कि श्रीकृष्ण भी उनके मन को स्वीकार करें। उन्हें विष्णु का अवतार मानते हुए वे प्रार्थना करते हैं –

रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणी च पद्मा

किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय

राधागृहीतमनसे मनसेचतुभ्यं दंतमया निजमनस्तदिदं गृहाण

रहीम द्वारा रचे गये संस्कृत के जो मुक्तक श्लोक प्राप्त होते हैं, उनमें भक्तिभावना की प्रधानता है। निम्नलिखित छंद में भी वे बड़ी विनम्रतापूर्वक भगवान से अपने उद्धार की प्रार्थना कर रहे हैं –

अहिल्या पाषाणः प्रकृति पशुरासीत् कपिचमू

गुहौ भूच्चाण्डालस्त्रितयमपि नीतं निजपद्म

अब्दुल रहीम का एक अन्य श्लोक भी बहुत प्रसिद्ध है, जिसमें रहीम भगवान से प्रार्थना करते हुए कहते हैं –

आनीता नटवन्मया तव पूरः श्री कृष्ण या भूमिका। व्योमाकाश खखांबराब्धिबसुवत् त्वत्प्रीतयोड्यावधि।।

प्रीतस्त्वं यदि चेत्रिरीक्ष भगवान् स्वप्रार्थित देहि में। नोचत् ब्रूहि कदापि मानय पुरसत्वेताहशों भूमिका।।

'रहिमन विलास' तथा 'रहीम रत्नावली' में उपर्युक्त श्लोक पर ही आधारित रहीम रचित एक उत्कृष्ट हिन्दी छप्पय भी संग्रहीत है। संस्कृत के साथ-साथ अरबी, फारसी आदि भाषओं पर रहीम का पूर्णाधिकार था खड़ी बोली का प्रारंभिक रूप उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है। 'खेटकौतुकम्' को उन्होंने संस्कृत फारसी मिश्रित भाषा में लिखा।

प्रवक्ता : हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (कादम्बिनी से साभार)



अब्रह्मण्यम्

– जितेन्द्र कुमार त्रिपाठी

यूरोप वासियों ने भारत में सत्ता हस्तगत करने के साथ, अपने ही हित के अनुकूल, निश्चित उद्देश्य व लक्ष्य से यहाँ लोगों की भाषा व शिक्षा की नीति निर्धारित व संचालित की। फलतः केरल (मलयालम), मणिपुर (मणिपुरी), उड़ीसा (उड़िया), मिजोरम (मिजो) , और सिक्किम (भोटिया, लेप्चा और नेपाली) मे वहाँ की अपनी मातृभाषाओं के साथ अंग्रेजी उन प्रदेशों की आज भी राजभाषा है। जब मात्र डेढ़ सौ वर्षो में अंग्रेजी, फ्रेन्च आदि भाषाएँ यहाँ राजभाषा और लोगों की मातृभाषा बन चुकी हैं, तो यहाँ यह खतरा मंडरा रहा है कि इससे कम समय में ही यहाँ के लोगों की मातृभाषा उनसे पूरी तरह छूट जायेगी और अन्य योरोपीय भाषा उसका स्थान ले लेंगी।

मणिपुर, मेघालय, नागालैण्ड, अरूणाचल-प्रदेश, चंडीगढ़, दादर- नागर हवेली , गोवा और दमन–दीव में अंग्रेजी राजभाषा है। अरूणाचल प्रदेश, मेघालय, सिक्किम और नागालैण्ड में शिक्षा का माध्यम केवल अंग्रेजी है। इस प्रकार इन क्षेत्रों के लोगों की मातृभाषाएँ लगभग पूर्णतया समाप्त हो गयी है। उदाहरणार्थ नागालैण्ड में 'जी. बी.' शब्द के सामान्य जन में बहुधा प्रयोग सुनकर, उसका अर्थ पूछने पर ज्ञात हुआ कि 'जी0' से गाँव और 'बी0' मे बूढ़ा अर्थात गाँव बूढ़ा'' (जैसे ग्राम प्रधान) पद का संक्षिप्त रूप 'जी.बी.' है। कश्मीरी और सिन्धी भाषांए अपने अस्तित्व के लिए अलग छटपटा रही हैं।

यह उदाहरण यह प्रदर्शित करने के लिए दिये गये है कि एक भाषाई अल्पसंख्यक अपने मूल -स्थान मे कैसे समाप्त होता है। जब शिक्षा का माध्यम मातृभाषा से भिन्न होता है तो उसी भिन्न भाषा को ही वरीयता प्राप्त होती है, कालान्तर में पहले वह राजभाषा की सीढ़ी पर चढ़कर बाद में मातृभाषा का स्थान ग्रहण करती है। विगत तीन पीढ़ियों में जिन परिवारों में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा हुई है तथा उनका आर्थिक स्तर उच्चतर बना रहा है या होगया है वहाँ का भाषायी परिवेश उनकी मातृभाषा से भिन्न हो चुका है और अंग्रेजी इन परिवारो मे मातृभाषा स्वरुप स्थापित हो गयी है। जनगणना के समय एकाएक झटका अनुभव करते हुए ऐसे परिवारों के लोग यद्यपि अपनी मातृभाषा हिन्दी, तमिल, बंगला मराठी आदि लिखा देते है, किन्तु ऐसे भद्र लोग अपना पृथक स्वरुप प्रदर्शित करने के लिए बनावटी विनम्रता दर्शाते , व मन में शान का अनुभव करते हुये, यह कहते है कि उन्हें स्थानीय भाषा के प्रयोग में कठिनाई होती है क्योकि वे सदैव अंग्रेजी का ही प्रयोग करते है।

यह नव-धनाढ्य व नव-पाश्चात्य वर्ग अपने को आभिजात्य व भद्र लोक की भाँति प्रदर्शित करने का प्रयास करता है। यह वह वर्ग है जो गत सदी के प्रारम्भ तक अपने पाश्चात्य स्वामियों के स्वर में स्वर मिलकार वेदों को गड़ेरियों के गीत बताकर तदनुसार उनका बखान करता था, किन्तु जब वही पाश्चात्य वर्ग वेदों की प्रसंसा करने लगा तो उन्हीं के अनुसार– ''हिज मास्टर्स वायेस'' के ग्रामोफोन के स्वरूप वह उसी सुर में बोलने लगा इस वर्ग का अपना स्वयं का कोई विचार व सुर नही हैं।

इस वर्ग के लोग संस्कृत को पुरातन पंथी ही समझते और बताते है। वह कदाचित भूल जाते है कि 'निरूत्र' का निर्देश है 'अपने मानसिक कार्य/ व्यवहारों में सभी लोगों को तर्क की विधि का अनुसरण करना चाहिए''। कालिदास की उक्ति ''पुराणमित्येव न साधु सर्वम्'' (सब पुराना ही अच्छा नही है) तथा आदि गुरू शंकराचार्य का मत ''नहि पूवजों मुधा आसीदिति अवरे जनेऽपि मुधेर भवतिव्यम्'' । (पूर्वज अनभिज्ञ थे इससे यह नही समझा जा सकता कि हम भी अनभिज्ञ बने रहें) ऐसे लोगों को अपनी समझ सुधारने के लिए ही वराहमिहिर ने अपने ग्रंथ 'ताजिक नील कंठी के प्रारम्भ में यवनराज का संदर्भ दिया है। उनकी दृष्टि में यवन ऋषिवत्तेऽपि पूज्याः स्युः'। ज्ञान के क्षेत्र में देशी-विदेशी व पुरातन व आधुनिक में कोई भेद नही हैं



इस अर्थ - सजग वर्ग द्वारा बहुधा यह प्रश्न किया जाता है जो बालक केवल संस्कृत माध्यम से शिक्षा ग्रहण करेंगे वह जीवन के कठोर आर्थिक सत्य का सामना कैसे करेगे? इस संदर्भ में यह भी कहा जाता है कि संस्कृत मातृभाषियों के लिए वृत्ति (नौकरी आदि) के लिए कोई अवसर या क्षेत्र नही है।

स्मरणीय है कि मध्य कालीन भारत के इतिहास में संस्कृत शिक्षा के पोषक व विध्वसंक दोनों प्रकार के राजाओं, जिन्होंने अपने राज्य को कल्याणकारी- राज्य कभी घोषित नहीं किया के समय राज्य अथवा समाज अथवा दोनों ने संस्कृत मातृभाषियों का पोषण किया किन्तु आज अपने को 'कल्याणकारी' घोषित करने वाला राज्य, अपने इस दायित्व मे पीछे क्यो है?

इसके अतिरिक्त यदि जापानी, चीनी, रूसी, अरबी, लोग जीवन की कठोर आर्थिक वास्तविकता का सामना कर अपनी मातृभाषा के साथ जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रगति कर सकते है तो संस्कृत मातृभाषी क्यो नहीं? यदि इस देश में बीस हजार अरबी, मातृभाषी पोषित हो सकते है तो उनचास हजार संस्कृत मातृभाषी क्यो नहीं ? यदि जीवन के आर्थिक पक्ष का प्रश्न संस्कृत मातृभाषियों के लिए है तो क्या वह अरबी-मातृभाषी के लिये नही है? अरबी मातृभाषियों को स्वयं उनकी संस्थाओं ने भाषा और आस्था के प्रति उनकी प्रतिबद्धता के कारण आत्मसम्मान के साथ भारत में पोषित किया है।

जहाँ तक वृत्ति, नौकरी या रोजगार की बात हे यह विचारणीय है कि क्या देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों के आधुनिक विज्ञान के विभिन्न विषयों के प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण डिग्री धारकों को राज्य ने समुचित वृत्ति-नौकरी अथवा जीवन-यापन के साधन उपलब्ध करा दिये हैं? देश के सामान्य नौजवान, वृत्ति-नौकरी-रोजगार के अभाव में तो हैं ही, क्या अत्यधिक सीमा तक आरक्षण दिये जाने के पश्चात् भी आरक्षित वर्ग के सभी लोगों को वृत्ति नौकरी प्राप्त हो सकी? बेरोजगारी की समस्या किसी भाषा विशेष अथवा उसके माध्यम से पढ़ने के कारण नहीं खड़ी हुई हैं। वस्तुतः बेरोजगारी का दोषारोपण किसी भाषा या विषय पर नहीं किया जा सकता है अपितु, वह तो समग्र रूप से राज्य की सम्पूर्ण अर्थ और शिक्षा नीति अथवा असंतुलित विकास पर है।

जब देश के आधारभूत अथवा अन्य उद्योगों व व्यवसायों का पहले राष्ट्रीयकरण करके अब पुनः एकाधिकरण, बहुराष्ट्रीयकरण और निजीकरण करके ''पुनः सिंहो भव'' (मूषको नहीं) कर स्वत्वाधीन कर लिया गया है तब नागरिकों का आधारभूत भोजनाच्छादन (कशिपु) भी राज्य का ही दायित्व है। जब जमींदारी का उन्मूलन हो सकता है, भूमिहीन को भूमि प्रदान की जा सकती है, जब राजाओं के प्रिवी-पर्स समाप्त हो सकते हैं, जब बैंकों का राष्ट्रीयकरण हो सकता है, जोतबन्दी की सीमा हो सकती है, तो अन्य सम्पत्तियों जिसमें जमीदारी और जोतबन्दी से कहीं अधिक मूल्य व आय की नगरीय सम्पत्तियाँ व कम्पनियों के सम्पत्ति साम्राज्य हैं, की सीमाबन्दी करके तथा सरकारी व्यावसायिक, औद्योगिक प्रतिष्ठानों से उनमें लगाई गई पूँजी के अनुसार एक निर्धारित वार्षिक अंश लेकर, व्यवसाय वृत्ति नौकरी विहीन मातृभाषा माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था क्यों नहीं की जा सकती है? वह भी तब, जबकि हमारे आर्थिक साधनों, स्रोतों का राज्य द्वारा अधिग्रहण कर लिया गया है या हमारी सम्पत्ति के दुरुपयोग की ओर से राज्य ने आँखें मूंद ली हैं। वस्तुतः भोजनाच्छादन और सुरक्षा का अधिकार प्रत्येक नागरिक को जन्म से प्राप्त है। यह केवल उन लोगों के लिये ही नहीं है जिन्हें सरकार ने एक बार में ही उनके पूरे जीवन के लिये अपने यहाँ उन्हें वृत्ति-नौकरी प्रदान कर उनके आर्थिक पोषण का ठेका ले लिया है।

विज्ञान और संस्कृत सदैव सहचार रहे हैं। संस्कृत जो मूलतः और व्यवहारतः वैज्ञानिक विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है, वैज्ञानिक चिन्तन, शिक्षण, प्रशिक्षण और शोध में बाधक कैसे हो सकती है? क्या श्री जे.सी. बोस विश्व विख्यात वैज्ञानिक होने के साथ ही संस्कृतज्ञ नहीं थे? वनस्पति आदि में जीवन की विद्यमानता, जिसे उन्होंने सिद्ध करके दिखाया का विचार उन्हें 'शस्य' शब्द से ही आया, जिसका अर्थ है 'हत्या करने योग्य' और हत्या उसी की हो सकती है जिसमें जीव हो, उनके मन में विचार आया कि जब वनस्पति को 'शस्य' कहा गया है तो इसका अर्थ हुआ कि इसकी हत्या होती है। अतः इसमें जीव अवश्य होना चाहिए। विश्व विख्यात भौतिक-विज्ञान वेत्ता

श्री फ्रिटजाफ कैपरा के प्राच्य मिस्टसिजिम और आधुनिक भौतिकशास्त्र की समानान्तरता के विचार को एक संस्कृत मातृभाषी अणु वैज्ञानिक आगे बढ़ा सकता है। यही बात ज्ञान की सभी शाखाओं पर भी लागू है।

महेश योगी ने योग की प्रभावोत्पादकता को वैज्ञानिक प्रयोगशाला में प्रमाणित कर विश्व में उसका मानदण्ड स्थपित कर दिया है। परन्तु अभी बहुत कुछ करना बाकी है। संस्कृत शोध अकादमी, मेलकोटे ने विभिन्न वैज्ञानिक विषयों के देश के सर्वश्रेष्ठ व अग्रणी वैज्ञानिकों और संस्कृत विद्वानों को एक मंच पर लाकर निर्णायक निष्कर्ष के लिए इस क्षेत्र में अनुकरणीय कार्य किया है। जिसकी देश के अन्य भागों में पुनरावृत्ति करना श्रेयस्कर होगा। इस प्रकार के अध्ययनों के लिए संस्कृत मातृभाषी ही कारगर सिद्ध हो सकते हैं। केवल पाश्चात्य भाषाविद् अथवा केवल उन्हीं की विचारधारा को अन्तिम सत्य मानने वाले भारतीय या विदेशी विद्वानों से काम न चल सकेगा। बहुधा ऐसे विद्वानों ने अर्थ का अनर्थ कर दिया है। संस्कृत-मातृभाषी अपनी भाषा के अंतिम संवेदनशील भावों को सही रूप से समझ/ग्रहण व व्यक्त कर सकते हैं। समय आ गया है जब विश्व संस्कृति के संस्कृत-मातृभाषी-स्वरूप के अंश को सुरक्षित रखने के लिए संयुक्त-राष्ट्रं शैक्षिक-वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन अपने स्वरूपानुरूप दायित्व का निर्वाह करे।

– सी 24 क.-जे. रोड , महानगर विस्तार,
लखनऊ

मैं तो तेरा सदा का हितैषी हूँ

– राम औतार सिंह खंगार
सहायक महाप्रबन्धक राष्ट्रीय कृषि और विकास बैंक नाबार्ड

हाँ भाई मैं नीम हूँ।
हाँ भाई मैं नीम हूँ
स्वाद में कड़ुवा, मगर गुणों में हकीम हूँ।
ग्रीष्म की तपन मिटा ऊँ
काया में शीतलता लाऊँ
विषधर भी क्या कर सके?
जब तक मैं समीप हूँ।
हाँ भाई मैं नीम हूँ
हाँ भाई मैं नीम हूँ
तन के, मन के
सभी दुःख हरुँ।
मैं तो तेरा सदा का हितैषी हूँ।
और बता क्या करुँ।
मैं तो तेरा शुभ चिन्तक असीम हूँ।
हाँ भाई मैं नीम हूँ
हाँ भाई मैं नीम हूँ।

- ('नीम युग' से)

– 2575 वरमेर रोड, उरई (जालौन) 285 001

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सारस्वत समारोह

– डॉ हरि प्रसाद दुबे

रायबेरली। राज्यभाषा हिन्दी के स्वर्ण जयंती वर्ष पर भारत रत्न राजर्षि पुरूषोतम दास टंडन द्वारा 1937 में संस्थापित उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सारस्वत समारोह फिरोज गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी नगर रायबेरली में मनाया गया ।देश के कोने कोने से आये लगभग 500 साहित्यकारों कवियों की शोभायात्रा10-30 बजे पूर्वाह्न सुपर मार्केट से आरम्भ होकर 11 बजे आयोजन स्थल तक पहुँचा।

रायबेरली के प्रत्येक मार्ग पर तोरण द्वार और सारस्वत साधकों के अर्चन वन्दन की सात्विक वृत्ति झलक रही थी। फिरोज गांधी परिवार के प्रबन्ध मंत्री ओंकार नाथ भार्गव और प्राचार्य डॉ नरेन्द्र किशोर अग्रवाल ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर अपने महाविद्यालय को नगर में परिवर्तित कर दिया था। हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में युग प्रवर्तक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म साहित्यगर्भा दौलतपुर की 'माटी' में हुआ। पतित पावनी गंगा की गोद में हिन्दी साहित्य सेवियों का यह तीर्थ और हृदय स्थल रहा ।

मुल्लादाउद, मलिक मुहम्मद जायसी, शिव रत्न शुक्ल सिरस, आचार्य कवि सुख देव मिश्र, कवि बेनी यही के अनमोल रत्न है। बृज भाषा और खड़ी बोली में प्रचुर साहित्य इसी भूमि में रचा गया है। राष्ट्रभाषा हिन्दी को समर्पित यह सारस्वत समारोह दो दिनों के लिए था। सरस्वती के चित्र पर माल्यार्पण और दीप प्रज्ज्वलन के अनन्तर सरस्वती वन्दना और स्वागत गीत कालेज की छात्राओं द्वारा प्रस्तुत किया गया ।समारोह का उदघाटन करते हुए प्रख्यात हिन्दी साहित्यकार डॉ वेद प्रताप वैदिक ने अपने सारगर्भित उदबोधन में कहा कि हिन्दी लिपि भारत की ही नही 21 वी सदी के सिर पर चढ़ कर बोलेगी। संख्या के आधार पर हिन्दी दुनिया की सर्वाधिक बोली जानी वाली भाषा है। जितनी विदेशों में हिन्दी बोली जाती है उतनी कोई भाषा नहीं ।

मात्र 4-5 देशों में अंग्रेजी बोली जाती है। भाषा के मामले में पाकिस्तान भारत से आगे है। डॉ वैदिक ने बताया कि हिन्दी की माता संस्कृत है। तीन हजार धातुओं से दो लाख निर्मित है। जब तक पेट की लड़ाई पूरी नहीं होती, भाषा भूषा की लड़ाई मनुष्य नहीं लड़ पाता हिन्दी बाढ़ की तरह आयेगी।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पं. बद्री नारायण तिवारी ने अपने उद्गार में कहा उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन केवल एक संस्था मात्र नही हैं, वह एक विचार है, एक संकल्प है। हिन्दी के सम्मान रक्षा का संकल्प है और पूरा एक आंदोलन है जिसमें राजर्षि टंडन की आत्मा है, श्री नारायण चतुर्वेदी की साधना व डॉ धीरेन्द्र वर्मा और बाबू राम सक्सेना की दृष्टि है ।महीयसी महादेवी वर्मा, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, सेठ गोविन्द दास, बाबू सम्पूर्णा नन्द और राहुल सांकृत्यायन सहित अनेक हिन्दी समर्थकों की स्मृतियों का ज्योति पुजं है।

सम्मेलन की दृष्टि में हिन्दी मात्र विचारों की अभिव्यक्ति की माध्यम नही हैं,वह भारत की दीर्घ कालीन सांस्कृतिक चेतना की वाहिका है ।हिन्दी राष्ट्रीय गौरव और विश्व बन्धुत्व की परम्परा की अभिव्यक्ति है। इसलिये सम्मेलन के मंच पर हिन्दी के भंडार को सम्पन्न बनाने वाले सभी लेखकों का स्वागत होता रहा है। चाहे उनकी विचारधारा कुछ भी हो। हम आश्वस्त हैं कि इस व्यापक दृष्टिकोण का संरक्षण और संवर्धन भविष्य में भी होता है ।पं. तिवारी ने कहा कि हिन्दी किसी भी भारतीय भाषा कि विरोधी नही हिन्दी बड़ी बहन है सब प्रान्तीय भाषाये छोटी बहने है पर अन्य प्रांतवासियों का विश्वास जीतने के लिए हम हिन्दी भाषियों को भी अन्य प्रातीय भाषायें सीखनी होगी। विनय कुमार दुबे द्वारा सौ साहित्यकारों के तैल चित्रों की प्रदर्शनी का उदघाटन किया गया। ये चित्र अत्यंत जीवंत और मनमोहक रहे। इसमें दर्शकों की भीड़ बनी रही। इसके अनन्तर आरम्भ हुआ सारस्वत सम्मान समारोह इसका संचालन डॉ पाण्डेय रामेन्द्र ने किया । उत्तर प्रदेश लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष डॉ कृष्ण बिहारी पाण्डेय की अध्यक्षता में आरम्भ इस समारोह में न्यायमूर्ति प्रेम शंकर गुप्त हरिमाधव शरण भी थे। बद्री नारायण तिवारी ने अनेक सरस्वती पुत्रों का सारस्वत सम्मान किया। डॉ गिरजा शंकर त्रिवेदी को पं. अम्बिका प्रसाद बाजपेयी सम्मान न्यायमूर्ति रामभूषण मेहरोत्रा को राजर्षि पुरूषोतम दास टंडन सम्मान मोहन लाल रामरंग को सेठ गोविन्द

दास सम्मान प्रोफेसर डॉ शैलेन्द्र नाथ कपूर को पं. श्री नारायण चतुर्वेदी सम्मान डॉ कन्हैया लाल नंदन को मैथिली शरण गुप्त सम्मान, शम्भुनाथ को वेचन शर्मा उग्र सम्मान प्रदान किया गया। विशिष्ट सम्मान प्राप्त करने वाले विद्वानों में डॉ के. के. ए. वेकटाचार्य मद्रास पं. श्याम बिहारी मिश्र कानपुर, विनय कुमार दुबे, दीन मोहम्मद दीन डॉ हरी प्रसाद दुबे फैजाबाद, राधेश्याम जी, डॉ सुमन यादव का नाम प्रमुख है।

इन्हें प्रशास्तिपत्र प्रतीक चिन्ह और उत्तरीय देकर पं. बद्री नारायण तिवारी ने सम्मानित किया। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी, भुवन वाणी ट्रस्ट की पुस्तक प्रदर्शनी आकर्षक रही ।

साहित्य परिषद की बैठक में 5 बजें 21वी सदी में हिन्दी और हमारा दायित्व पर चर्चा हुई। सांय 7 बजें लल्लू बाजपेयी का आल्हा बांसुरी वादन, लोकगीत की सांस्कृतिक संध्या हुई। रात्रि 9 बजें कवि सम्मेलन मे अनेक कवियों ने अपने काव्य पाठ किये। डॉ गणेश दत्त सारस्वत, वाहिद अली वाहिद। डॉ जीवन शुक्ल, रामनरेश पाल, डॉ हरि प्रसाद दुबे, कमलेश शर्मा, राममणि शुक्ल, दीन मोहम्मद दीन के अलावा अन्य स्थानीय कवियों और कवयित्रियों ने सरस काव्य पाठ किया। कवि सम्मेलन का संचालन श्रीराम शुक्ल ने किया ।

समारोह के दूसरे दिन प्रात 9 बजें स्थायी समिति की बैठक की गयी। 11 बजें खुले अधिवेशन के साथ प्रस्तावों पर विचार किया गया इन्दिरा गांधी के भव्य सभागार में हिन्दी भाषा और साहित्य में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का योगदान विषय पर संगोष्ठी आयोजित हुई। इसमें प्रोफेसर शैलनाथ चतुर्वेदी सोहनलाल रामरंग हन गिरजा शंकर त्रिवेदी, हरिमाधव शरण, ओमकार नाथ भार्गव ने अपने सारगर्भित विचार रखें। द्वि दिवसीय समारोह में हिन्दी अनुरागी पं. राम प्रकाश अवस्थी, लालजी, मुनीन्द्र शुक्ल, मनुज जी, महेश अवस्थी, डा. राम बहादुर मिश्र, अमन प्रिय अकेला, प्रोफेसर रमेश तिवारी विराम, पं. राज बहादुर दिवेदी, पं. दुर्गाचरण मिश्र, शिवाकांत शुक्ल, गुदड़ी के लाल की उपस्थिति विशिष्ट रही इस समारोह में अनेक रचनाकारों की कृतियों का लोकार्पण भी किया गया। लोकसंगीत में डा. रेनू निगम ने पं. प्रताप नारायण मिश्र रचित धनी धनी आदि भवानी तोरी गति का कोई जाने, कुंवर बैचेन का गीत सावन के झूले पड़े गूजे मल्हार, चले जइयों विदेशवा, ओ राजा जी चमकें बदरा मां बिजुरिया जा बलमू जैसे लोकगीतों से जनमानस को सम्मोहित किया। स्वागत समिति के डॉ. राम बहादुर वर्मा, गौरव अवस्थी, डॉ राधा देवी श्रीवास्तव, प्रोफेसर बद्रीदत्त मिश्र का सहयोग प्रशंसनीय रहा। डॉ पाण्डेय रामेन्द्र ने पूरे समारोह में सक्रिय योगदान दिया। स्थानीय पत्रकारों के अतिरिक्त डॉ. संध्या, डॉ. किरन श्रीवास्तव को सम्मानित किया गया।

(दैनिक जनमोर्चा फैजाबाद)

विद्वत गोष्ठी सम्पन्न

कानपुर 26 दिसम्बर । मानस संगम कानपुर के 31 वें मानस संगम समारोह के पूर्व प्रातः पं. नरेश चन्द्र चतुर्वेदी स्मृति विद्वत गोष्ठी में 'हिन्दी के विस्तार में मानस का योगदान' विषय पर डॉ. वीरेन्द्र शर्मा पूर्व राजदूत की अध्यक्षता में विषय पर विस्तृत चर्चा सारगर्भित विवेचन विस्तृत द्वारा प्रस्तुत किया गया।

गोष्ठी में सर्वप्रथम माँ शारदे का बखान किया गया तत्पश्चात उपस्थित विद्वान सर्व श्री प्रमुख वक्ता डॉ. आरिफ नजीर अलीगढ़ मुस्लिम विश्व विद्यालय ने कहा कि मानस की चौपाइयां कक्षा 5 से लेकर उच्च शिक्षा तक विद्यार्थियों को पढ़ायी जाती है यही उसकी व्यापकता एवं प्रसार की श्रृंखला को स्थायित्व प्रदान करते हुए विश्व के देशों में ख्याति प्राप्त की। श्री हरिशंकर जी ने मानस को भारतीय संस्कृति की सुषुम्नानाड़ी बताया। डॉ. शर्मा ने हिन्दी की दृष्टि और दिशा के विविध आयामों पर विस्तृत चर्चा करते हुये कहा 'हम घर में दिया जलाये बाहर दिया जलाये, घर घर दिया जलाये' इस संकल्प के साथ हिन्दी के उत्थान में प्रयत्नशील हो। बीच-बीच में कविवर डॉ. प्रतीक मिश्र, वीरेश कात्यायन, लालमन आजाद कानपुरी, हरि नारायण तिवारी, दीन मोहम्मद दीन मैनपुरी, दयालू जी, दुर्गाचरण मिश्र, डॉ. पांडेय आशुतोष (चम्बल) राजेन्द्र परेदशी, की रचनाओं को सराहा गया। गोष्ठी का सफल संचालन सुरेन्द्र प्रताप सिंह एडवोकेट ने किया तथा विश्वनाथ कपूर की सस्वर मानस की चौपाइयों ने वातावरण को तुलसीमय बना दिया। गोष्ठी में प्रमुख रुप से डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे, न्यायमूर्ति श्री प्रेमशंकर गुप्त, कैलाशनाथ, त्रिपाठी, बदन सिंह मस्ताना, कमलेश शर्मा मैनपुरी उपस्थित थे।

राम सत्यम-शिवम्, सुन्दरम् के प्रतिनिधि चरित्र

कानपुर, रविवार। साहित्यिक संस्था 'मानस संगम' के 31 वे सालाना समारोह का समापन आज देशी विदेशी कवियों की भक्तिमय कविताओं की सरस अभिव्यक्ति का अवसर बन गया।

प्रयाग नारायण मंदिर (शिवाला) में आयोजित इस कार्यक्रम में तबले की संगत पर कु0 अस्मिन ब्रज मोहन तथा चन्दर ननकू ने भाव विभोर कर देने वाली कविता पढ़ी सीते सीते सीते, राम से मिला दे। श्रीलंका की कु0 रत्नावली ने काव्यात्मक स्वर लहरी में गाया– ठुमक चलत रामचंद्र बाजत पैजानिया। चम्पारन (बिहार) से आये आशुतोष पांडेय ने बिहार की दुर्दशा पर मन को छू लेने वाली कविता पढ़ी।

खत्म होने को ये सदी बीसवी, एक पर एक खुलने लगी वचना।

शशि शुक्ला ने राम महिमा यूं व्यक्त की तुलसी -तुलसी हो गये कथा लिख राम की। इलाहाबाद से आये यश मालवीय ने राम वनवास का काव्यमय पाठ किया।

राम गये वनवास सखी री कितना अवध उदास सखी री।

रेणु निगम ने पायो जी मैने राम रत्न धन पायों। गाकर लोगों को मंत्र मुग्ध कर दिया।समारोह में जुटे देश विदेश के विद्वानों, साहित्यकारों तथा बुद्धिजीवियों ने भगवान श्री राम के साहित्य को सर्वश्रेष्ठ कोटि का साहित्य निरूपित किया । मुख्य अतिथि के रूप में पधारे विधान सभा अध्यक्ष केशरी नाथ त्रिपाठी ने कहा कि राम का साहित्य विश्व साहित्य में सर्वश्रेष्ठ है। राम का चरित्र मानव मात्र के व्यवाहरिक जीवन के लिए आदर्श चरित्र है। रामचरित मानस सर्वग्राही ग्रन्थ है उसका जिसने पाठ कर लिया, जीवन के व्यवहारिक धरातल पर वे उसका अनुसरण कर आदर्श प्रस्तुत कर सकता है।त्रेता के राम नैतिकता की प्रतिमूर्ति है।वे सत्यम, शिवम् सुन्दरम् के प्रतिनिधि चरित्र है।

उन्होंने कहा कि मनुष्य का हृदय चचंल है, गतिशील है, इस गतिशीलता तथा चंचलता को राम चरित मानस का पाठ संयम प्रदान करता है राम के चरित्र वर्णन के क्रम में ही उन्होंने कहा कि अधिकार की तुलना में कर्तव्यों को वरीयता देनी चाहिए। पूर्व मंत्री देवेन्द्र सिंह भोले ने कहा की मानस संगम द्वारा रामचरितमानस की शिक्षाओं का प्रचार प्रसार देश की संस्कृति को पुर्नजीवित करने का सदप्रयास है। सांसद श्री प्रकाश जायसवाल ने स्वागत किया। आज के कार्यक्रम की अध्यक्षता सेवानिवृत्त न्यायमूर्ति प्रेमशंकर गुप्त ने की। नगर प्रमुख सरला सिंह ने भी अपने विचार व्यक्त किये। मुख्य अतिथि केसरी नाथ त्रिपाठी ने भी अन्य देशो से भी आये रामचरतिमानस तथा राम के साहित्य के कवियों तथा रचनाकारों को शाल ओढ़ाकर सम्मानित किया गया। सम्मानित होने वालो में कु0 अस्मिन ब्रज मोहन, चन्दर ननकू (दोनो गुयाना), आई गेडे मुतार्या (इडोनेशिया), म्यामार मुदीन(इडोनेशिया), श्री मती द्रुपती देवी (गुयाना) कु0 कारीमोवा जदीना, कु0 मनीसा होवा (कजास्तिान), कु0 माधवी, कु0 रेणुका तथ अनुरूद्ध, (तीनो श्रीलंका), कु0 आयुन विलिंग(मंगोलिया), कु0 रंगिका पदेदा, कु0 रत्नावली,(दोनो श्रीलंका), रवेई तेज प्रसाद, कु0 मिकेला तथा श्रीमती सुशीला देवी (तीनो सूरीनाम) प्रमुख थे। इनके अलावा डॉ वीरेन्द शर्मा, डा0 शैलनाथ चतुर्वेदी(लखनऊ), डा0 आशुतोष पाण्डेय (चम्पारन बिहार) आदि को भी सम्मानित किया। समारोह के विशिष्ट अतिथि प्रेमभूषण महाराज ने डॉ आशाराम त्रिपाठी की कृति अजर अमर गुन निधि सुत होउ पुस्तक को लोकार्पण किया। इस अवसर पर डॉ दीनमोहम्मद दीन की कृति हम चाकर रघुवीर के तथा बूखारेष्ट विश्वविद्यालय के डॉ. जार्ज अंका तथा डॉ. यतीन्द्र तिवारी द्वारा रोमानियायी भाषा में अनुदित हनुमान चलीसा का भी लोकार्पण हुआ। दिल्ली से आये साहित्यकार सोहनलाल रामरंग को 'मानस संगम' साहित्य पुरस्कार तथा रतलाम् (म.प्र.) से आये तूलिका के धनी डॉ. दुर्गा शर्मा को 'मानस संगम' ललित कला पुरस्कार दिया गया। कार्यक्रम का संचालन डॉ. मधुलेखा विद्यार्थी ने किया।

(दैनिक जागरण -कानपुर)



राम के साथ जुड़ने की आकुलता से ही कल्याण संभव

कानुपर, 26 दिसम्बर। मानस संगम के इकतीसवें वार्षिक समारोह में आज देश विदेश के हिन्दी विद्वानों ने राम रस की गंगा बहायी। समारोह में हिन्दी के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने वालों का सम्मान भी किया गया। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रुप में विधानसभा अध्यक्ष केशरीनाथ त्रिपाठी ने बोलते हुए कहा कि राम के साथ जुड़ने की आकुलता से ही मनुष्य का कल्याण संभव हे। शिवाला में आयोजित समारोह में विधानसभा अध्यक्ष ने कहा कि राम के त्याग की भावना को अगर आज भी धारण कर लिया जाय तो समाज का स्वरुप ही बदल सकता है। प्रभु का राम राज्य छोड़कर चौदह वर्ष के लिए जंगल में चला जाना उनके त्याग की भावना को दर्शाता है। उन्होंने कहा कि देश में दो महापुरूष हुए एक राम और दूसरें श्रीकृष्ण। दोनों ने ही त्रेता और द्वापर युगों का प्रतिनिधित्व किया। त्रेता में भौतिकता के दर्शन हुए जबकि द्वापर में जीवन में भोग विलास की अधिकता थी।

उन्होंने कहा कि राम को पूरी दुनिया में कृष्ण से श्रेष्ठ माना गया है। राम ने शाश्वत तथ्य से परिचित कराया जबकि श्रीकृष्ण ने व्यवहारिक जीवन मानकर राजनीति, कूटनीति सबका समावेश करके आज हमारे सामने पेश किया है। उन्होंने कहा कि राम का साहित्य दुनिया के सभी साहित्यों मे श्रेष्ठतम है ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं होगा जो पूरी रामायण पढ़ने के बाद विचलित न हुआ हो । रामचरित मानस सर्वहारा साहित्य का प्रमाण है और साहित्य भाषा की देन है मानस में राम के चरित्र का प्रवाह है।

उन्होंने कहा कि मनुष्य का मन चंचल और गतिशील है। प्रवाह और गतिशीलता का रामायण संगम है। जीवन में जब व्यक्ति को कोई मार्ग नही दिखता और वह प्रभु की शरण में आ जाता है तो उसका धीरे-धीरे कल्याण होने लगता है और जब कहीं मानस का संगम मानव से हो जाता है तो भक्ति की धारा फूट पड़ती है तथा मनुष्य का जीवन सच्चे मायने मे साकार हो जाता है।

मानस संगम के इस समारोह में गुयाना, रूस, इण्डोनेशिया, मंगोलिया, कजाकिस्तान, ताजिकिस्तान, श्रीलंका, चीन, उजबेकिस्तान, सुरीनाम समेत अन्य देशों तथा भारत के हिन्दी विद्वतजनों ने भाग लिया । गुयाना की अस्मिन बृजमोहन ने तुलसी कृत 'मोहि लागी लगन गुरू चरणनन की ....' भजन सुनाया । श्रीलंका, रोमानिया और दूसरे देशों के हिन्दी प्रेमियों ने 'सीते-सीते राम से मिला दे....' और 'प्रेम मुदित मन से कहो राम - राम....' भजन सुनाकर माहौल राममय कर दिया।

कार्यक्रम में पूर्व विधायक बजरंग बली ब्रम्हचारी ने आज संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी धर्म और अध्यात्म पर अपने विचार रखे। उन्हें जब आयोजकों ने बोलने का मौका दिया तो वह तीनों भाषाओं में बोले और माइक से नही हटे, उन्हें हटाने के लिये आयोजकों को उनसे हाथ जोड़ने पड़े। उन्होंने अपने नाम के अनुरूप मंच पर उछाल फांद की। जिससे कुछ देर के लिए लोग हंसते रहे। नगर प्रमुख सरला सिहं तथा पूर्व मंत्री देवेन्द्र सिंह भोले ने तुलसी कृत रामायण की महत्ता पर अपने विचार व्यक्त किये। समारोह में असिमन् बृजमोहन चन्दर ननकू (गुयाना), आई. गेडे सुतार्णा (इंडोनेशिया), म्यागमर सुरीन (मंगोलिया), श्रीमती द्रुपती देवी (गुयाना), कारीमोवा जरीना (ताजिकिस्तान), मुनीशा होवा एम डी (ताजिकिस्तान), माधवी रेणुका, अनुरुद्ध (श्रीलंका), भेंड अमर, आयून बिलिंग (मंगोलिया), के अकक्ष म्यांग जनु किम रंगिका परेरा , रत्नावली बहनोच अरिजोव, खेड़ तेज प्रसाद, सुशीला देवी को सम्मानित किया गया। इस मौके पर न्यायमूर्ति प्रेमशंकर गुप्ता, प्रेमभूषण जी महाराज, पूर्व राजदूत डा. वीरेन्द शर्मा, बद्री नारायन तिवारी, मुकुल तिवारी आदि लोग प्रमुख रूप से उपस्थित थे । कार्यक्रम में 'हम चाकर रघुवीर के ' रोमानिया भाषा में अनुवादित हनुमान चालीसा 'अजर अमर गुन निधि सुत होऊ' पुस्तकों का विमोचन हुआ।

(दैनिक आज से)

कर्तव्य की प्रेरणा देता है मानस-केशरी नाथ

कानपुर-26 दिसम्बर। मानस संगम का 31 वां वार्षिक समारोह आज महाराज प्रयाग नारायण मंदिर शिवाला में संपन्न हुआ। इस अवसर पर देश-विदश के अनेक विद्वानों को हिंदी भाषा व श्री रामचरितमानस के प्रचार-प्रसार के लिए सम्मानित किया गया। समारोह के मुख्य अतिथि विधान सभा अध्यक्ष केशरी नाथ त्रिपाठी ने रामचरितमानस को सर्वग्राहय व कर्तव्य पालन की ओर प्रेरित करने वाला ग्रंथ बताया।

इस मौके पर श्री त्रिपाठी ने कहा कि राजा बनने के करीब पहुंचे राम को अचानक चौदह वर्ष का वनवास हो जाता है। वे चाहते तो संघर्ष से अपना अधिकार प्राप्त कर लेते लेकिन उन्होंने कर्तव्य पालन को महत्व दिया। ऐसा ही उदाहरण भरत के चरित्र से भी मिलता है। उन्होंने भाई के अधिकार की रक्षा को ही अपना कर्तव्य समझा। उन्होंने कहा कि संसार में दो महापुरूष ऐसे हैं जिनका स्मरण हम प्रतिदिन करते हैं। इनमें राम त्रेता युग में थे जबकि कृष्ण द्वापर मे राम ने सत्यं, शिवं व सुंदरम् सिद्धान्त की स्थापना पर जोर दिया जबकि कृष्ण संसार में जो कुछ चल रहा था उसी को व्यवहार में लाए । श्री त्रिपाठी ने कहा कि जो वस्तुएं अगर स्थिर हैं तो उनका संगम नहीं हो सकता। मानस में राम के चरित्र का प्रवाह है। मनुष्य का हृदय चंचल व गतिशील है। चंचलता को संयम प्रदान करना ही राम के जीवन का उद्देश्य था। उन्होंने त्याग का जो उदाहरण प्रस्तुत किया, वह कहीं और नहीं मिलता।

इससे पूर्व अतिथियों का स्वागत करते हुए सांसद श्री प्रकाश जायसवाल ने कहा कि यह कार्यक्रम कानपुर की पहचान बन गया है। देश और विदेश में इस संस्था ने मानस की गंगा बहाई है।

कार्यक्रम के आरंभ में उत्तर साकेत महाकाव्य के रचयिता सोहन लाल रामरंग को मानस संगम साहित्य पुरस्कार व रतलाम के चित्रकार डा. दुर्गा शर्मा को मानस संगम ललित कला पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसके अतिरिक्त डा. संकठा प्रसाद पांडे, विकलांग आशा महेश्वरी से विवाह करने के कारण राजेंद प्रसाद गुप्त , हिन्दी में आई.ए. खान व उतराखंड में जाकर पीड़ितों की सेवा करने वाले सूचना उप निदेशक रवि कुमार तिवारी को कानपुर के गौरव के रुप में सम्मानित किया गया। इसी प्रकार हिंदी सेवी विदेशियों कु. अस्मिन् बृजमोहन चंदर ननकू व श्रीमती द्रुपती देवी(गुयाना), आई. गेडे सुतार्या (इंडोनेशिया), कु. म्यांगमर सुरीन, कु. भेंड अमर व कु. आयून विलिग (मंगोलिया), कु. कारीमोवा जरीना, कु. मुनीसा होवा एम. डी. (तजाकिस्तान) कु.माधवी, कु. रेणुका, एस. अनुरूद्ध, के. रंगिका परेरा व कु. रत्नावली (श्रीलंका), कु. बोकुलेवा बातो (कजाकिस्तान), खेई तेज प्रसाद, श्रीमती सुशीला देवी व कु. भिकेला(सुरीनाम) का भी अभिनंदन किया गया।

समारोह में 'मानस संगम' पत्रिका, डा. दीन मोहम्मद 'दीन' की पुस्तक 'हम चाकर रघुवीर के', रोमानियन भाषा मे अनुवादित हनुमान चालीसा, डा. आशाराम त्रिपाठी द्वारा रचित पुस्तक 'अजर अमर गुन निधि सुत होऊ' व 'प्रारम्भ' नामक पुस्तिकाओं का क्रमशः केशरी नाथ त्रिपाठी, अवकाश प्राप्त न्यायमूर्ति प्रेम शंकर गुप्त, नगर प्रमुख सरला सिंह व स्वामी प्रेम भूषण ने लोकार्पण किया। डा. शैल नाथ चतुर्वेदी डा. आशुतोष पांडेय, यश मालवीय, डॉ० रफीक अहमद 'रस सिंधु', प्रेम कृष्ण आदि ने रामकथा से संबंधित अपनी रचनाएं पढ़ी। मानस संगम के अध्यक्ष बद्री नारायण तिवारी ने नगर प्रमुख से तुलसी उपवन की व्यवस्था में सुधार लाने की अपील की। कार्यक्रम की अध्यक्षता न्यायमूर्ति प्रेम शंकर गुप्त ने की।

('अमर उजाला' से)

आज अयोध्या की गलियों में झूमे जोगी मतवाला...

कानपुर 16 अप्रैल। रामनवमी के उपलक्ष्य में आज श्री प्रयाग नारायण मंदिर शिवाला में भक्ति संगीत समारोह का आयोजन किया गया।जिसमें गीत संगीत कलाकारों ने प्रभु राम के जीवन चरित्र से ओतप्रोत गीत भजन हुए। प्रवीण वर्मा ने 'आज अयोध्या की गलियों में झूमे जोगी मतवाला...' गीत गाकर श्रोताओं को भक्ति रस से सराबोर किया।

एक सौ उन्तालिस वर्ष पुराने प्रयाग नारायण शिवाला मंदिर में हर वर्ष की भांति इस बार भी भक्ति संगीत के कार्यक्रम में टी.वी. और दूसरे कलाकारों ने गीत गाये। विजय कुमार मेहरोत्रा की गणपति वन्दना से कार्यक्रम शुरू हुआ। कार्यक्रम में गंगाधर राव तैलंग और उनके साथियों ने जय-जय राम कृष्ण हरि, श्रीमती सपना बनर्जी ने 'कहाँ के पथिक कहा बिन गवनवा...' डां. रेनू निगम उनके साथियों ने 'पूत सपूत कौशल्या जायो, वन्दे हरि गुणगान... ब्रजवाला नारायण ने ठुमुक चलत रामचन्द्र बाजे पैजनियां ...' सहेली सुनो सो हिलोरे.... 'रचना शुक्ला ने राम-राम रामा हो रामा गीत गाये।

प्रवीण वर्मा ने 'आज अयोध्या की गलियों में झूमे जोगी मतवाला...'और 'रामजी ने जन्म लियो आज अवध में बाजे बधईया...' मास्टर युवराज गुलाटी ने 'मन तो जपे राम -राम ....' ने भजन गाकर भक्तिमय माहौल बना दिया।

कार्यक्रम में लक्ष्मी शंकर, पूनम भान सिंह, श्रीमती सुषमा बाजपेयी, फतेहपुर के राजेन्द्र सिंह योगेश वर्मा, कु. मृणालिनी ने भी भक्ति गीत गायें। संगतकारों में ओमप्रकाश तिवारी, रवि शुक्ला, अवधेश मिश्रा, गोपाल पाठक और हरिओम मिश्र थे। कार्यक्रम संयोजक विजय नारायण तिवारी 'मुकुल' थे।

('दैनिक आज' से)

विप्लव दिवस पर शहीदों के स्मरण का संकल्प

कानपुर, सोमवार। वर्ष 1857 के क्रान्ति का बिगुल फूंके जाने का सालगिरह 'विप्लव दिवस' पर आज शहीदों के निरंतर स्मरण का संकल्प लिया गया। मानस संगम द्वारा नानाराव पार्क में आयोजित समारोह में प्रदेश की महिला कल्याण एवं बाल पुष्टाहार मंत्री प्रेमलता कटियार ने वीरांगना मैनावती व अजीजन की प्रतिमाओं का अनवारण किया।

समारोह में श्रीमती कटियार ने कहा कि विश्व में इस समय चल रहे प्रतिस्पर्धा वातावरण में भारतीय अधिपत्य स्थापित करने के लिए जरूरी है कि हम अपने गौरवशील अतीत को न भूलें और स्वातंत्र समर के सेनानियों व शहीदों का निरंतर स्मरण करते रहे। उन्होंने इसके लिए सेनानियों की स्मृति में विविध कार्यक्रम आयोजित करने की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि जिस तरह हर वर्ष रामलीला का आयोजन कर रावण के पुतले फूंक कर अन्याय पर न्याय की विजय का जश्न मनाया जाता है, उसी तरह सेनानियों के संघर्ष का भी नियमित स्मरण ऐसे आयोजनों के माध्यम से आवश्यक है। समारोह में मुख्य नगर अधिकारी जे.एन. विश्वकर्मा ने कहा कि नानाराव पार्क के जिस स्वरूप की अपेक्षा सामान्य जनमानस व स्वतंत्रता सेनानियों को है, इस पार्क को उसका वह अपेक्षित स्वरूप शीघ्र ही प्रदान किया जायगा। नगर प्रमुख सरला सिंह की अध्यक्षता में हुए समारोह में स्वतंत्रता सेनानी मानवती आर्या, राम सिंह, वयोवृद्ध नेता राम चरण भरतिया तथा तात्या टोप के प्रपौत्र विनायक राव टोपे को सम्मानित किया गया। कार्यक्रम को उप नगर प्रमुख एस.पी. पाण्डेय, दुर्गा प्रकाश मिश्र, योगेश, कैलाश नाथ तिवारी आदि ने संबोधित किया। स्वागत बद्री नारायण तिवारी, संचालन एस. पी सिंह व धन्यवाद ज्ञापन सभासद अशोक दीक्षित ने किया।

(दैनिक जागरण से)

संविधान का उचित अनुपालन न होने के कारण ही हिन्दी की दुर्दशा

कानपुर, 14 नवम्बर। देश के लिए यह विडम्बना हैं कि हम पचास वर्षों के बाद भी राजभाषा स्वर्णजयंती मना हैं। हिन्दी आज भी राष्ट्रभाषा का वास्तविक स्वरूप नहीं प्राप्त कर सकी है। हिन्दी भाषा के उत्थान के लिए हम ष्ठियां और कार्यक्रम आयोजित करने पड़ते हैं। उच्च न्यायालय इलाहाबाद के अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायाधीश यमूर्ति प्रेमशंकर गुप्त ने आज यहां उ.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित राजभाषा हिन्दी स्वर्ण जयन्ती समारोह में कहा कि देश में केवल उ. प्र., राजस्थान, बिहार उच्च न्यायालय में हिन्दी में कार्य हो रहा है।

न्यायमूर्ति श्री गुप्त ने कहा कि संविधान में व्यवस्था की गई थी कि उच्चन्यायालय में कामकाज की भाषा अंग्रेजी ी हालांकि इसी के साथ यह भी व्यवस्था की गई थी कि राष्ट्रपति की अनुमति लेकर राज्यपाल अपने प्रदेश के व न्यायालयों में क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग कर सकते हैं।

उन्होंने कहा कि मतदाताओं के सामने नेता हिन्दी में वोट मांगता है लेकिन सांसद बनने के बाद वह अंग्रेजी चर्चा करने में अपने को गौरवान्वित अनुभव करते है। ऐसे राजनीतिज्ञों के मुगालते को मतदाताओं द्वारा तोड़ा सकता है। उन्होंने कहा कि देश के सुसंगत मुद्दों पर सदन में बहुत कम चर्चा होती है। न्यायमूर्ति ने कहा कि संविधान का सही ढंग से क्रियान्वयन किया गया होता तो आज हिन्दी की यह दुर्दशा नहीं होती, उन्होंने हिन्दी ा को समाचार पत्रों की अस्मिता से जोड़ते हुए कहाकि समाचार पत्रों का दायित्व है कि वह हिन्दी को राष्ट्रभाषा रूप में गौरवान्वित कराने के लिए पहल करें।

इस अवसर पर विज्ञान तकनीकी शब्दावली आयोग के अध्यक्ष डा. आर. ए. के श्रीवास्तव ने आयोग की भिन्न गतिविधियों के सन्दर्भ में विस्तृत चर्चा की। उन्होंने कहा कि तकनीकी शब्दावली के विस्तृत प्रसार के लिए नतम सूचना तकनीक का प्रयोग किया जा रहा है। वैज्ञानिक और तकनीक क्षेत्र में भाषा के लिए उत्कृष्ट कार्य ने वाले लोगों को सम्मानित किये जाने की योजना भी प्रस्तावित है।

समारोह में जिला एवं सत्र न्यायाधीश देहात के. एन. ओझा ने कहा कि किसी भी भाषा को किसी पर दबाब कर नहीं प्रोत्साहित किया जा सकता है। अन्य भाषाओं के सम्मान और आत्मीयता के साथ ही हिन्दी का उत्थान भव हैं। उन्होंने कहा कि अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में बच्चों को शिक्षा दिलाने से यह अनुमान नहीं लगाया ना चाहिए कि हिन्दी के प्रति उसकी श्रद्धा नहीं है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि ऐसे प्रयास होने चाहिए ससे हिन्दी माध्यम से शिक्षा ग्रहण करने वालों को यह न लगे कि उनकी उपेक्षा हो रही हैं।

उ.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष डा. बद्रीनारायण तिवारी ने इस अवसर पर कहा कि प्रथम राजभाषा र्यान्वयन समिति के सदस्य बालकृष्ण शर्मा नवीन की स्मृति में बनी "नीवन माकेट" को आज नयी पीढ़ी न्यु र्केट कहने में गौरव अनुभव कर रही है। उन्होंने कहा कि हिन्दी सरकारी भाषा के रूप में कभी राष्ट्रभाषा नहीं सकती बल्कि इसे जन-जन की भाषा बनाना होगा। उन्होंने हिन्दी भाषा के उत्थान में सिनेमा की भूमिका को हा। समाचार पत्रों की भूमिका पर उन्होंने कहा कि चेन्नई जैसे शहर में 14 हजार प्रतियां हिन्दी समाचार पत्रों अत्यंत कम मूल्य पर पत्र उपलब्ध कराके हिन्दी के उत्थान अभियान में अपना योगदान दिया है। इस अवसर पर र्षि शर्मा, विश्वनाथ कपूर एडवोकेट, शम्भूनाथ टंडन, सुन्दर लाल गोयल एडवोकेट, दुर्गाचरण मिश्र, आदि ने भी ार व्यक्त किये। प्रारम्भ मे मानस विद्वान दीन मोहम्मद दीन और अखिलेश ने हिन्दी पर अपने सशक्त काव्यपाठ ुत किये। संचालन सुरेन्द्र प्रताप सिंह एडवोकेट ने किया। कार्यक्रम के द्वितीय सत्र का शुभारंभ कुलपति प्रो. ी. पाण्डेय ने दीप प्रज्जवलित करके किया। जिसमें ख्यातिलब्ध लोकगायकों ने बिरहा, सोहर, दादरा, देवीगीत दि प्रस्तुत कर श्रोताओं को आनन्दित किया। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की लोकगायिका मालिनी अवस्थी द्वारा प्रस्तुत रा "सइयाँ मिलें लरकइयाँ।" देवी गीत– "तोहरे शरण हम आये।" 12 वर्षीय लोक गायक युवराज गुलाटी प्रस्तुत "धनवा कटाई के देखो आ गये सजनवा.....। और योगेश वर्मा के- "मेरे घर या घुसो बवाल.....।" अलावा डाक्टर रेनू निगम रामचंद्र दुबे, लक्ष्मी शंकर शुक्ला, घनश्याम तिवारी, आदि के सहज लोकगीतों ने ाओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। (दैनिक 'आज' से)



मानस संगम बत्तीसवाँ समारोह

मानस संगम के साहित्य का लोकार्पण–समर्पण

"मानस संगम" शोधपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय वार्षिक पत्रिका

सम्पादक : मदन मोहन शर्मा

रामकथा के व्यापक आयाम

लेखक : डॉ0 गिरिजाशंकर त्रिवेदी

रत्नावली

रचयिता : अनन्त राम गुप्त

छोटीकाशी असनी

सम्पादक : डॉ0 प्रदीप

समाचार-पत्र पंजीयन (केन्द्रीय) कानून 1956 आठवें नियम के अन्तर्गत आयोजित वार्षिक "मानस संगम" कानपुर नामक समाचार पत्र से सम्बन्धित स्वामित्व और अन्य बातों का ब्योरा –

प्रपत्र–4

1.	प्रकाशन स्थान	:	'मानस संगम' 38/24, प्रयाग नारायण शिवाला, कानपुर-1
2.	प्रकाशन अवधि	:	वार्षिक
3.	मुद्रक का नाम	:	बद्रीनारायण तिवारी
	क्या भारत के नागरिक हैं	:	हाँ
	पता	:	38/24, प्रयाग नारायण शिवाला, कानपुर -1
4.	प्रकाशक का नाम	:	बद्रीनारायण तिवारी
	क्या भारत के नागरिक हैं	:	हाँ
	पता	:	38/24, प्रयाग नारायण शिवाला, कानपुर -1
5.	सम्पादक का नाम	:	मदन मोहन शर्मा
	क्या भारत के नागरिक हैं	:	हाँ
	पता	:	38/49-ए, खास बाजार, कानपुर - 1
7.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों	:	बद्रीनाराण तिवारी, संयोजक/अध्यक्षा, मानस संगम 38/24, प्रयाग नारायण शिवाला, कानपुर - 1

मैं बद्रीनारायण तिवारी एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपरोक्त दिये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : 24 दिसम्बर 2000

बद्रीनारायण तिवारी
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

स्वर्गीय साहित्य मनीषियों को स्मृति श्रद्धाञ्जलि

हिन्दी साहित्य-क्षेत्र में अग्रणी हस्ताक्षर श्री नरेश मेहता

हिन्दी साहित्य जगत के सशक्त हस्ताक्षर साहित्य की विभिन्न विधाओं को अपनी लेखनी से समृद्ध करने वाले पत्रकारिता के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग करने वाले जीवनपर्यन्त साहित्य सेवा में समर्पित 'ज्ञानपीठ पुरस्कार', 'साहित्य अकादमी पुरस्कार', 'भारत-भारती सम्मान' आदि अनेक पुरस्कारों से सम्मानित सुविख्यात साहित्यकार श्री नरेश मेहता के निधन का समाचार सुनकर हम सब हतप्रभ रह गये। श्री नरेश मेहता हिन्दी भाषा की स्थिति से सन्तुष्ट नहीं थे। उन्हें ऐसा नहीं लगता था कि वर्तमान राजनीति के रहते कोई भी राज्य व्यवस्था हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिला सकेगी। श्री नरेश मेहता के निधन से हिन्दी साहित्य जगत में जो रिक्तता आ गई है उसकी पूर्ति होना निकट भविष्य में असम्भव है। मानस संगम की ओर से साहित्य के क्षेत्र में अपने ही मार्ग पर चलने वाले इस साहित्य मनीषी को सादर विनम्र श्रद्धांजलि।

उद्‌भट् विद्वान डॉ0 रामप्रकाश अग्रवाल

'वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस' के तुलनात्मक शोधकर्ता हिन्दी और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान डॉ0 राम प्रकाश अग्रवाल के आकस्मिक निधन से एक ऐसी विभूति से बिछोह हो गया जिसकी लेखनी से साहित्य जगत को बड़ी आशायें थीं परन्तु विधि के विधान के समक्ष किसी का वश नहीं चलता। डॉ0 रामप्रकाश अग्रवाल ने अपने शोध प्रबन्ध में लिखा है कि ''वाल्मीकि रामायण में भक्ति एक भावना के रूप में ही सीमित है परन्तु रामचरितमानस में वह पूरा जीवनशास्त्र बनकर प्रकट हुई है और रस के क्षेत्र में रसराज बन गई है।'' डॉ0 राम प्रकाश अग्रवाल के निधन से साहित्य जगत को जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना कठिन है। जीवन के अन्तिम क्षण तक साहित्य को समर्पित डॉ0 राम प्रकाश अग्रवाल को मानस संगम की ओर से विनम्र श्रद्धासुमनों से भरी अंजलि समर्पित है।

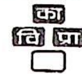






हमारा प्रयास – समग्र विकास

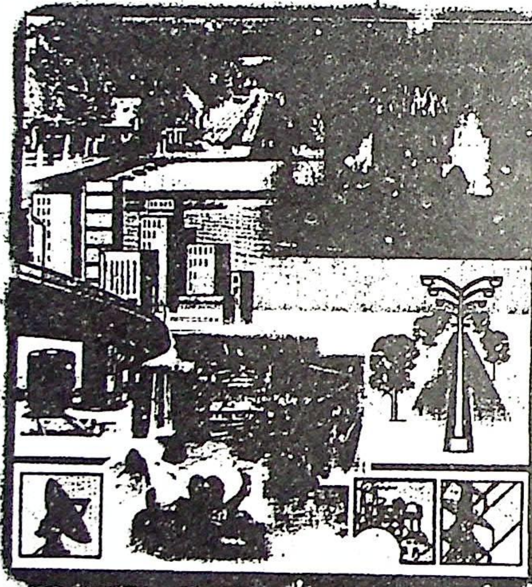




कानपुर महानगर के सुनियोजित एवं समग्र विकास में रत

कानपुर विकास प्राधिकरण

के सफल प्रयास...



कानपुर विकास प्राधिकरण इस महानगर के समग्र विकास के लिए एवं इसकी पुरानी गरिमा को स्थापित करने के लिए पूर्ण निष्ठा के साथ हर संभव प्रयास कर रहा है जिसके फलस्वरुप अल्प समय में ही कानपुर को एक स्वच्छ, सुन्दर, आधुनिक एवं आदर्श नगर का स्वरूप प्राप्त होने लगा है।

इन्हीं उपलब्धियों व कार्यप्रणाली को देखते हुए देश की सबसे प्रख्यात वित्तीय रेटिंग प्रदान करने वाली एजेन्सी ICRA ने बिना किसी शासकीय गारंटी के रु. 50 करोड़ के KDA Infrastructure Bond के निर्गम को A+ की रेटिंग प्रदान की है। देश में प्रथम बार किसी प्राधिकरण को इस प्रकार की रेटिंग प्रदान की गई है जो कि उ०प्र० शासन के लिए भी गौरव का विषय है। विभिन्न आवासीय योजनाओं में अधूरी अवस्थापना सुविधाओं को पूर्ण करने एवं कुछ महत्वपूर्ण योजनाओं को गतिशीलता प्रदान करने हेतु, ये बॉन्ड जारी किये जा रहे हैं :

प्राप्त उपलब्धियाँ :

• पारदर्शी व्यवस्था : अब हेल्प लाइन के द्वारा नागरिक 210881 फोन नं० पर के०टी०ए० उपाध्यक्ष से अपनी समस्याओं व सुझावों हेतु सीधे सम्पर्क कर सकते हैं।

• पर्यावरण संरक्षण : स्वच्छ पर्यावरण हेतु विशाल भूखण्डों पर वृहत वृक्षारोपण के साथ-साथ मोतीझील तथा म्यूजिकल फाउण्टेन के विकास एवं सौन्दर्यीकरण का कार्य पूर्ण हुआ है। प्लास्टिक के उपयोग पर रोक का कार्य भी प्रारम्भ हो चुका है।

• सहभागिता : •मोहल्ला/कालोनीवार समितियों का गठन, • नगरीय विकास परिषद का गठन

• कानपुर विज़न 2010 की संकल्पना : समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा गत वर्ष मार्च में आदर्श कानपुर की कल्पना की गई थी जिसे स्थानीय निवासियों व सरकारी, गैर सरकारी संस्थाओं के सहयोग से 10 वर्षों में पूरा करके देने का संकल्प कानपुर विकास प्राधिकरण ने लिया था।

इस संकल्प को विज़न-2010 का नाम दिया गया। इसके अन्तर्गत निम्न योजनायें प्रस्तावित तथा प्रगति में हैं।

- जाजमऊ से मेडिकल कालेज क्रासिंग तक सभी चौराहों, मार्गो पर सुन्दर प्रकाश व्यवस्था, उचित रोड डिवाइडर, जल निकासी हेतु नाले, नालियां तथा यातायात कन्ट्रोल पोस्टों की स्थापना पूर्ण।
- मेडिकल कालेज चौराहे पर ROB का निर्माण।
- 17 Km लम्बे मन्धना भौंती बाई पास का BOT आधार पर निर्माण।
- हस्त शिल्पियों के लिए 'कानपुर हाट' की स्थापना
- घंटाघर क्षेत्र से बस अड्डे का स्थानान्तरण।
- बहुउद्देशीय मनोरंजन केन्द्र (Multiplex) की स्थापना।
- IIT Kanpur के पीछे लगभग 200 एकड़ भूमि पर आधुनिक आवासीय नगर "जवाहर पुरम्" की स्थापना।
- सौन्दर्यीकरण एवं मनोरंजन हेतु शताब्दी उद्यान एवं वाटर एम्यूसमेंट पार्क की स्थापना।
- बेहतर एवं आधुनिक यातायात व्यवस्था हेतु MRS (Mass Rapid Transport System) की योजना।

हमारा लक्ष्य – स्वच्छ, सुंदर व स्वस्थ कानपुर



चलो चलें, कहाँ ?
लखनऊ चिकन की सही दुकान
जहाँ लिखा है

चिकन घर®

निशान

स्थापित - 1969

लखनऊ चिकन की साड़ियाँ, चिकन सूट,
चिकन बेडशीट, नाइटी, गाऊन, टी-शर्ट आदि
का एकमात्र आपका अपना विशाल शोरूम

Exclusive Shop

दुकान नं0 : 9, कोतवाली मार्केट, शिवाला रोड, कानपुर
(न्यू वेलविस स्टूडियो के बगल में)
दूरभाष : दुकान-311225, निवास-355155, 365275

एवम्

आनन्द साड़ी भण्डार

स्थापित - 1963

शादी की फैन्सी साड़ियाँ, लहंगा-चुन्नी, कॉटन, सिल्कन साड़ियां,
सूटिंग, शर्टिंग, भगवान के कपड़ों की विश्वसनीय दुकान
३८/२४, प्रयागनारायण शिवाला, कानपुर
(गंगा फाटक से बायें पहली दुकान)

दूरभाष-दुकान : ३१८१५७, निवास : ३६५२७५, ३५५१५५

खत्री रामनाथ मेहरोत्रा (बुद्धू भईय्या) खत्री राकेश मेहरोत्रा (पप्पू जी)
खत्री दर्पन मेहरोत्रा खत्री कोमल मेहरोत्रा

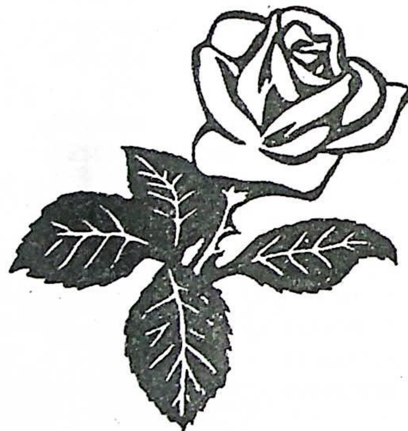






-: हार्दिक शुभकामनायें :-

बंसल एण्ड बंसल



31—बी, दादा नगर

कानपुर



माता पिता और गुरु का स्थान संसार में सर्वोपरि है।

"मातु पिता गुरु प्रभू की वाणी, बिनहि विचारि करिय शुभ जानी।"

गोस्वामी तुलसीदास

दूरभाष : 360695

विद्या भारती से सम्बद्ध

पं. गंगा प्रसाद द्विवेदी शिक्षा निकेतन

28/13, फीलखाना, कानपुर

द्वारा

देहाती क्षेत्र के शिशुओं के लिए

पं० गंगा प्रसाद द्विवेदी शिक्षा निकेतन

विनौर (डेरा) कानपुर



निर्बल वर्ग के शिशुओं के लिए निःशुल्क शिक्षा केन्द्र

पं. गंगा प्रसाद द्विवेदी सरस्वती संस्कार केन्द्र

गुप्तार घाट, कानपुर

हमारे मार्ग दर्शक

पं० राम बालक मिश्र (एडवोकेट)
श्री केशव नारायण मिश्र (एडवोकेट)
श्री चन्द्रकान्त मिश्र
श्री गुरुदत्त मिश्र
श्री भगवत प्रसाद शर्मा एडवोकेट
श्री सूर्यनारायण त्रिपाठी
डॉ० अंगद सिंह
श्री रविशंकर शुक्ल
श्री रमेश नारायण पाण्डेय
श्री बद्रीनारायण मिश्र
श्री मुकेश जी
श्री विनोद शंकर दीक्षित (सम्भाग निरीक्षक)
श्री जयशंकर बाजपेई

पं० कैलाश नारायण पाण्डेय
एडवोकेट

पं० राम प्रकाश मिश्र
प्रधानाचार्य

डॉ० बद्री नारायण तिवारी
प्रबंधक















